गांधी-साहित्य---६

दक्षिण अफ्रीकाका सत्याग्रह

राजनीतिके क्षेत्रमे बडे पैमाने पर सत्याग्रहके
पहले प्रयोगका इतिहास

●

मोहनदास करमचंद गांधी

●

१९५०

सस्ता साहित्य मंडल • नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तंड उपाध्याय, मंत्री
सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

तीसरी बार
नया संस्करण १९५०

मूल्य
अजिल्द तीन रुपये
सजिल्द साढे तीन रुपये

मुद्रक—
कृष्णप्रसाद दर
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

प्रकाशककी ओरसे

भारतको गांधीजीकी अनेक देनोंमें से 'सत्याग्रह' उनकी एक विशेष देन है। इस शब्दका आविष्कार दक्षिण अफ्रीकामें हिंदुस्तानियोंके मान-मर्यादा और मानवोचित अधिकारोंके लिए किये गये सग्रामके दिनोमे हुआ था और वहींपर सबसे पहले राजनीतिके क्षेत्रमे बडे पैमानेपर इसका प्रयोग किया गया था।

दक्षिण अफ्रीकाकी इस लडाईको हुए यद्यपि एक युग बीत चुका है, तथापि उसके अनुभव, उसकी शिक्षा, उसके निष्कर्ष आज भी ताजे हैं। इसी पुस्तकके द्वितीय खण्डकी प्रस्तावनामे गांधीजीने लिखा है, "मैं इस बातको अक्षरश सत्य मानता हूँ कि सत्यका पालन करनेवालेके सामने सपूर्ण जगतकी समृद्धि रहती है और वह ईश्वरका साक्षात्कार करता है। अहिंसाके सान्निध्यमे वैर-भाव टिक नही सकता, इस वचनको भी मैं अक्षरश सत्य मानता हू। कष्ट सहन करनेवालोके लिए कुछ भी अशक्य नहीं होता, इस सूत्रका मैं उपासक हू।" जीवनकी कठोरतम साधनासे उद्भूत ये मूल-मंत्र इतने वर्षों बाद आज भी ताजे हैं और हमेशा ताजे रहेंगे।

दक्षिण अफ्रीकासे आनेके बाद भारतमे गांधीजीने जो लडाइयां लडी, उन्हे गहराईसे समझनेके लिए दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका इतिहास जानना आवश्यक है। कारण कि जिन मूलभूत सिद्धातोंपर बादकी लडाइयां लडी गईं, उनका मूलसूत्र दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहमें मिलता है।

पुस्तकका अनुवाद मूल गुजरातीसे श्रीकालिकाप्रसादजीने किया है और अंग्रेजी-संस्करणके आधारपर बहुतसे परिवर्द्धन करके उसे यथा-संभव पूर्ण बनानेका प्रयत्न किया गया है।

—मंत्री

विषय-सूची

प्रथम खण्ड १-२४०

पृष्ठ

वैरिस्टर गाधी
(सत्याग्रह-सग्रामके ग्रारभमे)

दक्षिण अफ्रीकाका सत्याग्रह

प्रथम खण्ड

प्रास्ताविक

दक्षिण अफ्रीकामें हिंदुस्तानियोंकी सत्याग्रहकी लडाई आठ बरस चली। इस सग्रामके लिए ही 'सत्याग्रह' शब्दकी खोज की गई और प्रयोग किया गया। बहुत दिनोसे मेरी इच्छा थी कि इस सग्रामका इतिहास लिखू। उसका कितना ही अश तो केवल मैं ही लिख सकता हू। कौन-सी बात किस हेतुसे की गई, इसका पता तो युद्धका सचालन करनेवालेको ही हो सकता है। राजनीतिके क्षेत्रमें बडे पैमानेपर यह पहला ही प्रयोग था। इसलिए इस सत्याग्रहके सिद्धातका विकास कैसे हुआ इसकी जानकारी लोगोको हो जाना हर हालतमे जरूरी समझा जायगा।

पर इस वक्त तो हिंदुस्तानमे सत्याग्रहके लिए विशाल क्षेत्र है। वीरमगाम[1] की चुगीकी एक छोटी-सी लडाईसे इसका अनिवार्य क्रम आरम्भ हुआ है।

वीरमगामकी चुगीकी लडाईमे निमित्त था वढवाण[1] का साधुचरित परोपकारी दर्जी भाई मोतीलाल। १९१५मे मैं विलायतसे वापस आकर काठियावाड जा रहा था। तीसरे दर्जेमे सवार था। वढवाण स्टेशनपर यह दर्जी अपनी छोटी-सी टोली लेकर आया था। वीरमगामकी कथा थोडी-सी सुनाकर उसने मुझसे कहा—"इस कष्टको काटिए। आपने काठियावाडमे जन्म लिया है, उसे सार्थक कीजिए।" उसकी आखोमे दृढता और करुणा दोनो थी।

मैने पूछा, "तुम जेल जानेको तैयार हो?"

तुरत जवाब मिला—"हम फासी चढनेतकके लिए तैयार है।

---

[1] वीरमगाम अहमदाबादसे ४० मील पश्चिममें एक कस्बा है। वढवाण वीरमगामसे ४० मील पश्चिममें पडता है।

मै—"मेरे लिए तो जेल ही काफी है, पर देखना, विश्वासघात न हो।"

मोतीलाल—"यह तो काम पडनेपर मालूम होगा।"

मै राजकोट पहुचा। वहा अधिक व्यौरे मालूम किये और सरकारके साथ लिखा-पढी शुरु कर दी। 'वगसरा'[1] आदिके भाषणोमे मैने लोगोको सलाह दी कि वीरमगामकी चुगीके मामलेमे सत्याग्रह करना पडे तो वे उसके लिए तैयार रहे। सरकारकी वफादार खुफिया पुलिसने ये भाषण उसके दफ्तरमे पहुचाए। पहुचानेवालेने सरकारके साथ अनजानमे जनताकी भी सेवा की। अतमे लार्ड चेम्सफर्डके साथ इस विषयमे बातचीत हुई और उन्होने दिए हुए वचनका पालन किया। औरोने भी कोशिश की, यह मै जानता हू। पर मेरी पक्की राय है कि इस मामलेको लेकर सत्याग्रह किये जानेकी सभावना थी, इसीसे यह चुगी रद्द हुई।

वीरमगामके बाद गिरमिटके कानूनसे लडना पडा। इस कानूनको रद्द करानेके लिए भरपूर कोशिश की गई थी। इस लडाईको जोर पहु-चानेके लिए सार्वजनिक आदोलन भी अच्छा-खासा हुआ था। बम्बईमे हुई सभामे गिरमिट यानी शर्तबद्ध कुलीप्रथाको बद करानेके लिए १९१७ की ३१ वी जुलाईकी तारीख तै की गई थी। यह तिथि कैसे नियत हुई इसका इतिहास यहा नही दिया जा सकता। इस आदोलनके अतर्गत वाइसरायके पास पहले बहनोका प्रतिनिधिमडल गया। इसमे खास कोशिश किसकी थी यह लिखे बिना नही रहा जा सकता। वह थी चिरस्मरणीय बहन जाइजी पेटिटकी। इस लडाईमे केवल सत्याग्रहकी तैयारीसे ही हमारी विजय हो गई। पर उसके विषयमे सार्वजनिक आदोलनकी आवश्यकता थी, यह अतर याद रखने लायक है। गिरमिटको बद कराना वीरमगामकी चुगी उठवानेसे ज्यादा वजनदार मामला था।

---

[1]काठियावाड़का एक स्थान।

लार्ड चेम्सफर्डने रौलट कानूनके वाद गलतिया करनेमे कसर नही की। फिर भी ग्राज मेरा यही खयाल है कि वे चतुर और समझदार वाइसराय थे। सिविल सर्विसके स्थायी अधिकारियोके पजेसे अततक कौन वाइसराय वच सकता है?

तीसरी लडाई थी चपारनकी। इसका ब्यौरेवार इतिहास राजेन्द्रवावूने लिखा है। इसमे सत्याग्रह करना पडा, केवल तैयारी काफी नही हुई, पर विपक्षका स्वार्थ कितना बडा था! चपारनके लोगोने कितनी शाति रखी, यह वात लिखने लायक है। सभी नेताओने मन, वचन और कायासे पूरी तरह शाति रखी, इसका साक्षी मै स्वय हू। तभी तो यह सदियोकी बुराई छ महीनेमे नामशेष हो गई।

चौथी लडाई थी अहमदावादके मिलमजदूरोकी। उनका इतिहास गुजरात न जाने तो दूसरा कौन जान सकता है। मजदूरोने कैसी शाति रखी! उनके नेताओके वारेमे क्या मुझे कुछ कहनेकी जरूरत है? पर यह सब होते हुए भी इस विजयको मै दोषपूर्ण मानता हू। इसलिए कि मजदूरोकी प्रतिज्ञाका पालन करानेके लिए मैने जो उपवास किया वह मालिकोपर दवाव-सा हो गया। उनके और मेरे बीच जो स्नेह था वह उपवासका असर उनपर डाले विना रह ही नही सकता था। फिर भी इस सघर्षका सार तो स्पष्ट ही है। मजदूर शातिके साथ अपनी प्रतिज्ञा-पर अटल रहते तो उनकी जीत होनी ही और वे मालिकोका मन हर लेते। वे मालिकोका दिल नही जीत सके, क्योकि वे मन-वचन-कर्मसे निर्दोष—शात रहे, यह नही कहा जा सकता। वे शरीरसे शात रहे, यह भी वहुत माना जायगा।

पाचवी लडाई खेडामे लडी गई, इसमे सभी नेताओने शुद्ध सत्यका पालन किया, यह मै नही कह सकता। हा, शाति अवश्य वनाए रखी गई। किसानोकी शाति कुछ मजदूरोकी तरह केवल कायिक ही थी। उनसे महज आवरू सलामत रही। जनतामे जवर्दस्त जागृति फैली। पर खेडाने

दक्षिण अफ्रीकाका सत्याग्रह

प्रथम खण्ड

: १ :

भूगोल

अफ्रीका दुनियाके बडे-से-बडे भूखडोमेसे एक है। हिंदुस्तान भी एक भूखडके बराबर विस्तारवाला देश माना जाता है, पर महज रकबेकी दृष्टिसे देखे तो अफ्रीकामे चार या पाच हिंदुस्तान समा जाएगे। दक्षिण अफ्रीका अफ्रीकाका ठेठ दक्षिणी भाग है। हिंदुस्तानकी तरह अफ्रीका भी प्रायद्वीप है। अत दक्षिण अफ्रीकाका बडा हिस्सा समुद्रसे घिरा हुआ है। अफ्रीकाके बारेमे आम खयाल यह है कि वहा ज्यादा-से-ज्यादा गरमी पडती है और एक दृष्टिसे यह बात सही भी है। भूमध्यरेखा अफ्रीकाके बीचसे होकर गुजरती है और इस रेखाके आसपासकी गरमीका अदाजा हिंदुस्तानके रहनेवालोको नही हो सकता। हिंदुस्तानके ठेठ दक्षिणमे जिस गरमीका अनुभव हम करते है उससे भूमध्यरेखाके पासकी गरमीका कुछ अदाजा किया जा सकता है। पर दक्षिण अफ्रीकामे वैसी गरमी बिलकुल नही, क्योकि अफ्रीकाका यह भाग भूमध्यरेखासे बहुत दूर है। उसके बडे भागकी आब-हवा तो इतनी सुदर और ऐसी मोतदिल है कि वहा यूरोपकी जातिया सुखसे घर बना सकती है। हिंदुस्तानमे बसना उनके लिए नामुमकिन-सा है। उसके सिवा

दक्षिण अफ्रीकामे तिब्बत या काश्मीरके जैसे बहुतसे ऊचे प्रदेश है, फिर भी वे तिब्बत या काश्मीरकी तरह दससे चौदह हजार फुटतककी ऊचाईवाले नही है। इससे वहाकी हवा खुश्क और बर्दाश्त होने लायक ठडी रहती है। इसीलिए दक्षिण अफ्रीकाके कितने ही भाग क्षयरोगियोके लिए अत्युत्तम माने जाते है। दक्षिण अफ्रीकाकी स्वर्णपुरी जोहान्सबर्ग ऐसे ही भागोमेसे एक है। जमीनके जिस टुकडेपर जोहान्सबर्ग आबाद है वह आजसे ५० साल पहले बिलकुल वीरान और सूखी घासका मैदान था, पर जब वहा सोनेकी खानोकी खोज हुई तब वहा, जादूके महलकी तरह, मकान-पर-मकान बनने लगे और आज तो वह सुदर बगलोका विशाल नगर है। वहाके धनिकोने दक्षिण अफ्रीकाके उपजाऊ भागो और यूरोपसे भी एक-एक पौधेके १५-१५ रुपये देकर पेड-पौधे मगाये और लगाए है। उसका पिछला इतिहास न जाननेवाले यात्रीको आज यही जान पडेगा कि ये पेड-पौधे हजारो सालसे वहां लग रहे होगे।

दक्षिण अफ्रीकाके सभी विभागोका वर्णन मै यहा नही करना चाहता। जिन विभागोके साथ हमारे विषयका कुछ सबध है केवल उन्हीका थोडा परिचय दे रहा हू। दक्षिण अफ्रीकामे दो हुकूमते है—ब्रिटिश और पुर्तगीज। पुर्तगीज हिस्सेको डेलागोआबे कहते है, और हिदुस्तानसे जाते हुए वह दक्षिण अफ्रीकाका पहला बदरगाह माना जाता है। वहासे थोडा दक्षिणकी ओर और बढिये, नीचे उतरिये तो पहला ब्रिटिश राज्य नेटाल आता है। उसका बदरगाह पोर्ट नेटाल कहलाता है, पर हम उसे डर्बनके नामसे जानते है और दक्षिण अफ्रीकामे भी वह आम तौरसे इसी नामसे ख्यात है। नेटालका यह सबसे बडा नगर है। नेटाल-की राजधानीका नाम पीटर मारित्सबर्ग है। वह डर्बनसे

अदरकी ओर आगे जाते हुए लगभग ६० मीलके फासलेपर पडता है। समुद्रकी सतहसे उसकी ऊचाई अदाजन् २ हजार फुट है। डर्बनकी आब-हवा कुछ-कुछ बबईसे मिलती हुई मानी जा सकती है, पर बबईसे वहाकी हवामे कुछ अधिक ठड अवश्य है। नेटालसे आगे बढकर और अदर जानेपर ट्रासवाल आता है जिसकी जमीन आज दुनियाको सबसे ज्यादा सोना दे रही है। कुछ बरस पहले वहा हीरेकी खाने भी मिली है, जिनमे दुनियाका बडे-से-बडा हीरा निकला है। वह कोहेनूरसे भी बडा हीरा रूसके पास है, ऐसा समझा जाता है। उसका नाम खानके मालिकके नामपर रखा गया है और वह क्लीनन' हीरा कहलाता है।

पर जोहान्सबर्ग 'स्वर्णपुरी' है और हीरेकी खाने भी उसके पास ही है, फिर भी वह ट्रासवालकी राजधानी नही है। उसकी राजधानी प्रिटोरिया है। यह जोहान्सबर्गसे ३६ मीलके फासलेपर है और वहा खासकरके राजदरबारी आदमियो तथा उनसे सबध रखनेवालोकी बस्ती है। इससे वहाका वातावरण कुछ शात माना जाता है। जोहान्सबर्गका वातावरण तो अतिशय अशात कहा जाता है। जैसे हिदुस्तानके किसी शातिभरे गाव या छोटेसे नगरसे कोई बबई जैसे महानगरमे पहुचे तो वहाके धूम-धडक्के और अशातिसे घबरा जाता है, प्रिटोरियामे जानेवालेको जोहान्सबर्गका दृश्य भी वैसा ही मालूम होता है। अगर यह कहे कि जोहान्सबर्गके लोग चलते नही, बल्कि दौडते है तो यह अतिशयोक्ति नही मानी जायगी। किसीको किसीकी ओर देखने तककी

'क्लीनन हीरेका वजन ३ हजार कैरट है। कोहेनूरका वजन १००कैरटके और रूसके राजमुकुटके हीरे 'ओर्लफ' का २०० कैरटके लगभग है।

फुरसत नही होती और हर एक इसी धुनमे गर्क दिखाई देता है कि कैसे कम-से-कम समयमे अधिक-से-अधिक पैसा कमा ले। ट्रासवालको छोडकर पश्चिमकी ओर और भी अदर जाइए तो आरेज फ्री स्टेट अथवा आरेजियाका उपनिवेश आता है। इसकी राजधानी व्लूमफोटीन है। यह अतिशय शात और छोटा-सा नगर है। आरेजियामे कोई खान-वान नही है। वहासे रेलपर कुछ घटेकी यात्रासे ही हम केप कॉलोनीकी सरहदपर पहुच जाते है। केप कॉलोनी दक्षिण अफ्रीकाका सबसे बडा उपनिवेश है। उसकी राजधानी और सबसे बडा बदरगाह केप टाउनके नामसे प्रसिद्ध है। 'केप आव गुड होप' नामका अतरीप इसी राज्यमे है। गुड होपके मानी है शुभाशा। वास्को डी गामा जब पुर्तगालसे हिदुस्तानकी खोजमे निकला तब उसने यही पहुचकर अपने जहाजका लगर डाला और यही उसे यह आशा बधी कि अब अपनी मुराद जरूर पूरी होगी। इसीसे इस स्थानका नाम 'शुभाशा अतरीप' रखा।

इन चार मुख्य ब्रिटिश उपनिवेशोके अतिरिक्त और कई प्रदेश है जो ब्रिटिश साम्राज्यके सरक्षणमे है और जिनमे उन लोगोकी बस्ती है जो दक्षिण अफ्रीकाके यूरोपियनोके आगमनके पहलेसे इस देशमे रहते थे।

दक्षिण अफ्रीकाका मुख्य धधा खेती ही माना जायगा। खेतीके लिए यह बहुत ही अच्छा देश है। कितने ही भाग तो अतिशय उपजाऊ और सुहावने है। अनाजोमे सबसे अधिक और आसानीसे उपजनेवाली फसल मकईकी है। मकई दक्षिण अफ्रीकाके हवशी बाशिदोका मुख्य आहार है। कुछ हिस्सोमे गेहू भी पैदा होता है। फलोके लिए तो दक्षिण अफ्रीका प्रसिद्ध है। नेटालमे बहुत किस्मोके और बहुत बढिया केले, पपीते और अनन्नास पकते है और इतनी इफरातसे कि गरीब-से-गरीब आदमीको भी मिल सके। नेटाल और दूसरे

उपनिवेशोमे भी नारगी, सतरा, 'पीच' और एप्रिकाट (जर्दालू) इतने बडे परिमाणमे पैदा होते है कि हजारो आदमी सामान्य श्रमसे देहातमे उन्हे बिना पैसेके पा सकते है। केप कॉलोनी तो अगूर और बडे बेर का देश है। वहा जैसे अगूर शायद ही और कही उपजते हो। मौसिममे वे इतने सस्ते हो जाते है कि गरीब आदमी भी जी भरकर खा सके। जहा हिंदुस्तानी बसते हो वहा आम न हो, यह हो नही सकता। हिंदुस्तानियोने आमकी गुठलिया बोई और इसका फल यह हुआ कि दक्षिण अफ्रीकामे आज आम भी अच्छी मात्रामे उपलभ्य है। उनकी कुछ किस्मे तो बेशक बबईके 'हापुस-पायरी' के साथ मुकाबला कर सकती है। साग-भाजी भी इस रसीली भूमिमे इफरातसे उपजती है और कह सकते है कि शौकीन हिंदुस्तानियोने हिंदुस्तानकी लगभग सभी साग-तरकारिया यहा उपजा ली है।

मवेशियोकी तादाद भी यहा काफी कही जा सकती है। गाय-बैल हिंदुस्तानके गाय-बैलोसे बडे डील-डौलवाले और अधिक बलवान होते है। गोरक्षाका दावा करनेवाले हिंदुस्तानमे कितने ही गाय-बैलोको हिंदुस्तानके लोगोकी तरह ही दुबला-सूखा देखकर मैने शर्मसे सिर झुकाया है और अनेक बार मेरा दिल उनकी दशा देखकर रोया है। दक्षिण अफ्रीकामे दुबली गाय या दुबला बैल मैने कही देखा हो, ऐसा मुझे याद नही आता, गोकि मै अपनी आखे प्राय खुली रखकर उसके सभी भागोमे फिरा हू। प्रकृतिने अपनी दूसरी देनोके साथ-साथ इस भूमिको सृष्टि-सौन्दर्यसे सवारनेमे भी कोताही नही की है। डर्बनका दृश्य तो बहुत ही सुन्दर माना जाता है, पर केप कॉलोनी उससे भी बढ-चढकर है। केप टाउन नगर 'टेबल माउटेन' नामक पहाडकी तलहटीमे बसा हुआ है जो न बहुत नीचा है और न बहुत ऊचा। दक्षिण

अफ्रीकाकी पूजा करनेवाली एक विदुषीने इस पहाडपर एक कविता लिखी है, जिसमे वह कहती है कि जो अलौकिकता मैने 'टेबल माउटेन' मे अनुभव की है वह मुझे किसी और पर्वतमे नही मिली। इसमे अतिशयोक्ति भले ही हो--मै मानता हू कि है--पर इस विदुषी बहनकी एक बात मेरे मनमे बैठ गई है। वह कहती है कि टेबुल माउटेन केप टाउन-निवासियोके मित्रका काम करता है। यह पर्वत बहुत ऊचा नही है। इससे डरावना नही लगता। लोगोको दूरसे ही उसका पूजन करके संतोष नही करना पडता; बल्कि वे इस पहाडपर ही घर बनाकर रहते है और बिलकुल समुद्रके किनारे होनेसे समुद्र सदा अपने स्वच्छ जलसे उसके पाव पखारा और उसका चरणामृत पिया करता है। बच्चे और बूढे, स्त्री और पुरुष सब निर्भय होकर लगभग सारे पहाडपर विचर सकते है और हजारो नगरवासियोके कोलाहलसे सारा पर्वत प्रतिदिन गूज उठता है। इसके विशाल वृक्ष, सुगध-भरे और रग-बिरगे फूल सारे पहाडको इस तरह सवार देते है कि उसकी सुषमा निरखते और उसपर विचरते लोग अघाते ही नही।

दक्षिण अफ्रीकामे इतनी बडी नदिया नही है जिनकी तुलना हमारी गगा-जमुनाके साथ की जा सके। थोडी नदिया है, पर वे बहुत छोटी कही जाएगी। इस देशमे बहुतेरे भाग ऐसे है जहा नदीका पानी पहुचता ही नही। ऊचे प्रदेशोमे नहरे भी कहासे लाई जाए? और जहा समुद्रकी समता करनेवाली नदिया न हो वहा नहरे कहासे हो सकती है? दक्षिण अफ्रीकामे जहा-जहा प्रकृतिने पानीकी तगी कर रखी है वहा पाताल जैसे गहरे कुए खोदकर पवनचक्कियो और भापकी कलोके जरिए इतना पानी खीचा जाता है कि खेतोको सीच सके। वहाकी सरकारकी तरफसे खेतोको

भरपूर मदद मिलती है। किसानोको सलाह देनेके लिए वह खेती के विशेषज्ञो को भेजा करती है। कितने ही स्थानोमे प्रजाके लाभके लिए सरकार अनेक प्रयोग किया करती है। वह नमूनेके खेत रखती है, लोगोको मवेशी और बीज मिलनेका सुभीता कर देती है, बहुत थोडे खर्चेसे बहुत गहरे कुए खुदवा देती है और उसकी कीमत किस्तोमे चुकानेका सुभीता किसानोके लिए कर देती है। इसी तरह लोहेके कटीले तारोकी बाड भी खेतोके इर्द-गिर्द लगवा देती है।

दक्षिण अफ्रीका भूमध्यरेखाके दक्षिणमे पडता है और हिंदुस्तान उत्तरमे। इससे वहाका सारा वातावरण हिंदुस्तानियोको उलटा-सा मालूम होता है। वहाका ऋतुक्रम भी विपरीत है। जब हमारे यहा गरमी होती है तब वहा जाडेके दिन होते है। वर्षाका वहा कोई पक्का नियम नही दिखाई देता। वह चाहे जब हो सकती है। आमतौरपर २० इचसे अधिक बारिश नही होती।

: २ :

इतिहास

अफ्रीकाके भूगोलपर निगाह डालते हुए जिन विभागोको हम देख गए है, पाठक यह न समझ ले कि वे आदिकालसे ही है। बिलकुल पुराने जमानेमे वहा कौनसे लोग बसते थे उसका पक्का निश्चय अभी नही हो सका है। यूरोपके लोग जब दक्षिण अफ्रीकामे आबाद हुए उस वक्त वहा हबशी जातिके लोग रहते थे। यह माना जाता है कि अमरीकामे जिन दिनो गुलामीका चक्र जोर-शोरसे चल रहा था उस वक्त ये हबशी वहासे भागकर दक्षिण अफ्रीकामे आ गये और

आवाद हुए। उनकी जुदा-जुदा जातिया है, जैसे जुलू, स्वाजी, वसूटो, वेकवाना इत्यादि। इनकी भापामे भी भेद है। ये हवशी ही दक्षिण अफ्रीकाके मूलनिवासी माने जाएगे। पर दक्षिण अफ्रीका इतना लवा-चौडा देश है कि फिलहाल जितने हवशी वहा वसते है उनसे वीस-तीस गुनी वडी आवादी उसमे सुखसे समा सकती है। डर्वनसे केप टाउन रेलके रास्ते लगभग १८०० मीलका सफर है। समुद्रकी राह भी एक हजार मीलसे कमका फासला नही है। इन चारो राज्योका रकवा ४,७३,००० वर्गमील है।

इस विशाल भूखडमे १९१४ मे हवशियोकी आवादी करीव ५० लाख और गोरोकी करीव १३ लाखके थी। हवशियोमे जुलू सवसे ज्यादा कद्दावर और सुदर कहे जा सकते है। हवशियोके लिए सुदर विशेषणका व्यवहार मैने जान-बूझकर किया है। सफेद चमड़े और नुकीली नाकपर हम रूपका आरोप किया करते है। इस वहमको क्षणभरके लिए अलग रख दे तो जुलू लोगोको गढ़नेमे ब्रह्माने कोई कसर रखी है, यह नही जान पड़ेगा। स्त्री-पुरुप दोनो ऊंचे कदके होते है, छाती अपनी ऊचाईके अनुपातसे चौडी होती है। सारे शरीरकी रगे सुगठित और खूव मजवूत होती है। इनकी पिडलिया और भुजाए भी सदा माससे भरी हुई और गोलाकार दिखाई देती है। कोई स्त्री या पुरुप झुककर या कूवड निकालकर चलता हुआ शायद ही कभी दिखाई देता हो। होठ अवश्य लवे और मोटे होते है, पर सारे शरीरके आकारको देखते हुए मै तो उन्हे तनिक भी वेडौल न कहूंगा। आखे गोल और तेजस्विनी होती है। नाक चपटी और वडी होती है, पर इतनी ही कि लवे-चौडे मुह-पर फवे। उनके सिरके घुंघराले वाल उनकी शीशम-जैसी काली और चमकीली त्वचापर खिल उठते है। आप किसी जुलूसे

पूछे कि दक्षिण अफ्रीकामे वसनेवाली जातियोमे सबमे अधिक सुदर तुम किसे कहोगे तो यह दावा वह अपनी जातिके लिए ही करेगा और इसमे मुझे उसका तनिक भी अज्ञान नही दिखाई देता। जो प्रयत्न सैडो आदि आज यूरोपमे अपने शागिर्दोकी बाहु, छाती आदिके व्यवस्थित विकासके लिए कर रहे है वैसे किसी भी प्रयत्नके बिना, कुदरती तौरपर ही, इस जातिके अग-प्रत्यग सुदृढ और गठे हुए दिखाई देते है। प्रकृतिका नियम है कि भूमध्य रेखाके नजदीक रहने-वालोका चमडा काला ही होना चाहिए और हम यह मान ले कि प्रकृति जो-जो शकले गढती है उसमे सुदरता होती ही है तो सौदर्यविषयक अपने सकुचित और एकदेशीय विचारोसे बच जाय। इतना ही नही, हिदुस्तानमे अपने ही चमडेको कुछ काला पाकर हमारे मनमे जो अशोभन लज्जा और अरुचि उत्पन्न होती है उससे भी हम मुक्त हो सकते है।

ये हवशी मिट्टी और फूसके गुबददार झोपडोमे रहते है। इन झोपडोमे एक ही गोल दीवार होती है और ऊपर फूसका छप्पर। छप्पर भीतर लगे हुए एक खभेपर टिका होता है। दरवाजा एक ही होता है और इतना नीचा कि बिना झुके कोई अदर नही जा सकता। यही दरवाजा हवाके आने-जानेका रास्ता होता है। उसमे किवाड तो शायद ही होते है। हम लोगोकी तरह ये लोग भी दीवार और जमीनको मिट्टी और गोबर-से लीपते है। ऐसा माना जाता है कि ये लोग कोई भी चोकोर चीज नही बना सकते। अपनी आखोको उन्होने केवल गोल चीज ही देखना और बनाना सिखाया है। हम प्रकृतिको भूमितिकी सरल रेखाए, सीधी आकृतिया बनाते नही पाते और प्रकृतिके इन निर्दोष भोले-भाले बच्चोका ज्ञान उनके प्रकृतिके अनुभवपर ही आश्रित होता है।

उनके इस मिट्टीके महलमे साज-सामान भी उसके अनुरूप ही होता है। यूरोपीय सभ्यताके प्रवेशके पहले ये पहनने-ओढने, सोने-बैठने सबमे चमडेका ही उपयोग करते थे। कुरसी-मेज, सदूक-पिटारा रखनेको तो इस 'महल'मे जगह भी नही होती और अग्रेजीके आधारपर आज भी इनके दर्शन वहां शायद ही होते है। अब उनके घरोमे कबलका प्रवेश हो गया है। ब्रिटिश राजके पहुचनेके पहले हबशी स्त्री-पुरुष लगभग नगे ही फिरा करते थे। आज भी देहातमे बहुतेरे इसी तरह रहते है। गुह्य अगोको वे एक चमडेसे ढक लेते है। कोई-कोई यह भी नही करते, पर इसका अर्थ कोई पाठक यह न कर ले कि ये लोग अपनी इद्रियोको वशमे नही रख सकते। जहा एक बडा समुदाय किसी रूढिसे बधकर व्यवहार करता हो वहा यह बात बिलकुल मुमकिन है कि दूसरे समुदायको वह रूढि अयोग्य मालूम होती हो, फिर भी पहले समुदायकी निगाहमे उसमे तनिक भी दोष न हो। इन हबशियो-को एक दूसरेकी ओर ताकने-झाकनेकी फुरसत ही नही होती। भागवतकार कहते है कि शुकदेवजी जब नगी नहाती हुई स्त्रियोके बीचसे होकर चले गए तो न उनके मनमे तनिक भी विकार उत्पन्न हुआ, न उन निष्पाप स्त्रियोको तनिक भी क्षोभ हुआ या जरा भी शर्म आई। मुझे इसमे कुछ भी अलौकिक नही दिखाई देता। हिदुस्तानमे आज ऐसे मौकेपर हममेसे कोई भी इतनी स्वच्छता, इतनी निर्विकारताका अनुभव नही कर सकता तो यह कुछ मनुष्य-जातिकी पवित्रताकी सीमा नही है, बल्कि हमारे दुर्भाग्यकी निशानी है। हम जो इन लोगोको जगली मानते है यह तो हमारे अभिमानकी प्रतिध्वनि है। जैसा हम मानते है वैसे जगली वे नही है।

ये हबशी जब शहरमे आते है तब उनकी स्त्रियोके लिए यह नियम है कि उन्हे छातीसे घुटनेतकका भाग अवश्य ढक रखना

चाहिए। इस कारण उन्हे पसद न होते हुए भी वैसा कपडा लपेटना पडता है। इससे दक्षिण अफ्रीकामे इस नापके कपडेकी बहुत खपत होती है और ऐसे लाखो कबल और चादरें हर साल यूरोपसे आती है। पुरुषोके लिए अपनी देहको कमरसे घुटनेतक ढक रखना लाजिमी है। इससे उन्होने यूरोपके उतारे हुए कपडे पहननेका चलन चला दिया है। जो यह नही करते वे नेफादार जाघिया पहनते है। ये सारे कपडे यूरोपसे ही आते है।

इन लोगोकी खास खुराक मकई और जब मिल जाय तब मास है। मसाले वगैरहसे तो खुशकिस्मतीसे वे बिलकुल अनजान है। इनके भोजनमे मसाला पडा हो या हल्दीका रग भी आ गया हो तो ये नाक-भौ सिकोडेगे और जो निरे जगली कहे जाते है वे तो उसे छुएगे भी नही। साबित उबाली हुई मकईको थोडा नमक मिलाकर एक वक्तमे एक सेर खा लेना साधारण जुलूके लिए कोई असाधारण बात नही है। मकईके आटेको पानीमे पकाकर उसकी लपसी बनाकर खानेमे वे सतोप मानते है। मास जब मिल जाय तब कच्चा या पक्का, उबालकर या भूनकर, केवल नमकके साथ, खा लेते है। मास चाहे जिस प्राणीका हो, उसे खाते उन्हे हिचक नही होती।

उनकी भापाके नाम भी जातिके नामपर ही होते है। लेखन-कलाका प्रवेश गोरोके ही द्वारा हुआ है। हबशी वर्ण-माला-जैसी कोई चीज नही है। हालमे रोमन लिपिमे बाइबिल आदि पुस्तके हबशी भापाओमे छापी गई है। जुलू भापा अत्यत मधुर है। अधिकाश शब्दोके अतमे 'आ' का उच्चारण होता है। इससे भापाकी ध्वनि कानोको हल्की और मीठी लगती है। मैने पढा और सुना है कि उनके शब्दोमे अर्थ और काव्य दोनो होते है। जिन थोडेसे शब्दोका ज्ञान मुझे अनायास हो गया है उनके आधारपर मुझे यह मत ठीक मालूम

होता है। नगरो आदिके यूरोपियनोके रखे हुए नाम जो मैने दिये है उनके काव्यमय हवशी नाम भी है ही, पर वे मुझे याद नही रहे। इससे उन्हे नही दे सका।

पादरियोके मतानुसार तो हबशियोका न कोई धर्म था और न है, पर धर्मको व्यापक अर्थमे ले तो कह सकते है कि वे एक ऐसी अलौकिक शक्तिको अवश्य मानते और पूजते है, जिसे वे खुद पहचान नही सकते। इस शक्तिसे वे डरते भी है। शरीरके नाशके साथ मनुष्यका सर्वथा नाश नही होता, इसकी भी उन्हे धुधली प्रतीति होती है। हम नीतिको धर्मका आधार माने तो नीतिपालक होनेके कारण उन्हे धर्म-निष्ठ भी मान सकते है। सच और झूठके भेदको वे पूरी तरह समझते है। अपनी स्वाभाविक अवस्थामे वे जिस सीमातक सत्यका पालन करते है, गोरे या हम लोग उस सीमातक उसका पालन करते है या नही, इसमे शक है। उनके मदिर-देवालय नही होते। दूसरी जातियोकी तरह इन लोगोमे भी बहुत तरहके वहम देखनेमे आते है। पाठकोको यह जानकर अचरज होगा कि शरीर-बलमे दुनियाकी किसी भी जातिसे हेठी न ठहरनेवाली यह कौम वस्तुत इतनी डरपोक, इतनी बुजदिल है कि हवशी जवान गोरे बालकको भी देखकर डर जाता है। कोई उसके सामने तमचा तान दे तो वह या तो भाग जायगा या ऐसे जड बन जायगा कि उसमे भागनेकी शक्ति भी न रहेगी। इसका कारण तो है ही। उसके दिलमे यह बात बैठ गई है कि मुट्ठीभर गोरोने जो ऐसी बडी और जगली जाति-को वशमे कर रखा है यह जरूर कोई जादू होना चाहिए। भाले और तीरसे काम लेना हबशी बहुत अच्छी तरह जानते थे। ये तो उनसे छीन लिए गए है। बदूक उन्होने न कभी देखी, न चलाई। जिसको न दियासलाई दिखानी पडती है, न एक उगली हिलानेके सिवा और कोई हरकत

करनी पडती है, फिर भी एक छोटी-सी नलीसे यकायक आवाज होती है, आग भडकती है और गोली लगकर क्षणभरमे आदमीका काम तमाम कर देती है ! यह ऐसा चमत्कार है जो बेचारे हवशीकी समझमे नही आ सकता । इससे वह इस चीजको काममे लानेवालेके डरसे हमेशा बदहवास रहता है । उसने और उसके बाप-दादोने देखा है कि इन गोलियोने कितने ही असहाय और निरपराध हवशियोकी जान ले ली है । यह क्यो और कैसे होता है, बहुतेरे हवशी इसे आज भी नही जानते ।

इस जातिमे 'सभ्यता' धीरे-धीरे प्रविष्ट होती जा रही है । एक ओरसे भले पादरी ईसामसीहका सदेश, जैसा कुछ उन्होने उसे समझा है, उनके पास पहुचा रहे है । उनके लिए मदरसे खोल रहे है और उन्हे सामान्य अक्षरज्ञान दे रहे है । इनकी कोशिशसे कितने ही चरित्रवान हवशी भी तैयार हुए है, पर बहुतेरे जो अक्षरज्ञान और सभ्यतासे परिचित न होनेके कारण अनेक अनीतियोसे बचे हुए थे, आज ढोगी-पाखडी भी हो रहे है । जो हवशी 'सभ्यता' के सपर्कमे आ चुके है उनमे शायद ही कोई ऐसा हो जो शराबकी बुराईसे बचा हो । उनके तगडे मस्त शरीरपर जब शराबका भूत सवार होता है तब वे पूरे पागल हो जाते है और न करनेके सब काम कर डालते है । सभ्यताके साथ-साथ आवश्यकताओका बढना तो इतना ही पक्का है जितना दो और दो मिलकर चार होना । जरूरते बढानेके लिए हो या उन्हे श्रमका मूल्य सिखानेके लिए, हर हवशीको 'मुड-कर' या व्यक्ति-कर (Poll tax) और कुटी-कर (Hut tax) देना पडता है । ये कर न लगाए जाय तो यह अपने खेतोमे रहनेवाली जाति खानोमे सोना या हीरा निकालनेके लिए जमीनके अदर सैकडो गजकी गहराईमे क्यो उतरने जाय ? और इन खानोके लिए इनका श्रम सुलभ न हो तो सोना और हीरे

पृथ्वीके उदरमे ही पडे रह जाय। वैसे ही इनपर कर लगाये विना यूरोपियनोको नौकर मिलना भी कठिन होगा। इसका फल यह हुआ है कि खानोके भीतर काम करनेवाले हजारो हवशियोको दूसरे रोगोके साथ-साथ एक प्रकारका क्षय रोग भी हो जाता है जिसे 'माइनर्स थाइसिस' (खानमे काम करनेवालोका क्षय) कहते है। यह रोग प्राणहारी है। इसके पजेमे पडनेके वाद विरले ही उवरते है। ऐसे हजारो आदमी एक खानके अदर रहे और उनके वाल-वच्चे साथ न हो तो उस दशामे वे कितना सयम रख सकते है, पाठक इसका सहज ही अनुमान कर सकते है। इसके फलस्वरूप पैदा होनेवाले रोगोके भी ये लोग शिकार हो जाते है। दक्षिण अफ्रीकाके विचारशील गोरे भी इस गभीर प्रश्नपर विचार न करते हो, सो वात नही है। उनमेसे कितने ही अवश्य यह मानते है कि सभ्यताका असर इस जातिपर कुल मिलाकर अच्छा पडा है, यह दावा शायद ही किया जा सकता है। इसका वुरा असर तो हर आदमी देख सकता है।

इस महान् देशमे जहा ऐसी सरल, निर्दोष जाति बसती थी, कोई चार सौ साल पहले वलदा लोगोने पडाव डाला। ये गुलाम तो रखते ही थे, अपने जावाके उपनिवेशसे कितने ही वलदा अपने मलायी गुलामोको लेकर उस प्रदेशमे दाखिल हुए जिसे आज हम केप कालोनी कहते है। ये मलायी लोग मुसलमान है। उनमे वलदा लोगो का रक्त और वैसे ही उनके कितने ही गुण भी है। वे सारे दक्षिण अफ्रीकामे इक्के-दुक्के विखरे हुए दिखाई देते है, पर उनका केन्द्र केप टाउन ही माना जाता है। आज उनमेसे कितने ही गोरोकी नौकरी करते है और दूसरे स्वतत्र व्यवसाय करते है। मलायी स्त्रिया वडी ही मेहनती और होशियार होती है। उनकी रहन-सहन आम तौरसे साफ-सुथरी दिखाई देती है। औरते धुलाई और सिलाई-

का काम बहुत अच्छा कर सकती है। मर्द कोई छोटा-मोटा रोजगार करते है। बहुतेरे तागा-गाडी हाकनेका धधा करके गुजर-बसर करते है। कुछने ऊचे दरजेकी अग्रेजी शिक्षा भी प्राप्त की है। उनमेसे एक डाक्टर अब्दुलरहमान केप टाउनमे मशहूर है। वह केप टाउनकी पुरानी धारा सभामे भी पहुच गए थे। नए विधानमे प्रधान धारा सभामे जानेका यह हक छीन लिया गया है।

वलदा लोगोका वर्णन करते हुए बीचमे मलायी लोगोका जिक्र अपने आप आ गया। पर अब हम जरा देखे कि वलदा लोग किस तरह आगे बढे। वलदाके मानी डच होते है, यह मुझे बतानेकी जरूरत नही होनी चाहिए। ये लोग जितने बहादुर योद्धा थे और है उतने ही कुशल किसान थे और आज भी है। उन्होने देखा कि हमारे आसपासका देश खेतीके लिए बहुत ही उपयुक्त है। उन्होने यह भी देखा कि इस देशके असल बाशिदे सालमे कुछ ही दिन काम करके आसानीसे अपना निर्वाह कर सकते है। तब उनसे मजदूरी क्यो न कराये? वलदाके पास युद्धकला थी, बदूक थी और दूसरे प्राणियोकी तरह आदमियोको भी कैसे वशमे किया जाता है, यह जानते थे। उनका विश्वास था कि ऐसा करनेमे धर्मकी कोई बाधा नही है। अत अपने कार्यके औचित्यके विषयमे तनिक भी शकाशील हुए बिना उन्होने दक्षिण अफ्रीकाके मूलनिवासियोकी मजदूरीके बलपर खेती आदि करना शुरू कर दिया।

जैसे वलदा दुनियामे अपना फैलाव करनेके लिए अच्छी-अच्छी जमीने ढूढ रहे थे वैसे ही अग्रेज भी उस फेरमे फिर रहे थे। अत धीरे-धीरे अग्रेज भी यहा पहुचे। अग्रेज और डच चचेरे भाई तो है ही। दोनोका स्वभाव एक, लोभ एक। एक ही कुम्हारके बनाये हुए मटके जब इकट्ठे होते

है तो कभी-कभी आपसमे टकराकर फूटते भी है। वैसे ही ये दोनो जातिया भी धीरे-धीरे देशमे घुसते और हवशियोको वशमे करते हुए एक दूसरेसे टकरा गई। इनमे भी झगडे हुए, लडाइया भी हुई। मजूबाकी पहाडीपर अग्रेजोने हार भी खाई। इस हारका दाग उनके दिलपर रह गया और वह पककर फोडा बन गया। यह फोडा १८९९ से १९०२ ई० तक जो जगत-प्रसिद्ध युद्ध हुआ उसमे फूटा। लार्ड राबर्ट्सनने जब जनरल क्रोजेको अपने अधीन किया तब उन्होने स्वर्गीया महारानी विक्टोरियाको यह तार किया--"मजूबाका बदला ले लिया।" पर इन दोनोके बीच जब पहली (बोअर-युद्धके पहले) मुठभेड हुई तब बहुतेरे वलदा लोग अग्रेजोके नामकी हुकूमत भी कबूल करनेको तैयार न थे। इसलिए दक्षिण अफ्रीकाके अज्ञात भीतरी भागमे चले गये। इसीके फलस्वरूप ट्रासवाल और आरेज फ्री स्टेटकी उत्पत्ति हुई।

यही वलदा या डच लोग दक्षिण अफ्रीकामे बोअरके नामसे पुकारे जाने लगे। उन्होने अपनी भाषाकी रक्षा उससे उसी तरह चिपके रहकर की है जैसे बच्चा मातासे चिपका रहता है। अपनी स्वतन्त्रताके साथ अपनी भाषाका अतिशय निकट सबध है, यह बात उनके अतरमे अकित हो गई है। उसपर कितने ही हमले हुए, फिर भी वे अपनी भाषाकी रक्षा किये जा रहे है। इस भाषाने भी अब ऐसा नया रूप ग्रहण कर लिया है जो यहाके लोगोके अनुकूल हो। हालैडके साथ वे अपना निकट सबध बनाये नही रख सके, इससे जैसे सस्कृतसे प्राकृत भाषाए निकली वैसे ही डच भाषासे अपभ्रष्ट डच-बोअर लोग बोलने लगे। पर अब वे अपने बच्चोपर अनावश्यक बोझ डालना नही चाहते। इसलिए इस प्राकृत बोलीको स्थायी रूप दे दिया है और वह 'टाल'के नामसे विख्यात है। उसीमे उनकी पुस्तके लिखी जाती है। बच्चोकी पढाई इसी

भाषामे होती है और धारा सभाके बोअर सदस्य उसीमे भाषण भी करते है। यूनियनकी स्थापनाके बाद सारे दक्षिण अफ्रीकामे दोनो भाषाओ, 'टाल' या डच और अग्रेजी-को समान पद प्राप्त है, यहातक कि उसके सरकारी गजट और धारा सभाकी कार्रवाईका दोनो भाषाओमे प्रकाशित होना जरूरी है।

बोअर लोग सीधे, भोले और धर्ममे पक्की निष्ठा रखने-वाले होते है। वे बडे-बडे खेतोके बीच बसते है। उनके खेतोके विस्तारकी कल्पना हमे नही हो सकती। हमारे किसानोके खेतके मानी होते है दो या तीन बीघे जमीन। अकसर इससे भी छोटे होते है। उनके खेतोका स्वरूप यह है कि एक-एक आदमीके पास सैकडो-हजारो बीघा जमीन होती है। यह सारी जमीन तत्काल जोत डालनेका लोभ भी इन किसानोको नही होता। कोई उनसे दलील करे तो कहते है—"पडी रहने दो। जिस जमीनको हम न जोतेगे उसे हमारी सतान जोतेगी।"

हरएक बोअर युद्धकलाका पूरा पडित होता है। वे आपसमे भले ही लडते-झगडते रहे, पर अपनी आजादी उन्हे इतनी प्यारी होती है कि जब उनके ऊपर हमला होता है तो सारे बोअर उसका सामना करनेको जुट जाते है और एकजान होकर लडते है। उन्हे लबी कवायदकी जरूरत नही होती, क्योकि लडना सारी जातिका स्वभाव या सहज गुण है। जनरल स्मट्स, जनरल डी वेट, जनरल हर्जोग, तीनो बडे वकील और बडे किसान है और तीनो वैसे ही बडे लडवैया भी है। जनरल बोथाके पास नौ हजार एकडका एक खेत था। खेतीकी सारी पेचीदगिया उन्हे मालूम थी। सुलहके लिए जब वह यूरोप गये तब उनके बारेमे कहा गया कि भेडोकी परीक्षामे उनके-जैसा कुशल यूरोपमे भी शायद ही कोई हो। यही जनरल बोथा

स्वर्गीय राष्ट्रपति क्रूगरके स्थानापन्न हुए। उन्हे अग्रेजी अच्छी आती थी, फिर भी इगलैडमे जब वे बादशाह और मन्त्रिमंडलसे मिले तब उन्होने सदा अपनी मातृभाषामे ही बातचीत करना पसद किया। कौन कह सकता है कि उनका यह आग्रह उचित नही था? अपना अग्रेजीका ज्ञान दिखानेके लिए गलतिया करनेकी जोखिम वह क्यो उठाये? उपयुक्त शब्दकी तलाशमे उनके विचारोकी शृखला टूट जाय, यह साहस वह किस लिए करे? मन्त्रिगण अनजानमे कोई अपरिचित अग्रेजी मुहावरा बोल जाय, वह उसका अर्थ न समझे और कुछ-का-कुछ जवाब दे जाए, शायद घबरा जाए और यो उनका काम बिगड जाय, ऐसी सगीन गलती वह क्यो करे?

बोअर पुरुष जैसे बहादुर और सीधे है, बोअर स्त्रियां भी वैसी ही बहादुर और सरल स्वभावकी होती है। बोअर युद्धके समय जो बोअर लोगोने अपना खून बहाया वह बलि वे बोअर स्त्रियोकी हिम्मत और उनसे मिलनेवाले बढावेके बल-पर ही दे सके। इन स्त्रियोको न अपना सुहाग उजडनेका डर था और न भविष्यकी ही चिता थी। मै कह चुका हूं कि बोअर लोग ईसाई है और धर्ममे पक्की आस्था रखनेवाले है। पर वे हजरत ईसाके नये इकरारनामे (न्यू टेस्टामेट) को मानते है, यह नही कह सकते। सच पूछिए तो यूरोप ही नये इकरारनामेको कहा मानता है? फिर भी यूरोपमे नये इकेरारनामेका आदर करनेका दावा किया ही जाता है, गोकि कुछ ही यूरोपवासी ईसामसीहके शाति-धर्मको जानते और उसका पालन करते है। पर बोअर लोगोके बारेमे तो कह सकते है कि वे नये करारका नामभर जानते है। पुराने करार (ओल्ड टेस्टामेट) को वे अवश्य भावपूर्वक पढते और उसमे जो लडाइयोका वर्णन है उसे कठ करते है। हजरत मूसाका 'दातके बदले दात और आखके बदले आख' की शिक्षाको वे

पूरे तौरसे मानते है और जैसा मानते है वैसा ही आचरण भी करते है।

बोअर स्त्रियोने भी यह मानकर कि अपनी स्वतत्रताकी रक्षाके खातिर जितना भी दुःख सहन करना पडे वह धर्मका आदेश है, धीरज और आनदसे सारी मुसीबते सह ली। उन्हे झुकानेके लिए स्वर्गीय लार्ड किचनरने कोई उपाय उठा नही रखा। उन्हे जुदा-जुदा शिविरो या इहातोमे वद करवा दिया, जहा उनपर असह्य आपत्तिया आई, खाने-पीनेकी सासत, ठढसे और गरमी-धूपसे वेहाल। कोई शराब पीकर वदहवास या कामाध सैनिक इन असहाय स्त्रियोपर आक्रमण भी कर वैठता। इन इहातोमे अनेक प्रकारके उपद्रव हुआ करते थे। फिर भी ये वहादुर स्त्रिया न झुकी। अतमे वादशाह एडवर्डने लार्ड किचनरको लिखा--"मुझसे यह सहन नही हो सकता। वोअर स्त्रियोको झुकानेका अगर हमारे पास यही इलाज हो तो इसकी वनिस्वत चाहे जैसी भी सुलह कर लेना मै पसद करूगा। आप लडाईको जल्दी समेटिये।"

इस सारे दुःख-दर्दकी आवाज जब इगलैड पहुची तब ब्रिटिश जनता वहुत दुःखी हुई। वोअरोकी वहादुरीसे वह आश्चर्यचकित हो रही थी। ऐसी छोटी-सी जाति दुनियाको घेर रखनेवाली सल्तनतके छक्के छुडा दे, यह वात तो ब्रिटिश जनताके मनमे चुभती ही रहती थी। पर जब उसे इन इहातोके भीतर वद स्त्रियोका आर्तनाद, उन स्त्रियोके द्वारा नही, उनके मर्दोके द्वारा भी नही—वे तो रणमे ही जूझ रहे थे—वल्कि उन इक्के-दुक्के उदार-चरित अग्रेज स्त्री-पुरुषोके जरिये जो उस वक्त दक्षिण अफ्रीकामे मौजूद थे, पहुचा तो उसके अदर अनुतापका उदय हुआ। स्वर्गीय सर हेनरी केम्पवेल वैनरमैनने अग्रेज जनताके हृदयको पहचाना और युद्धके विरुद्ध

गर्जना की। स्वर्गीय श्रीस्टेडने प्रकट रूपसे ईश्वरसे प्रार्थना की कि वह इस युद्धमे अग्रेजोको हरा दे और दूसरोको भी वैसा करनेकी प्रेरणा की। यह दृश्य अद्‌भुत था। सच्चा दुःख सचाईके साथ सहा जाय तो वह पत्थरके दिलको भी पानी कर देता है। यह है इस कष्ट-सहन अर्थात् तपस्याकी महिमा और इसमे ही सत्याग्रहकी कुजी है।

इसका फल यह हुआ कि फीनिखनकी सुलह हुई और दक्षिण अफ्रीकाके चारो राज्य एक शासन-प्रवंधके नीचे आये। यद्यपि इस सुलहकी वात अखवार पढनेवाले हर हिंदुस्तानीको मालूम है, फिर भी एक-दो वाते ऐसी है जिनकी कल्पनातक वहुतोको होना मुमकिन नही। फीनिखनकी सुलह होते ही दक्षिण अफ्रीकाके चारो राज्य एकमे मिल गये हो सो वात नही। हर एककी अपनी धारा सभा थी। उनका शासक मण्डल धारा सभाके सामने पूरे तौरपर जवाव-देह न था। ट्रासवाल और फ्री स्टेटकी राज्य व्यवस्था 'क्राउन-कॉलोनी'---शाही उपनिवेश---के ढगकी थी। ऐसे सकुचित अधिकारसे जनरल बोथा या जनरल स्मट्सको सतोप न हो सकता था। फिर भी लार्ड मिलनरने विना दूल्हेकी वरात निकालना मुनासिव समझा। जनरल बोथा और जनरल स्मट्स धारा सभासे अलग रहे। उन्होने असहयोग किया। सरकारसे सवध रखनेसे साफ इनकार कर दिया। लार्ड मिलनरने तीखा भाषण किया और कहा कि जनरल वोथाको यह मान लेनेकी जरूरत नही है कि यह सारा भार उन्हीके सिर है। राज्यव्यवस्था उनके विना भी चल सकती है।

वोअरोकी वहादुरी, उनकी स्वतत्रता, उनकी कुरवानीके वारेमे मैने दिल खोलकर लिखा है। फिर भी पाठकोके मनपर यह छाप डालनेका मेरा इरादा नही था कि सकटकालमे भी उनमे मतभेद नही हो सकता, या उनमे कोई कमजोर दिल-

वाला था ही नही । लार्ड मिलनर वोअरोमे भी सहजमे राजी हो जानेवाला दल खडा कर सके और यह मान लिया कि इसकी मददसे मै धारा सभाको चमका सकूगा । एक नाटक-कार भी मुख्य पात्र--नायक--के विना अपने नाटकको सुदर नही वना सकता । फिर इस कठोर ससारमे राजकाज चलानेवाला आदमी प्रधान पात्रको भूल जाय और सफल होनेकी आशा रखे तो वह पागल ही कहा जायगा। सचमुच लार्ड मिलनर-की यही दशा हुई । यह भी कहा जाता था कि उन्होने धमकी तो दे दी, पर जनरल वोथाके विना ट्रासवाल और फ्री स्टेटका राज्य-प्रवध चलाना उन्हे इतना कठिन हो गया कि अपने वगीचेमे अक्सर चितातुर और वदहवास दिखाई देते थे । जनरल वोथाने स्पष्ट शव्दोमे कह दिया कि फ्रीनिखनके सुलहनामेका अर्थ मैने तो साफ तौरपर यही समझा था कि वोअर लोगोको अपनी भीतरी व्यवस्थाका पूरा-पूरा अधिकार तुरत मिल जायगा। उन्होने यह भी कहा कि ऐसा न होता तो मै कभी उसपर दस्तखत न करता । लार्ड किचनरने इसके जवावमे कहा कि मैने जनरल वोथा-को इस तरहका कोई विश्वास नही दिलाया था । वोअर जनता ज्यो-ज्यो विश्वासकी अधिकारिणी सिद्ध होती जायगी त्यो-त्यो उन्हें स्वतत्रता मिलती जायगी। अव इन दोनोके वीच कौन इसाफ करे ? कोई किसीको पच मान लेनेकी वात कहे तो भी जनरल वोथाको वह क्यो मजूर होने लगी ? इस अवसरपर वडी सरकारने जो न्याय किया वह उसको सपूर्ण रीतिसे शोभा देनेवाला था। उसने यह मजूर किया कि विपक्षने--उसमे भी निर्वल पक्षने--समझौतेका जो अर्थ समझा हो वह अर्थ सवल पक्षको स्वीकार करना ही चाहिए। न्याय और सत्यकी नीतिसे तो सदा यही अर्थ ठीक होता है । अपने कथनका मैने अपने मनमे चाहे जो अर्थ रखा हो, फिर भी मुझे मानना चाहिए कि उसका जो असर सुनने या पढनेवालेके मनपर पडता हो उसी अर्थमे

मैने अपनी बात कही या लेख लिखा। इस सुनहले नियमका पालन हम व्यवहारमे अकसर नही करते, इसीसे बहुतसे विवाद पैदा होते है और सत्यके नामपर अर्धसत्य—वस्तुत डेढ असत्य—काममे लाया जाता है।

इस प्रकार जब सत्यकी—यानी यहा जनरल बोथाकी. पूरी विजय हुई तब वे काममे जुट गये। इसके फलस्वरूप सब राज्य इकट्ठे हो गये और दक्षिण अफ्रीकाको सपूर्ण स्वाधीनता मिल गई। उसका झडा यूनियन जैक है। नक्गेमे इस प्रदेगका रग लाल है। फिर भी दक्षिण अफ्रीका पूरे तौरपर स्वतत्र है, यह माननेमे तनिक भी अतिगयता नही है। ब्रिटिग साम्राज्य दक्षिण अफ्रीकाका कारबार करनेवालोकी रजामंदीके बिना वहासे एक पाई भी नही ले सकता। इतना ही नही, ब्रिटिग मत्रियोने स्वीकार कर लिया है कि दक्षिण अफ्रीका ब्रिटिग झडेको उतार फेकना और नामसे भी स्वतत्र हो जाना चाहे तो उसे कोई रोकनेवाला नही है। और अगर वहाके गोरोने अबतक ऐसा कदम नही उठाया तो इसके सबल कारण है। एक तो यह कि बोअर जनताके नेता चतुर और समझदार है। ब्रिटिग साम्राज्यके साथ इस तरहकी साझेदारी या सबध, जिसमे खुद उन्हे कुछ भी खोना न पड़े, वे रखे तो इसमे कोई दोप नही। पर इसके सिवा दूसरा व्यावहारिक कारण भी है। और वह यह कि नेटालमे अग्रेजोकी सख्या अधिक है। केप कालोनीमे अग्रेजोकी संख्या अधिक है, पर बोअर लोगोसे ज्यादा नही है और जोहान्सबर्गमे केवल अंग्रेजोका ही प्रभाव है। इसलिए बोअर जाति सारे दक्षिण अफ्रीकामे स्वतत्र प्रजातत्र राज्य स्थापित करना चाहे तो यह घरमे ही झगडा खडा कर लेना है और गायद गृहयुद्ध भी भडक उठे। इसीसे दक्षिण अफ्रीका आज भी ब्रिटिग उपनिवेग कहलाता है।

यूनियनका विधान किस तरह बना यह भी जानने लायक

बात है। चारो राज्योकी धारा सभाओने एकमत होकर यूनियन संयुक्तराज्यका विधान बनाया। ब्रिटिश पार्लमेंट-को उसे अक्षरश स्वीकार कर लेना पडा। आम सभाके एक सदस्यने उसके एक व्याकरण-दोषकी ओर ध्यान खीचकर गलत शब्द निकाल देनेकी सलाह दी। स्वर्गीय सर हेनरी कैम्पबेल बैनरमैनने इस सुझावको नामजूर करते हुए कहा कि राज्य-व्यवस्था शुद्ध व्याकरणसे नही चला करती। यह विधान ब्रिटिश मंत्रिमडल और दक्षिण अफ्रीकाके मंत्रियोमे मशवरा होकर तैयार हुआ है। उसका व्याकरण-दोषतक दूर करनेका अधिकार ब्रिटिश पार्लमेंटके लिए नही रखा गया है। फलत यह विधान ज्यो-का-त्यो आम-सभा और उमराव सभा दोनोको मजूर करना पडा।

इस प्रसगमे एक तीसरी बात भी उल्लेखनीय है। विधान-मे कितनी ही धाराए ऐसी है जो तटस्थ व्यक्तिको अवश्य बेकार मालूम होगी। उनके कारण खर्च भी बहुत बढा है। यह दोष विधान बनानेवालेकी दृष्टिके बाहर नही था, पर उनका उद्देश्य पूर्णता प्राप्त करना नही था, बल्कि कुछ घट-बढकर एकमत होना और अपने प्रयत्नको सफल करना था। इसीसे इस वक्त यूनियनकी चार राजधानिया मानी जाती है, क्योकि उपराज्योमेसे कोई भी अपनी राजधानीका महत्त्व छोड देनेको तैयार नही है। चारो राज्योकी स्थानीय धारा सभाए भी कायम रखी गई है। चारो राज्योको गवर्नर-जैसा कोई अधिकारी भी चाहिए ही। इससे चार प्रांतीय शासक स्वीकार किए गये है। हर आदमी समझता है कि चार स्थानीय धारा सभाए, चार राजधानिया और चार हाकिम बकरीके गलेके स्तनकी तरह निरर्थक और निरे आडबररूप है। पर दक्षिण अफ्रीकाके व्यवहारकुशल राजनीतिज्ञोने इसकी परवा न की। इस प्रबधमे आडबर था और खर्च

बढता था। फिर भी चारो राज्योका एक हो जाना वाछनीय था। इससे उन्होने वाहरी दुनियाकी नुक्ताचीनीकी चिता न कर जो उन्हे ठीक मालूम होता था वह किया और ब्रिटिश पार्लमेटसे उसे मजूर कराया।

इस प्रकार दक्षिण अफ्रीकाका अतिशय सक्षिप्त इतिहास पाठकोकी जानकारीके लिए मैने देनेका यत्न किया है। मुझे जान पड़ा कि इसके विना सत्याग्रहके महान् सग्रामका रहस्य नही समझाया जा सकेगा। अव मूल विषयपर आनेके पहले हमे यह देखना है कि इस देशमे हिदुस्तानी कैसे आए और सत्याग्रह-कालके पहले अपने ऊपर आनेवाली मुसीबतोसे किस तरह जूझे।

: ३ :

दक्षिण अफ्रीकामें भारतीयोंका आगमन

पिछले प्रकरणमे हम यह देख चुके कि नेटालमे अग्रेज किस तरह आ वसे। उन्होने जुलू लोगोसे कुछ हक हासिल किये। अनुभवसे उन्होने देखा कि नेटालमे ईख, चाय और कहवेकी फसल खूव अच्छी हो सकती है। बडे पैमानेपर इन्हे उपजानेके लिए हजारो मजदूर होने चाहिए। दस-वीस अग्रेज-कुटुव इस मददके विना ऐसी फसले नही उपजा सकते। अत उन्होने हवशियोको काम करनेके लिए ललचाया और डराया भी, पर अव गुलामीका कानून रह नही गया था। इससे सफलताके लिए जितना चाहिए था उतना दवाव वे हवशियोपर न डाल सके। हवशी ज्यादा मेहनत करनेका आदी नही। छ. महीनेकी मामूली मेहनतसे वह मजेमे गुजर कर सकता है। फिर किसी मालिकके साथ वह लवी मुद्दत-

के लिए क्यो बधे ? और जबतक पक्के, बारहमासी मजदूर न मिले तबतक अग्रेज अपना अभीष्ट सिद्ध न कर सकते थे। अत उन लोगोने भारत-सरकारके साथ लिखा-पढी शुरू की और हिंदुस्तानसे मजदूरोकी मदद मागी। भारत-सरकार-ने नेटालकी माग मजूर की और हिंदुस्तानी मजदूरोका पहला जहाज १८६० की १६ वी नवबरको नेटाल पहुचा। दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहके इतिहासमे यह तारीख महत्व पूर्ण है, क्योकि इस पुस्तक और इसके विषयका मूल इसी घटनामे है।

मेरे विचारसे भारत-सरकारने यह माग मजूर करनेमे भलीभाति सोचा-विचारा नही। यहाके अग्रेज अधिकारी जाने-बेजाने नेटालके अपने भाइयोकी ओर झुके। अवश्य ही जहातक हो सकता था, मजदूरोके बचावकी शर्ते उन्होने इकरारनामेमे दाखिल करा दी और उनके खाने-पीनेका सामान्य सुभीता भी करा दिया, पर यो दूर देशको गये हुए अपट मज-दूरोपर कोई कष्ट पडे तो वे उससे कैसे छुटकारा पा सकेगे, इसका पूरा खयाल तो उन्हे नही रहा। उनके धर्मका क्या होगा, अपनी नीतिकी रक्षा वे कैसे करेगे, इसका तो विचार भी नही किया गया। अधिकारियोने यह भी न सोचा कि यो कानूनमे गुलामी उठ चुकी है, पर मालिकोके दिलसे तो दूसरोको गुलाम बनानेका लोभ अभी नही मिटा है। उन्हे यह समझना चाहिए था, पर उन्होने नही समझा कि ये मजदूर दूर देशमे जाकर एक बधी मेहनतके लिए गुलाम हो जाएगे। सर विलियम विलसन हटरने, जिन्होने इस स्थितिका गहरा अध्ययन किया था, इसकी तुलना करते हुए दो शब्दो या शब्दसमूहका व्यवहार किया था। नेटालके ही भारतीय मजदूरोके बारेमे लिखते हुए एक बार उन्होने लिखा कि यह आधी गुलामीकी स्थिति है। दूसरे वक्त अपने पत्रके अदर उन्होने

इसका वर्णन यह कहकर किया कि यह स्थिति गुलामीकी हदके पास पहुच रही है--उससे मिलती-जुलती है। नेटालके एक कमीशनके सामने गवाही देते हुए वहाके बडे-से-बडे यूरोपियन--स्वर्गीय श्री एस्कवने भी यही बात कबूल की। ऐसे बहुतसे सबूत तो नेटालके अग्रगण्य गोरोके मुहसे--उनके बयानोसे ही दिए जा सकते है। उन बयानोमेसे अधिकाश उस अरजीमे शामिल कर लिए गये है जो इस बारेमे भारत सरकारके पास भेजी गई थी। पर होनहार होकर ही रही और जो स्टीमर इन मजदूरोको नेटाल ले गया वह सत्याग्रहके महान् वृक्षका बीज भी अपने साथ ले गया।

मजदूरोको नेटालके दलाल हिदुस्तानियोने किस तरह ठगा, कैसे उनके जालमे फसकर ये लोग नेटाल पहुचे, वहा पहुचनेपर उनकी आखे कैसे खुली, आंख खुल जानेपर भी वे नेटालमे क्यो बने रहे, कैसे उनके पीछे दूसरे भी वहा पहुचे, वहा पहुचकर उन्होने धर्म और नीतिके सारे बधन कैसे तोड फेके अथवा ये बधन खुद टूट गये, कैसे विवाहिता पत्नी और वेश्याके बीचका भेदतक नही रहा, इस सबकी कहानी तो इस छोटी-सी पुस्तकमे लिखी ही नही जा सकती।

इन मजदूरोको नेटालमे एग्रिमेटमे गये हुए मजदूर कहते है। इससे ये अपने आपको 'गिरमिटिया' कहने लगे। इसलिए आगेसे हम 'एग्रिमेट'को 'गिरमिट' और उसके अदर गये हुए मजदूरोको 'गिरमिटिया' कहेगे।

नेटालमे गिरमिटियोके जानेकी खबर जब मारिशस पहुची तब इस तरहके मजदूरोसे सबध रखनेवाले हिदुस्तानी व्यापारी वहा जानेको ललचाये। मारिशस नेटाल और हिदुस्तानके बीचमे पडता है। उस देशमे हजारो हिदुस्तानी मजदूर और व्यापारी बसते है।

उनमेसे एक व्यापारी स्वर्गीय सेठ अबूबकर आमदने नेटालमे दुकान खोलनेका इरादा किया। इस वक्त नेटालके अग्रेजोको हिंदुस्तानी व्यापारी क्या कर सकते है, इसका पता नही था, इसकी परवा भी नही थी। गिरमिटियोकी मददसे वे ईख, चाय, कहवे वगैरहकी नफा देनेवाली फसल उपजा सके। ईखकी शकर बनाकर इतने थोडे समयमे छोटे पैमानेपर दक्षिण अफ्रीकाको ये शकर, चाय और कहवा देने लगे कि देखकर अचरज हो। अपनी कमाईसे उन्होने महल खडे किये और सचमुच जगलमे मगल कर दिया। ऐसे समय सेठ अबूबकर-सरीखा अच्छा, भला और चतुर व्यापारी उनके बीचमे जा बसे तो यह उन्हे क्यो न खटकता? फिर इनके साथ तो एक अग्रेज भी साथी हो गया! सेठ अबूबकरने अपना व्यापार चलाया, जमीन खरीदी और उनके अच्छा पैसा कमानेकी खबर उनके वतन पोरबदर और उसके आस-पासके गावोमे फैली। फलत दूसरे मेमन नेटाल पहुचे। उनके पीछे सूरतकी ओरके वोहरे भी पहुचे। उन्हे मुनीम तो चाहिए ही। अत गुजरात, काठियावाडके हिंदू मुनीम भी वहा पहुचे।

इस प्रकार नेटालमे दो वर्गके हिंदुस्तानी बसे · १ स्वतत्र व्यापारी और उनके स्वतत्र कर्मचारी और २ गिरमिटिया। कुछ दिनोमे गिरमिटियोके बाल-बच्चे हुए। गिरमिटके कानूनके अनुसार उनकी सतान यद्यपि मजदूरी करनेके लिए बधी नही थी, फिर भी इस कानूनकी कुछ कठोर धाराओके अधीन तो थी ही। गुलामीका दाग गुलामकी औलादको लगे बिना कैसे रहता? ये गिरमिटिया पाच बरसके इकरारपर जाते थे। पाच साल पूरे हो जानेपर वे मजदूरी करनेको बधे नही थे। उन्हे खुली मजदूरी या व्यापार करना और नेटालमे स्थायी रूपसे बसना हो तो ऐसा उन्हे हक था। कुछने इस अधिकार-

का उपयोग किया, कुछ हिंदुस्तान लौट आये। जो नेटालमे रह गये वे 'फ्री इडियस' कहलाने लगे। हम उन्हे 'गिरमिट मुक्त' या थोडेमे 'मुक्त हिंदुस्तानी' कहेगे। इस अतरको समझ लेना जरूरी है, क्योकि जो अधिकार पूर्ण स्वतत्र भारतीय, जिनका जिक्र ऊपर किया गया है, भोग रहे थे वे सभी इस बंधनसे मुक्त हुए हिंदुस्तानियोको प्राप्त नही थे। जैसे उन्हे एकसे दूसरी जगह जाना हो तो उनके लिए परवाना लेना जरूरी था। वे ब्याह करे और चाहते हो कि वह कानूनसे जायज माना जाय तो जरूरी था कि गिरमिटियोकी रक्षाके लिए नियुक्त अधिकारी (प्रोटेक्टर आव इडियन इमिग्राट्स) के दफ्तरमे जाकर उसे दर्ज कराये, आदि। इनके सिवा दूसरे भी कठोर अकुश उनपर थे।

ट्रासवाल और फ्री स्टेटमे १८८०-९० मे बोअर लोगोके प्रजातत्र राज्य थे। प्रजातत्र राज्यका अर्थ भी यहा स्पष्ट कर देना जरूरी है। प्रजातत्र यानी गोरातत्र। हबशी जनताका उसमे कुछ लेना-देना हो ही नही सकता था। हिंदुस्तानी व्यापारियोने देखा कि हम केवल गिरमिटिया और गिरमिट-मुक्त हिंदुस्तानियोमे ही अपना रोजगार कर सकते हो ऐसी बात नही है। हम हबशियोके साथ भी व्यापार कर सकते है। हबशी लोगोके लिए हिंदुस्तानी व्यापारी बडे सुभीतेकी चीज साबित हुए। गोरे व्यापारियोसे वे बहुत ज्यादा डरते थे। गोरा व्यापारी उनके साथ व्यापार करना तो चाहता था; पर हबशी ग्राहक उससे यह आशा रख ही नही सकता था कि वह मीठी जबानसे उसे बुलायेगा। अपने पैसेके बदलेमे पूरा माल पा जाता तो वह धन्य भाग समझता। पर कुछको यह कड़वा अनुभव भी हुआ कि चार शिलिंगकी चीज लेनी है और दुकानदारके सामने एक पौडका सिक्का रख दिया; पर उसे १६ के बदले ४ शिलिंग ही वापस मिले या कुछ भी न मिला।

गरीब ग्राहक अधिक मागे, हिसाबकी गलती दिखाये तो बदलेमे गदी गालिया पाए। इतनेसे ही छूट जाय तो भी गनीमत समझिये, नही तो गालीके साथ घूसा या लात भी मिलती। मेरे कहनेका यह मतलब हर्गिज नही कि सभी अग्रेज व्यापारी ऐसा करते है। पर ऐसी मिसाले काफी तादादमे मिलती है, यह तो जरूर कहा जा सकता है। इसके विपरीत हिंदुस्तानी व्यापारी हबशी ग्राहकको मीठी बोलीसे तो बुलाता ही है, उसके साथ हँसकर बात भी करता है। हबशी भोला होता है। वह चाहता है कि दुकानके अदर जाकर चीजोको देखे-भाले। हिंदुस्तानी व्यापारी इन सबको सह लेता है। यह सही है कि वह परमार्थ दृष्टिसे ऐसा नही करता, इसमे उसकी स्वार्थदृष्टि होती है। मौका मिल जाय तो हिंदुस्तानी व्यापारी हबशी ग्राहकको ठगनेसे भी नही चूकता, पर हबशियोमे भारतीय व्यापारीकी प्रियताका कारण उसकी मिठास—उसका मधुर व्यवहार है। फिर हबशी हिंदुस्तानी व्यापारीसे डरता तो कभी नही। उलटी ऐसी मिसाले मौजूद है कि किसी हिंदुस्तानी दुकानदारने हबशी ग्राहकको ठगनेकी कोशिश की और वह जान गया तो उसके हाथो उस व्यापारी-की मरम्मत भी हो गई। गालिया तो उसे अक्सर मिला करती है। इस प्रकार हबशी और हिंदुस्तानीके सबधमे डरनेका कारण हिंदुस्तानीके लिए ही होता है। अतमे इसका फल यह हुआ कि भारतीय व्यापारीके लिए हबशियोकी ग्राहकी बहुत लाभजनक सिद्ध हुई। हबशी तो सारे दक्षिण अफ्रीकामे फैले हुए है ही। हिंदुस्तानी व्यापारियोने सुन रखा था कि ट्रासवाल और फ्री स्टेटमे बोअर लोगोके बीच भी व्यापार किया जा सकता है। बोअर सीधे, भोले और दिखावेसे दूर रहनेवाले होते है। हिंदुस्तानीकी दुकानसे सौदा खरीद-नेमे उन्हे शर्म नही लगती। अत कितने ही हिंदुस्तानी व्यापा-

रियोने ट्रासवाल और फ्री स्टेटकी ओर भी पयान किया। उन्होने वहा दुकाने खोली। उन दिनो वहा रेले आदि नही थी। इसलिए खूब अधिक नफा मिल सकता था। व्यापारियोका खयाल सही निकला। वोअरो और हवशियोमे उनका माल खूब बिकने लगा। रह गई केप कॉलोनी। वहा भी कितने ही हिदुस्तानी व्यापारी पहुच गये और अच्छी खासी कमाई करने लगे। इस प्रकार छोटी-छोटी सख्याओमे चारो उपनिवेशोमे हिदुस्तानी बट गये और तत्काल समस्त स्वतत्र भारतीयोकी तादाद चालीससे पचास हजारके बीच और गिरमिटमुक्त हिदुस्तानियोकी एक लाख होनेका अदाजा किया जाता है। ये पक्तिया लिखते समय इस सख्यामे मुमकिन है, कुछ कमी हुई हो, पर बेशी हरगिज नही हुई है।

: ४ :

मुसीबतोंका सिंहावलोकन—१

नेटाल

नेटालके गोरे मालिकोको महज गुलाम दरकार थे। एस मजदूर वे नही चाहते थे, जो नौकरी करनेके बाद आजाद होकर उनके साथ थोडी-सी भी प्रतियोगिता कर सके। ये गिरमिटिया गो इसीलिए नेटाल गये थे कि हिदुस्तानमे अपनी खेती-बारी आदिमे बहुत सफल नही हो सके थे, फिर भी ऐसे नही थे कि खेतीका कुछ भी ज्ञान न रखते हो या जमीन और खेतोकी कीमत न समझते हो। उन्होने देखा कि नेटालमें अगर हम साग-भाजी भी बोये तो अच्छी उपज कर सकते है और अगर जमीनका एक छोटा-सा टुकडा भी ले ले तो उससे और ज्यादा पैसा कमा सकते है। अत बहुतसे गिरमिटिया

जब नौकरीके बंधनसे मुक्त हुए तब कोई-न-कोई छोटा-मोटा धंधा करने लग गये। इससे कुल मिलाकर तो नेटाल-जैसे देशमे बसनेवालोको लाभ ही हुआ। अनेक प्रकारकी साग-सब्जिया जो कुशल किसानोके अभावके कारण अबतक पैदा नही होती थी अब उपजने लगी। जो चीजे जहा-तहा थोडी-बहुत उपजती थी वे अब अधिक मात्रामे मिलने लगी। इससे साग-सब्जीका भाव एकबारगी गिर गया। पर यह बात पैसेवाले गोरोको न रुची। उन्होने सोचा कि आजतक जिस चीजको हम अपना इजारा[1] मानते थे उसमे अब हिस्सा बटाने-वाले पैदा हो गए। इससे इन गरीब गिरमिटियोके विरुद्ध आदोलन आरभ हुआ। पाठकोको यह जानकर अचरज होगा कि गोरे एक ओर तो ज्यादा-से-ज्यादा मजदूर माग रहे थे, हिदुस्तानसे जितने गिरमिटिया आते वे तुरत खप जाते, और दूसरी ओर जो मजदूर गिरमिटसे मुक्त होते जाते उनपर तरह-तरहके अकुश रखनेके लिए आदोलन चल रहा था। यह था उनकी होशियारी और जीतोड मेहनतका मुआवजा!

आदोलनने कितने ही रूप धारण किये। एक पक्षने यह माग पेश की कि जो गिरमिटिया गिरमिटसे मुक्त हो चुके है वे हिदुस्तान लौटा दिए जाय और पुराना इकरारनामा बदलकर नये इकरारनामेमे नये आनेवाले मजदूरोसे यह शर्त लिखा ली जाय कि गिरमिटसे मुक्त होनेपर वे या तो हिदुस्तान लौट जाएगे या फिरसे गिरमिटमे दाखिल हो जाएगे। दूसरे पक्षने यह मत प्रकट किया कि गिरमिटसे छुटकारा पानेपर वे नया इकरारनामा लिखना पसद न करे तो उनसे भारी वार्षिक 'व्यक्ति-कर' लिया जाय। दोनो दलोका मतलब तो एक ही था कि जैसे भी हो गिरमिटियावर्ग किसी भी दशामे नेटाल-

---

[1]एकाधिकार।

मे स्वतत्र होकर न रह सके। कोलाहल इतना बढा कि अंतमे नेटालकी सरकारने एक कमीशन नियुक्त कर दिया। दोनो पक्षोकी माग सोलह आने गैरवाजिव थी और गिरमिटियोंकी उपस्थिति आर्थिक दृष्टिसे सपूर्ण जनताके लिए सब प्रकार लाभदायक थी। इसलिए कमीशनके सामने जो स्वतत्र गवाहिया हुई वे उक्त दोनो पक्षोके विरुद्ध थी। फलत तात्कालिक परिणाम तो विरुद्ध पक्षकी दृष्टिसे कुछ भी न हुआ, पर जैसे आग बुझ जानेके बाद अपना कुछ निशान छोड ही जाती है, वैसे ही यह आदोलन भी नेटाल सरकारपर अपनी छाप छोड गया। नेटालकी सरकारके मानी थे खासतौरसे धनिक वर्गकी हिमायती सरकार। अत भारत-सरकारके साथ उसका पत्र-व्यवहार आरभ हुआ और दोनो पक्षोके सुझाव उसके पास भेजे गए। पर हिंद सरकार यकायक ऐसा सुझाव कैसे स्वीकार कर सकती थी, जिससे गिरमिटिए हमेशाके लिए गुलाम बन जाते? हिंदुस्तानियोका गिरमिटमे बाधकर इतनी दूर भेजनेका एक कारण या बहाना यह था कि गिरमिटकी मियाद पूरी होनेपर गिरमिटिए आजाद होकर अपनी शक्तिका पूर्ण विकास और उस अनुपातसे अपनी आर्थिक स्थितिको सुधार सकेगे। नेटाल इस वक्त भी 'क्राउन कॉलोनी (शाही उपनिवेश) था और ऐसे उपनिवेशोके शासन-प्रबधके लिए उपनिवेश विभाग भी पूरी तरह जिम्मेदार माना जाता था। इसलिए नेटालको अपनी अन्याय-पूर्ण इच्छा पूरी होनेमे उससे मदद नही मिल सकती थी। इससे और ऐसे ही दूसरे कारणोसे नेटालमे उत्तरदायी शासनाधिकार प्राप्त करनेका आदोलन आरभ हुआ। १८९३ मे यह अधिकार उसे मिल गया। अब नेटालमे बल आया। उपनिवेश-विभागके लिए भी अब नेटालकी मांगोको, वे कैसी ही क्यो न हों, मजूर कर लेना अधिक कठिन नही रहा। नेटालकी इस नई यानी जवाब-

देह सरकारकी ओरसे हिंदुस्तानकी सरकारसे मशवरा करनेके लिए राजदूत भेजे गए । उनकी माग यह थी कि हर एक गिरमिट मुक्त हिंदुस्तानीपर २५ पौंड यानी ३७५) रु० का वार्षिक व्यक्ति-कर लगाया जाय । इसके मानी यह होते थे कि कोई भी हिंदुस्तानी मजदूर यह कर अदा न कर सके और फलत आजाद होकर नेटालमे न रह सके । तत्कालीन वाइसराय लार्ड एल्गिनको यह प्रस्ताव बहुत भारी लगा और अतमे उन्होंने ३ पौंडका वार्षिक व्यक्ति-कर मजूर किया । गिरमिटियाकी कमाईके हिसाबसे तीन पौंडके मानी उसकी लगभग दो महीनेकी कमाई होते थे । यह कर केवल मजदूरपर ही नही था । उसकी स्त्री, तेरह बरससे ऊपरकी लडकी और सोलहसे ऊपरके लडकेको भी देना था । ऐसा मजदूर शायद ही हो जिसके स्त्री और दो बच्चे न हो । अत मोटे हिसाबसे हर मजदूरको १२ पौंड वार्षिक कर अदा करना था । यह कर कितना कष्टदायक हो गया, इसका वर्णन नही हो सकता । उस दु खको केवल वही जान सकता है जिसने उसका अनुभव किया हो, या थोडा बहुत वह समझ सकता है जिसने उसे अपनी आखो देखा हो । नेटाल सरकारके इस कार्यका भारतीय जनताने जमकर विरोध किया । बडी (ब्रिटिश) और भारत-सरकारके पास अर्जिया भेजी गई । पर इस आदोलनका नतीजा इससे अधिक और कुछ न निकला कि २५ के ३ पौंड हो गए । गिरमिटिया बेचारे खुद तो इस मामलेमे क्या कर सकते थे ? आदोलन तो महज हिंदुस्तानी व्यापारीवर्गने देशके दर्दसे कहिये या परार्थ दृष्टिसे किया था ।

जो सलूक गिरमिटियोके साथ किया गया वही स्वतत्र भारतीयोके साथ भी हुआ । नेटालके गोरे व्यापारियोने उनके खिलाफ भी मुख्यत इन्ही कारणोसे आदोलन उठाया । हिंदुस्तानी व्यापारी अच्छी तरह जम गए थे । उन्होने [illegible] [illegible]

भागोमे जमीने खरीद ली थी। गिरमिटसे छूटे हुए हिंदुस्तानियोकी आबादी ज्यो-ज्यो बढती गई त्यो-त्यो उनको दरकार होनेवाली चीजोकी खपत अच्छी होने लगी। हजारो बोरा चावल हिदुस्तानस आता और अच्छे नफेपर बिकता। यह व्यापार अधिकाशमे और स्वभावत हिदुस्तानियोके हाथमे रहा। उधर हवशियोके साथ होनेवाले व्यापारमे भी उनका हिस्सा अच्छा खासा हो गया। छोटे गोरे व्यापारियोसे यह देखा न गया। इसके सिवा इन व्यापारियोको कुछ अग्रेजोने ही यह बताया कि कानूनके अनुसार उन्हे नेटालकी धारा सभाके सदस्य होने और चुननेका हक है। मताधिकारियोकी सूचीमे कुछ नाम भी दर्ज कराये थे। नेटालके राजकाजी गोरे इस स्थितिको न सह सके। उन्हे यह चिता हो गई कि यो हिदुस्तानियोकी स्थिति नेटालमे दृढ हो गई और उनकी प्रतिष्ठा बढी तो उनकी प्रतियोगितामे गोरे कैसे टिक सकेगे? अत नेटालकी जवाबदेह सरकारने स्वतत्र भारतीयोके बारेमे जो पहला कदम उठाया वह था ऐसा कानून बना देना जिससे एक भी नया हिदुस्तानी वोटर या मताधिकारी न हो सके। १८९४ मे इस विषयका पहला बिल नेटालकी धारा सभामे पेश किया गया। इस बिलका मशा था हिदुस्तानीको हिदुस्तानीकी हैसियतसे वोट देनेके हकसे वचित कर देना। यह पहला कानून था जो नेटालमे रग-भेदके आधारपर भारतीयोके विरुद्ध बनाया गया। भारतीय जनताने विरोध किया। रातोरात अरजी तैयार हुई। उसपर चार सौ आदमियोसे दस्तखत कराये गए। इस अरजीके पहुचते ही धारा सभा चौकी, पर बिल तो पास होकर ही रहा। उन दिनो लार्ड रिपन उपनिवेश-सचिव थे। उनके पास अरजी भेजी गई। उसपर दस हजार हस्ताक्षर थे। दस हजार हस्ताक्षरके मानी हुए नेटालमे आजाद हिंदुस्तानियोकी लगभग सारी

आबादी। लार्ड रिपनने बिलको नामजूर किया। उन्होने कहा कि ब्रिटिश साम्राज्य कानूनमे रंगभेदको स्वीकार नही कर सकता। यह जीत कितने महत्त्वकी थी, पाठक इसे आगे चलकर अधिक समझ सकेगे। इसके जवाबमे नेटालकी सरकारने नया बिल पेश किया। इसमे रंग-भेद नही रखा गया, पर अप्रत्यक्ष रीतिसे चोट तो हिंदुस्तानियोपर ही थी। हिंदुस्तानी जनता इसके विरुद्ध भी लडी, पर उसका विरोध विफल हुआ। यह कानून दोअर्थी था। उसका पक्का अर्थ करानेके लिए वह आखिरी अदालत यानी प्रिवी-कौसिलतक लड सकती थी, पर लडना ठीक नही समझा गया। मेरा अब भी खयाल है कि न लडना ठीक ही हुआ। मूल वस्तु मान ली गई, यही क्या कम था।

पर नेटालके गोरो या वहाकी सरकारको इतनेसे सतोष होनेवाला नही था। हिंदुस्तानियोकी राजनैतिक शक्ति जमने न देना तो एक बहुत जरूरी काम था ही, पर उनकी आख असलमे तो भारतीय व्यापार और स्वतत्र भारतीयोके आगमनपर थी। तीस करोडकी आबादीवाला हिंदुस्तान नेटाल-की ओर उलट पडे तो वहाके गोरोकी क्या दशा होगी? वे तो इस समुद्रमे विलीन हो जाएगे। इस आशकासे वे बेचैन हो रहे थे। उस वक्त नेटालकी आबादी मोटे हिसाब से यह थी ४ लाख हबशी, ४० हजार गोरे, ६० हजार गिरमिटिए, १० हजार गिर-मिट-मुक्त और १० हजार स्वतत्र भारतीय। गोरोके डरके लिए कोई ठोस कारण तो था ही नही, पर डरे हुए आदमीको दलीलसे समझाया नही जा सकता। हिंदुस्तानकी असहाय स्थिति और उसके रस्म-रिवाजसे वे अनजान थे। इससे उनको यह भ्रम हो रहा था कि जैसे साहसी और शक्तिमान हम है वैसे ही हिंदुस्तानी भी होगे और इस कारण उन्होने केवल त्रैराशिकका हिसाब कर लिया। इसलिए उनको दोष कैसे दिया जा

सकता है ? जो हो, नतीजा यह हुआ कि नेटालकी धारा सभाने जो दो दूसरे कानून पास किए उनमे भी मताधिकारकी लडाईमे हिंदुस्तानियोकी जीत होनेके फलस्वरूप रग-भेदको दूर रखना पडा और गर्भित भाषासे काम निकालना पडा। इसकी बदौलत स्थिति थोडी-बहुत सम्हली रह सकी। हिंदुस्तानी कौम इस मौकेपर भी खूब लडी, फिर भी कानून तो पास होकर ही रहे। एक कानूनके जरिये भारतीयोके व्यापारपर कठोर अकुश रखा गया, दूसरेके द्वारा उनके प्रवेश-पर। पहले कानूनका आशय यह था कि कानूनद्वारा नियुक्त अधिकारीकी अनुमतिके बिना किसीको भी व्यापारका पर-वाना न मिले। व्यवहारमे यह स्थिति थी कि कोई भी गोरा जाकर अनुमति-पत्र पा सकता था। पर भारतीयको वह बडी कठिनाईसे मिलता। उसमे वकील वगैरहका तो खर्च करना ही पडता। फलत कच्चे और कमजोर दिलवाले तो बिना परवानेके ही रह जाते। दूसरे कानूनकी खास शर्त यह थी कि जो हिंदुस्तानी यूरोपकी किसी भी भाषामे प्रवेशका प्रार्थनापत्र लिख सके वही प्रवेशकी अनुमति पाये। अर्थात् करोडो हिंदुस्तानियोके लिए तो नेटालका दरवाजा बिल्कुल ही बद हो गया। जान या अनजानमे मुझसे नेटालके साथ अन्याय न हो जाय, इसलिए मुझे यह बता देना चाहिए कि जो भारतीय इस कानूनके पास होनेके तीन साल पहलेसे नेटालमे घर बनाकर रहता हो वह अगर नेटाल छोडकर हिंदुस्तान या और कही जाय और फिर लौटे तो वह अपनी स्त्री और नाबालिग बच्चोके साथ, यूरोपकी कोई भाषा न जाननेपर भी दाखिल हो सकता था। इनके अतिरिक्त गिरमिटियो और स्वतत्र भारतीयोपर दूसरी भी कितनी ही कानूनी और बेकानूनी रुकावटे थी और अबतक है। पर पाठकोको उन्हे सुनानेकी जरूरत मुझे नही दिखाई देती।

जितना विवरण इस पुस्तकका विषय समझानेके लिए जरूरी है उतनी ही मैं देना चाहता हूं। दक्षिण अफ्रीकाके हर एक राज्यके हिंदुस्तानियोंकी हालतका इतिहास बहुत लंबा होगा, यह तो हर पाठक समझ सकता है, पर ऐसा इतिहास देना इस पुस्तकका उद्देश्य नहीं है।

: ५ :

मुसीबतोंका सिंहावलोकन—२

ट्रांसवाल और दूसरे उपनिवेश

जैसा नेटालमें हुआ वैसा ही कमोबेश दक्षिण अफ्रीकाके दूसरे उपनिवेशोंमें भी हुआ। १८८० के पहलेसे ही हिंदुस्तानियोंको नफरतकी निगाहसे देखना शुरू हो गया और केप कॉलोनीको छोड़कर और सभी उपनिवेशोंमें यह धारणा हो गई थी कि हिंदुस्तानी मजदूरके रूपमें तो बहुत अच्छे हैं। पर बहुतेरे गोरोंके मनमें यह बात पक्के तौरसे बैठ गई थी कि स्वतंत्र भारतीयोंसे तो दक्षिण अफ्रीकाकी हानि ही है। ट्रांसवाल प्रजातंत्र राज्य था। उसके अध्यक्षके सामने हिंदुस्तानियोंका यह कहना कि हम ब्रिटिश प्रजा कहलाते हैं, अपनी हँसी कराना था। हिंदुस्तानियोंको कोई भी शिकायत करनी हो तो वे ब्रिटिश दूतके ही पास कर सकते थे। पर ऐसा होते हुए भी अचरजकी बात यह थी कि ट्रांसवाल जब ब्रिटिश साम्राज्यसे बाहर था उस वक्त ब्रिटिश दूत जो मदद कर सकता था वह मदद जब ट्रांसवाल ब्रिटिश साम्राज्यके अंदर मान लिया गया, बिलकुल बंद हो गई। जब लार्ड मोर्ले भारत मंत्री थे और ट्रांसवालके हिंदुस्तानियोंकी वकालत करनेके लिए एक प्रतिनिधि मंडल उनके पास गया तब उन्होंने साफ

कह दिया कि "उत्तरदायी—स्वराज्य भोगी—सरकारोपर बडी (साम्राज्य) सरकारका काबू बहुत ही थोडा होता है। स्वतत्र राज्यको वह लडाईकी धमकी दे सकती है, उससे लडाई कर भी सकती है, पर उपनिवेशोके साथ तो महज मशविरा ही किया जा सकता है। उनके साथ हमारा सबध कच्चे धागेसे जुडा हुआ है। जरा ताना कि टूटा। बलसे तो काम लिया ही नही जा सकता। कलसे—युक्तिसे—जो कुछ कर सकता हू वह सब करनेका विश्वास आपको दिलाता हू।" ट्रासवालके साथ जब लडाई छिडी तब लार्ड लैसडाउन, लार्ड सेलबर्न आदि ब्रिटिश अधिकारियोने कहा था कि भारतीयोकी दु खद स्थिति भी इस युद्धका एक कारण है।

✓ अब हम इस दु खके प्रकरणको देखे। ट्रासवालमे हिदुस्तानी पहले-पहल १८८१ ई० मे दाखिल हुए। स्वर्गीय सेठ अबूबकरने ट्रासवालकी राजधानी प्रिटोरियामे दुकान खोली और उसके एक खास महल्लेमे जमीन भी खरीदी। इसके बाद दूसरे व्यापारी भी एक-एक करके वहा पहुचे। उनका व्यापार खूब तेजीसे चला तो गोरे व्यापारियोके दिलमे डाह पैदा हुई। अखबारोमे हिदुस्तानियोके खिलाफ लेख लिखे जाने लगे। धारा सभाको अर्जिया भेजी गई, जिनमे हिदुस्तानियोको निकाल बाहर करने और उनका व्यापार बंद करा देनेकी प्रार्थनाए की गई। इस नए देशमे गोरोकी धन-तृष्णाकी कोई हद न थी। नीति-अनीतिका भेद वे शायद ही समझते हो। धारा सभाको उन्होने जो आवेदनपत्र भेजा था उसके अदर इस तरहके वाक्य है—"ये लोग (हिदुस्तानी व्यापारी) मानवी सभ्यता क्या चीज है यह जानते ही नही। वे बदचलनीसे पैदा होनेवाले रोगोसे सड रहे है। हरएक स्त्रीको वे अपना शिकार समझते है और उन्हे आत्मा-रहित मानते है।" इन चार वाक्योमे चार झूठ भरे है। ऐसे नमूने

वीसियो पेश किए जा सकते है। जैसी जनता, वैसे ही उसके प्रतिनिधि। हमारे व्यापारी भाइयोको इसकी क्या खबर कि उनके विरुद्ध कैसा बेहूदा और अन्याय-भरा आन्दोलन चल रहा है? अखबार वे पढते न थे। अखबारी और अर्जियोके आदोलनका असर धारा सभा पर हुआ और उसमे एक बिल पेश किया गया। इसकी खबर प्रमुख भारतीयोके कान तक पहुची तो वे चौंके। वे राष्ट्रपति क्रूगरके पास गए। दिवगत राष्ट्रपतिने तो उन लोगोको घरके अदर कदम भी न रखने दिया। आगनमे ही खडा करके उनकी बात थोडी बहुत सुननेके बाद कहा—"आप लोग तो इस्माइल[1]की औलाद है, इसलिए आप लोग ईसोकी औलादकी गुलामी करनेके लिए ही पैदा हुए है। हम ईसोकी औलाद माने जाते है। इसलिए हमारी बराबरीका हक तो आपको मिल ही नही सकता। हम जो हक दे रहे है उसीमे आपको संतोप मानना चाहिए।" इस जवाबमे द्वेप या रोप था, यह हम नही कह सकते। राष्ट्रपति क्रूगरकी शिक्षा ही उस प्रकार-की थी कि बचपनसे ही बाइबिलके पुराने इकरारनामे (ओल्ड टेस्टामेंट) मे कही हुई बाते उन्हे सिखाई गई और वह उनपर

---

[1]इब्राहीम (२२५०-२१०० ई० पू०)के बडे और अनिशप्त बेटे, जो उनकी कनिष्ठा पत्नी (दासी) हाजरासे पैदा हुए थे। ज्येष्ठा पत्नी सारा के पेटसे इसहाकका जन्म होनेपर, उसके कहनेसे, इब्राहीम हाजरा और इस्माईलको उस जगह ले जाकर छोड आये, जहा अब मक्का नगर है। मुसलमान हजरत इब्राहीमके समान इन्हे भी पैगबर मानते है। अरबका प्रमुखतम कबीला कुरैन, जिसमे हजरत मुहम्मदका जन्म हुआ था, इन्हींकी औलाद माना जाता है। ईसो इसहाकके सबसे बडे बेटे थे। बाइबिलके सृष्टिकाण्डमे इनकी कथाए विस्तारसे दी हुई है। —अनु०

विश्वास करने लगे। जो आदमी जैसा मानता हो वैसा ही सच्चे दिलसे कहे तो इसमे उसको कौन दोष दे सकता है? फिर भी इस सरलतामे रहनेवाले अज्ञानका बुरा असर तो होता ही है और नतीजा यह हुआ कि १८८५ मे बहुत कडा कानून धारा सभामे जल्दी-जल्दी पास किया गया, मानो हजारो हिन्दुस्तानी ट्रासवालमे घुसकर लूट मचानेके लिए तैयार बैठे हो। प्रमुख भारतीयोकी प्रेरणासे इस कानूनके खिलाफ ब्रिटिश राजदूतको कदम उठाना पडा। मामला उपनिवेश सचिव तक पहुचा। इस कानूनके अनुसार ट्रासवालमे दाखिल होनेवाले हरएक हिदुस्तानीको २५ पौड देकर अपनी रजिस्ट्री करानी पड़ती और वह एक इच भी जमीन न ले सकता। चुनावमे मत देनेका अधिकारी तो वह हो ही नही सकता था। यह सारी बात इतनी अनुचित थी कि ट्रासवालकी सरकारको बचावके लिए कोई दलील ही नही सूझती थी। ट्रासवाल सरकार और बडी सरकारके बीच एक सुलहनामा हुआ था जिसे 'लंडन कन्वेशन' कहते थे। उसमे ब्रिटिश प्रजाके अधिकारोकी रक्षा करनेकी एक धारा—१४वी—थी। इस धाराके आधारपर बडी सरकारने इस कानूनका विरोध किया। ट्रासवालकी सरकारने इसके जवाबमे यह दलील दी कि हमने जो कानून बनाया है, बडी सरकार पहलेसे उसको स्पष्ट या गर्भित सम्मति दे चुकी है।

यो उभयपक्षमे मतभेद होनेसे मामला पचके पास गया। पचका पगु फैसला हुआ। उसने दोनो पक्षोको राजी रखनेकी कोशिश की। नतीजा यह हुआ कि हिंदुस्तानियोने यहा भी कुछ खोया ही। लाभ इतना ही हुआ कि अधिक खोनेके बदले कम खोया। पचके इस फैसलेके अनुसार १८८६ मे कानूनमें सुधार हुआ। उसके अनुसार रजिस्ट्रीकी फीस २५ पौडके

बजाय ३ पौड लेना तय हुआ और जमीन जो कही भी खरीद और रख न सकनेकी कडी शर्त थी उसके बदले यह निश्चय हुआ कि ट्रासवालकी सरकार जिस हलके, महल्ले, बाडेमे तै कर दे उसीमे हिंदुस्तानी जमीन ले सके। इस दफापर अमल करानेमे भी ट्रासवाल सरकारने दिलमे चोर रखा। अत ऐसे महल्लोमे भी जरखरीद जमीन लेनेका हक तो नही ही दिया। हर शहर-कसबेमे जहा हिंदुस्तानी बसते थे, ये महल्ले नगरसे बहुत दूर और गदी-से-गदी जगहोमे रखे गए। वहा पानी-रोशनीका सुभीता कम-से-कम था, पाखानोकी सफाईका हाल भी वही था। यानी हम हिंदुस्तानी ट्रासवालके 'पचम' बन गए और कह सकते है कि इन महल्लो और हिंदुस्तानके भगी-बाडोमे कुछ भी फर्क न था। लगभग यह स्थिति हो गई कि जैसे हिंदू भगी-चमारको छूने और उनके पडोसमे बसनेसे 'अपवित्र' हो जाता है वैसे ही भारतीयके स्पर्श या पडोससे गोरा नापाक हो जाता। फिर इस १८८५ के तीसरे कानूनका ट्रासवालकी सरकारने यह अर्थ किया कि हिंदुस्तानी व्यापार भी इन महल्लोमे ही कर सकते है। यह अर्थ सही है या नही, इसके निर्णयका अधिकार पचने ट्रासवालकी अदालतोको ही दे रखा था। इसलिए भारतीय व्यापारियोकी स्थिति अति विषम हो गई। फिर भी कही बात-चीत चलाकर, कही मुकदमे लडकर, कही सिफारिशसे काम लेकर भारतीय व्यापारी अपनी स्थितिकी रक्षा समुचित रीतिसे कर सके। बोअर-युद्ध आरभ होनेके समय ट्रासवालमे भारतीयोकी ऐसी दुखद और अनिश्चित स्थिति थी।

अब हम फ्री स्टेटकी दशा देखे। वहा दस-पद्रहसे अधिक हिंदुस्तानी दुकाने नही खुलवाई थी कि गोरोने जबर्दस्त आदोलन उठा दिया। वहाकी धारा सभाने चौकसीसे काम करके खतरेकी जड ही काट दी। उसने एक कडा कानून

पास करके और नुकसानका नगण्य मुआवजा देकर, हरएक हिंदुस्तानी दुकानदारको फ्री स्टेटसे निकाल बाहर किया। इस कानूनके अनुसार कोई हिंदुस्तानी व्यापारी, जमीनके मालिक या किसानकी हैसियतसे फ्री स्टेटमे नही रह सकता था। चुनावमे मत देनेका अधिकारी तो हो ही नही सकता था। खास तौरसे इजाजत हासिल करके मजदूर या होटलके 'वेटर' (खिदमतगार) के रूपमे रह सकता था। यह इजाजत भी हरएक प्रार्थीको मिल ही जाय, सो बात नही थी। नतीजा यह हुआ कि फ्री स्टेटमे कोई प्रतिष्ठित भारतीय दो-चार दिन रहना चाहे तो भी बडी कठिनाईसे ही रह सकता था। बोअर-युद्धके समय वहा कोई चालीस हिंदुस्तानी वेटरोके सिवा और कोई हिंदुस्तानी नही था।

केप कॉलोनीमे यद्यपि हिंदुस्तानियोके खिलाफ थोडा आदोलन होता रहता था, स्कूलो आदिमे भारतीय बालकका प्रवेश नही हो सकता, होटलो वगैरहमे हिंदुस्तानी मुसाफिर शायद ही उतर सकता—इस तरहके हिंदुस्तानियोकी अवहेलना करनेवाले बरताव तो वहा भी होते थे, फिर भी व्यापार करने और जमीन रख सकनेके बारेमे कोई रुकावट बहुत दिनोतक वहा नही थी।

ऐसा होनेके कारण मुझे बता देने चाहिए। एक तो, जैसा कि हम पहले ही देख चुके है, केपटाउनमे खासतौरसे और सारी केप कॉलोनीमे आमतौरसे मलायी लोगोकी आबादी अच्छी खासी तादादमे थी। मलायी लोग खुद मुसलमान है। इसलिए हिंदुस्तानी मुसलमानोके साथ तुरन्त उनकी राह-रस्म हो गई और उनके जरिये दूसरे हिंदुस्तानियोसे भी थोड़ी-बहुत तो हो ही गई। इसके सिवा कुछ हिंदुस्तानी मुसलमानोने मलायी स्त्रियोसे ब्याह भी कर लिया। मलायीके खिलाफ किसी तरहका कायदा-कानून केपकी सरकार कैसे बना

सकती थी ? उनकी तो केप कॉलोनी जन्मभूमि है। उनकी भाषा भी डच है। डच लोगोके साथ ही वे शुरूसे ही रहते आ रहे है। अतः रहन-सहनमे भी उनकी बहुत नकल करने लगे है। इन कारणोसे केप कॉलोनीमे सदा कम-से-कम वर्णद्वेष रहा है। इसके सिवा केप कॉलोनी सबसे पुराना उपनिवेश और दक्षिण अफ्रीकाका शिक्षण-केन्द्र है। इससे वहा प्रौढ, विनयशील और उदारहृदय गोरे भी पैदा हुए। मै तो मानता हू कि दुनियामे एक भी ऐसी जगह और एक भी जाति ऐसी नही है जहा या जिसमे उपयुक्त अवसर मिले और सस्कार डाले जाय तो सुन्दर-से-सुन्दर मानव-पुष्प उत्पन्न न हो सकते हो। दक्षिण अफ्रीकामे सौभाग्यसे मुझे सभी जगह इसकी मिसाले दिखाई दी, पर केप कॉलोनीमे ऐसे पुरुषोका अनुपात बहुत बड़ा है। उनमे सर्वाधिक विख्यात और विद्वान् श्री मेरीमैन है, जो दक्षिण अफ्रीकाके ग्लैडस्टन कहे जाते है और केप कॉलोनीके प्रधान मत्री भी रह चुके है।[1] श्री मेरीमैनके बराबर नही तो उनसे दूसरे दरजेपर विराजने-वाला है सपूर्ण श्राइनर परिवार, और मोल्टीनो परिवार का भी वही पद है। श्राइनर घरानेमे कानूनके मशहूर व्यवसायी श्री डब्ल्यू० पी० श्राइनर[3] हो गए है। वह एक समय केप कॉलोनीके मन्त्रिमडलमे भी रह चुके है। उनकी बहन ऑलिव

---

[1] श्रीमेरीमैन १८७२मे केप कॉलोनीमे उत्तरदायी शासन व्यवस्था स्थापित होनेके बाद उनके हरएक मन्त्रिमण्डलके सदस्य रहे और १९१०मे जब यूनियनकी स्थापना हुई तो अन्तिम मन्त्रिमण्डलके प्रधान रहे।

सर जान मोल्टीनो १८७२ के प्रथम मन्त्रिमण्डलमे प्रधान मन्त्री थे।

[3] श्रीश्राइनर कुछ दिनोतक एटर्नी-जनरल रहे और पीछे प्रधान मन्त्री हुए।

श्राइनर दक्षिण अफ्रीकाकी लोकप्रिय विदुषी थी और जहा-जहा अग्रेजी भाषा बोली जाती है वहां-वहा विख्यात थी। मनुष्यमात्रपर उनका प्रेम असीम था। आखोसे जब देखिए प्रेमका झरना ही झरता होता। इस बहनने जब 'ड्रीम्स' (स्वप्न) नामक पुस्तक लिखी तबसे वह 'ड्रीम्स'की लेखिकाके नामसे प्रसिद्ध होगई। इनकी सरलता इतनी थी कि ऐसे प्रतिष्ठित और प्रख्यात कुलकी तथा विदुषी होते हुए भी घरके बरतनतक खुद माजा करती थी। श्री मेरीमैन और इन दोनो परिवारोने सदा हबशियोका पक्ष लिया। जब-जब उनके हकपर हमला होता, उनकी जबर्दस्त हिमायत करते। उनके प्रेमकी धारा हिन्दुस्तानियोकी ओर भी बहती थी, यद्यपि वे सभी हबशी और हिंदुस्तानीमे भेद करते थे। उनकी दलील यह थी कि हबशी दक्षिण अफ्रीकाके गोरोके आगमनसे पहलेके बाशिदे है, इसलिए गोरे उनके स्वाभाविक अधिकारोको छीन नही सकते, पर हिंदुस्तानियोके बारेमे उनकी प्रतियोगिताका खतरा दूर करनेके लिए कोई कानून बनाया जाय तो यह बिलकुल अन्याय नही माना जायगा। फिर भी उनकी हमदर्दी हमेशा हिंदुस्तानियोके साथ रहती। स्वर्गीय गोपालकृष्ण-गोखले जब दक्षिण अफ्रीका पधारे तब उनके सम्मानमे वहा जो पहली सभा केप टाउनके टाउनहालमे हुई उसमे श्री श्राइनरने सभापतिका आसन ग्रहण किया था। श्री मेरीमैनने भी उनके साथ बडे सौजन्य और विनयसे बाते की और हिंदुस्तानियोके साथ हमदर्दी जाहिर की। केप टाउनके अखबारोमे भी और जगहके पत्रोकी तुलनामे पक्षपातकी मात्रा बहुत कम थी।

श्री मेरीमैन आदिके बारेमे मैने जो कुछ लिखा है वह दूसरे यूरोपियनोके विषयमे भी कहा जा सकता है। यहा तो मैने मिसालके तौरपर उपर्युक्त सर्वमान्य नाम दे दिये है।

इन कारणोसे यद्यपि केप कॉलोनीमे रगद्वेप सदा कम रहा, फिर भी दक्षिण अफ्रीकाके शेप तीनो उपनिवेशोमे जो हवा हर वक्त वहा करती थी उसकी गध केप कॉलोनीमे पहुचे ही नही, यह कैसे हो सकता था ? अत वहा भी नेटालके जैसे भारतीयोके प्रवेश और व्यापारके लिए परवानेकी शर्त लगा देनेवाले कानून पास हुए। यो कह सकते है कि दक्षिण अफ्रीकाका दरवाजा जो हिंदुस्तानियोके लिए विलकुल खुला हुआ था, वोअर-युद्धके समय वह लगभग वद हो गया था। ट्रासवालमे उनके प्रवेशपर ऊपर वताये हुए तीन पौडके करके सिवा और कोई रोक न थी। पर जव नेटाल और केप कॉलोनीके वदरगाह उनके लिए वद हो गए तव वीचमे पडनेवाले ट्रासवालको जानेवाले हिंदुस्तानी कहा उतरे ? एक रास्ता था—पुर्तगीजोका डेलगोआवे वदर। पर वहा भी व्रिटिश उपनिवेशोकी कमोवेश नकल की गई। इतना कह देना चाहिए कि वहुत कठिनाइया उठाकर या रिशवत देकर नेटाल और डेल्गोआवेके रास्ते भी इक्के-दुक्के हिंदुस्तानी ट्रासवाल पहुच पाते थे।

: ६ :

भारतीयोंने क्या किया ?—१

भारतीय जनताकी स्थितिका विचार करते हुए पिछले प्रकरणोमे हम अशत देख चुके है कि उसपर होनेवाले हमलोका उसने किस तरह सामना किया, पर सत्याग्रहकी उत्पत्तिकी कल्पना पाठकोको भली भाति हो सके इसके लिए जरूरी है कि भारतीय जनताकी सुरक्षाके विपयमे किये गए प्रयत्नोपर एक अलग प्रकरण लिखा जाय।

१८९३ ई० तक दक्षिण अफ्रीकामे ऐसे स्वतत्र और यथेष्ट शिक्षा प्राप्त भारतीय थोडे ही थे जो भारतीय जनताके लिए लड सके। अग्रेजी जाननेवाले हिदुस्तानियोमे मुख्यत क्लर्क और मुनीम थे। वे अपना काम चलाने भर अग्रेजी जानते थे, पर अर्जिया आदि उनसे नही लिखी जा सकती थी। फिर उन्हे अपने मालिकको सारा वक्त देना ही चाहिए था। इनके सिवा अग्रेजी पढ़ा हुआ दूसरा वर्ग उन हिदुस्तानियोका था जो दक्षिण अफ्रीकामे ही पैदा हुए थे। इनमे अधिकाश गिरमिटियोकी संतान थे और उनमेसे बहुतेरे जिन्होने थोडीसी योग्यता भी प्राप्त कर ली हो, कचहरीमे दुभाषियाकी सरकारी नौकरी करते थे। अत जातिकी उनसे बडी-से-बडी सेवा, हमदर्दी दिखानेके सिवा और क्या हो सकती थी? इसके सिवा गिरमिटिया और गिरमिटमुक्त दोनो मुख्यत. सयुक्त प्रात और मद्राससे आये हुए हिदुस्तानी थे। स्वतत्र भारतीय थे गुजरातके मुसलमान और वे खास तौरसे व्यापारी थे। हिंदू अधिकाश क्लर्क-मुनीम थे, यह हम पीछे देख चुके है। इनके अतिरिक्त थोडे पारसी भी व्यापारी और क्लर्क वर्गमे थे। पर सारे दक्षिण अफ्रीकामे पारसियोकी आबादी ३०-४० से अधिक होनेकी सभावना न थी। स्वतत्र व्यापारी वर्गमे चौथी जमात थी सिधके व्यापारियोकी। सारे दक्षिण अफ्रीकामे दो सौ या इससे कुछ अधिक सिंधी होगे। कह सकते है कि उनका व्यापार हिंदुस्तानके बाहर जहा कही भी वे बसे है वहा एक ही तरहका होता है। वे 'फैंसी गुड्स'के व्यापारी कहे जाते है। 'फैंसी गुड्स'के मानी है रेशम, जरी वगैरहकी चीजे, बबईके बने शीशम, चन्दन और हाथी दातके नक्काशीदार सदूक वगैरह घरकी सजावट। इसी तरहका सामान वे खास तौरसे बेचते है। उनके गाहक ज्यादातर गोरे ही होते है।

गिरमिटियोको गोरे 'कुली' कहकर ही पुकारते है । कुलीके मानी है बोझ ढोनेवाला । यह नाम इतना चल गया है कि गिरमिटिया खुद भी अपने आपको 'कुली' कहते नही हिचकता । पीछे तो यह नाम भारतीयमात्रको मिल गया । सैकडो गोरे हिंदुस्तानी वकील और हिंदुस्तानी व्यापारीको क्रमश 'कुली वकील' और 'कुली व्यापारी' कहा करते । इस विशेषणके व्यवहारमे कोई दोष है, इसे कितने ही गोरे तो मानते या जानते भी नही, पर वहुतेरे तो तिरस्कार प्रकट करनेके लिए ही 'कुली' शब्दका उपयोग करते । इससे स्वतत्र भारतीय अपने आपको गिरमिटियोसे भिन्न वतानेका यत्न करते है । इस तथा जिन्हे हम हिंदुस्तानसे ही साथ ले जाते है उन कारणोसे भी स्वतत्र भारतीय वर्ग और गिरमिटिया तथा गिरमिटमुक्त वर्गके बीच दक्षिण अफ्रीकामे भेद किया जा रहा था ।

इस दु खके दरियाके सामने वाध वननेका काम स्वतत्र हिंदुस्तानी व्यापारियो और खास तौरसे मुसलमान व्यापारियोने अपने ऊपर लिया । पर गिरमिटियो या गिरमिटमुक्त हिंदुस्तानियोको साथ लेनेकी कोशिश इरादेके साथ नही की गई । यह वात उस वक्त शायद सूझी भी नही । सूझती भी तो उन्हे साथ लेनेसे काम विगडनेका ही डर होता । दूसरे मुख्य आपत्ति तो स्वतत्र व्यापारी वर्गपर ही है, यह सोचा गया । इसलिए वचावके प्रयत्नने ऐसा सकुचित रूप धारण किया । इन स्वतत्र व्यापारियोमे अग्रेजीके ज्ञानका अभाव था । हिंदुस्तानमे उन्हे सार्वजनिक कामोका अनुभव नही हुआ था, पर इन कठिनाइयोके होते हुए भी कह सकते है कि उन्होने मुसीवतका सामना डटकर किया । उन्होने यूरोपियन वकीलोकी मदद ली, अर्जिया तैयार कराई, जव-तव शिष्ट-मण्डल भी ले गए और जहा-जहा वन पडा और सूझा वहा-वहा अन्यायमे

लोहा लिया। यह स्थिति १८९३ ई० तक थी।

इस पुस्तकको अच्छी तरह समझनेके लिए पाठकोको कुछ मुख्य तिथिया याद रखनी होगी। पुस्तकके अतमे मुख्य घटनाओका तारीखवार परिशिष्ट दिया गया है। उसे वे समय-समयपर देख लिया करेगे तो इस युद्धका रहस्य और रूप समझनेमे मदद मिलेगी। १८९३ तक फ्री स्टेटमे हमारी हस्ती मिट चुकी थी। ट्रासवालमे १८८५का तीसरा कानून जारी था और नेटालके अदर यह विचार चल रहा था कि कैसे केवल गिरमिटिया हिदुस्तानी ही वहा रह सके, दूसरे निकाल बाहर किए जाए, और इस उद्देश्यसे उत्तरदायी शासनव्यवस्था प्राप्त कर ली गई थी।

१८९३ ई० के अप्रैल महीनेमे मै दक्षिण अफ्रीका जानेके लिए हिदुस्तानसे रवाना हुआ। गिरमिटियोके पिछले इतिहासका मुझे कुछ भी ज्ञान न था। मै केवल स्वार्थ बुद्धिसे गया। पोरबदरके मेमन लोगोकी दादा अब्दुल्लाके नामकी एक मशहूर कोठी डर्बनमे कारबार करती थी। उतनी ही प्रसिद्ध और उसकी प्रतिस्पर्द्धी कोठी पोरबदरके दूसरे मेमन तैयब हाजी खान मुहम्मदके नामकी प्रिटोरियामे थी। दुर्भाग्यवश दोनो प्रतिस्पर्द्धियोके बीच एक बडा मुकदमा चल रहा था। दादा अब्दुल्लाके एक साथीने, जो पोरबदरमे थे, सोचा कि मुझ जैसा नौसिखिया फिर भी बैरिस्टर वहा चला जाय तो मुकदमा लड़नेमे उन्हे कुछ ज्यादा सहूलियत होगी। मुझ-सा निपट अनजान और अनाडी वकील उनका काम बिगाड देगा, इसका डर उन्हे नही था। कारण कि मुझे कुछ अदालतमे जाकर काम करना नही था। मुझे तो महज उन धुरधर वकील-बैरिस्टरोको, जो उन्होने नियुक्त कर रखे थे, मामला समझा देना यानी दुभाषियेका काम करना था। मुझे नए अनुभव प्राप्त करनेका शौक था। मुसाफिरी रचनी

थी। बैरिस्टरके रूपमे दलालको कमीशन देना जहरसा लगता था। काठियावाडकी साजिशोमे मेरा दम घुटता था। एक ही बरसके वचनपर जाना था। मैने सोचा कि मेरे लिए तो इस इकरारनामेमे कुछ भी अडचन नही है। हानि तो है ही नही, क्योकि मेरे जाने-आने और रहनेका खर्च दादा अब्दुल्ला ही देनेवाले थे। इसके अलावा १०५ पौडका मेहनताना भी मिलता। मेरे स्वर्गीय बड़े भाईकी मारफत ये सारी बाते तै हुई थी। मेरे लिए तो वह पिता तुल्य थे। उनकी रजामदी मेरी रजामदी थी। उन्हे मेरे दक्षिण अफ्रीका जानेकी बात पसद आई और १८९३ ई० के मई महीनेमे मै डर्बन जा पहुचा।

बैरिस्टरकी बात तो पूछनी ही क्या ? मै अपनी समझके अनुसार बढ़िया फ्रॉक-कोट इत्यादि डाटकर शानसे जहाजसे उतरा। पर उतरते ही मेरी आखे कुछ-कुछ खुल गई। दादा अब्दुल्लाके जिस साझीके साथ बात हुई थी उसने जो वर्णन मुझे सुनाया था वह तो मुझे उलटा ही दिखाई दिया। इसमे उसका कोई दोष न था। यह था उसका भोलापन, सरलता और परिस्थितिका अज्ञान। नेटालमे हिंदुस्तानियोको जो-जो तकलीफे भुगतनी पडती थी उन सबका उसे पता नही था। और जिन बर्तावोमे हमारा तीव्र अपमान था वे उन्हें अपमानकारक नही जान पडे थे, पर मेरी आखोने तो पहले ही दिन यह देख लिया कि गोरोका बर्ताव हमारे साथ बहुत ही अशिष्ट और अपमानकर है।

नेटाल पहुचनेके १५ दिनके अदर ही कचहरियोमे मुझे जो कडवे अनुभव हुए, ट्रेनके अदर जो कष्ट उठाने पडे, रास्तेमे जो मार खाई, होटलमे जगह पानेमे जो कठिनाई हुई, बल्कि जगह पाना लगभग नामुमकिन था—इन सबका वर्णन मै यहा नही करूगा। इतना ही कहूगा कि ये सारे अनुभव मेरी रग-रग मे समा गए। मै तो सिर्फ एक मुकदमेके लिए गया था,

स्वार्थ और कुतूहलकी दृष्टिसे, इसलिए इस पहले वर्षमे तो मै इन दुखोका साक्षी और अनुभवकर्ता मात्र रहा। मेरे धर्मका पालन यहीसे आरभ हुआ। मैने देखा कि स्वार्थ-दृष्टिसे दक्षिण अफ्रीका मेरे लिए बेकार मुल्क है। जहा अपमान होता हो वहां रहकर पैसा कमाने या सैर-सपाटा करनेका लोभ मुझे तनिक भी न था। यही नही, इससे अत्यन्त अरुचि थी। मेरे सामने धर्मसकट खडा हो गया। मेरे सामने दो रास्ते थे। एक यह कि जिस स्थितिको मै जान नही सकता था उसे अब जान लिया। इसलिए दादा अब्दुल्लाके साथ किए हुए इकरारनामेसे छुटकारा प्राप्तकर भाग जाऊ। दूसरा यह कि चाहे जो सकट सहने पडे सहू और अगीकृत कामको पूरा करूँ। कडाकेकी ठडमे मारित्सबर्ग स्टेशनपर रेलवे पुलिसके धक्के खाकर, यात्रा स्थगित कर और ट्रेनसे उतरकर, वेटिग रूममे बैठा था। मेरा सामान कहा है, इसकी खबर मुझे न थी। किसीसे पूछनेकी हिम्मत भी नही होती थी। कही फिर अपमान हो, मार खानी पडे तो? ऐसी दशामे, ठडसे कापते हुए नीद कहासे आती! मन चक्करदार झूलेपर सवार हुआ। बडी रातको निश्चय किया, "निकल भागना तो नामर्दी है, लिए हुए कामको पूरा करना ही चाहिए। व्यक्तिगत अपमान सहना पडे, मार खानी पडे, तो सह और खाकर भी प्रिटोरिया पहुचना ही चाहिए।" प्रिटोरिया मेरे लिए केद्र स्थान था। मुकदमा वही चल रहा था। अपना काम करते हुए कोई उपाय हो सके तो करू। यह निश्चय कर लेनेपर मनको कुछ शाति हुई, हृदयमे कुछ बल भी आया। पर मै सो तो नही ही सका।

सवेरा होते ही मैने दादा अब्दुल्लाकी कोठी और रेलवेके जनरल मैनेजरको तार किया। दोनो जगहसे जवाब भी आ गया। दादा अब्दुल्ला और उनके उस वक्त नेटालमे

रहनेवाले साझी सेठ अब्दुल्ला हाजी आदम झवेरीने फौरन सब प्रबंध कर दिया। भिन्न-भिन्न स्थानोमे अपने हिंदुस्तानी आढतियोको मेरी फिक्र रखनेके लिए तार किए। जनरल मैनेजरसे भी मिले। आढतियेको भेजे हुए तारके फलस्वरूप मारित्सवर्गके भारतीय व्यापारी आकर मुझसे मिले। उन्होने मुझे आश्वासन दिया और कहा कि आपके जैसे कडवे अनुभव हम सबको हो चुके है। पर हम इसके आदी हो गये है, इसलिए इसकी परवा नही करते। व्यापार करना और नाजुक दिल रखना दोनो बाते साथ कैसे चल सकती है ? इसलिए पैसेके साथ-साथ अपमान भी मिले तो उसे भी बक्समे धर लेनेका नियम हमने स्वीकार कर लिया है। उन्होने मुझे यह भी बताया कि इस स्टेशनपर हिंदुस्तानियोको सदर दरवाजेसे आनेकी मनाही है और टिकट लेनेमे भी उन्हे बडी कठिनाई होती है। उसी रातमे जो ट्रेन आई उससे मै रवाना हो गया। मेरा निश्चय ठीक था या नही, इसकी परीक्षा अतर्यामीने पूरे तौरपर की। प्रिटोरिया पहुचनेके पहले मुझे और अपमान सहने पडे और मार बर्दाश्त करनी पडी। पर इस सबका मेरे मनपर यही असर हुआ कि मेरा निश्चय और पक्का हो गया।

यो १८९३ मे मुझे अनायास दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोकी स्थितिका सच्चा अनुभव हो गया। वैसा अवसर आनेपर प्रिटोरियाके भारतीयोके साथ मै इस विषयमे बातचीत करता, उन्हे समझाता भी, पर इससे अधिक मैने कुछ नही किया। मुझे ऐसा जान पडा कि दादा अब्दुल्लाके मुकदमेकी पैरवी करना और दक्षिण अफ्रीकाके हिंदुस्तानियोके दुःखके निवारणकी चिंता करना, ये दोनो बाते साथ नही चल सकती। मैने देखा कि दोनोको साधनेकी कोशिशमे दोनो जाएगे। इस तरह करते-करते १८९४ आ पहुचा। मुकदमा भी खतम हो

गया। मै डर्बन लौटा। देश लौटनेकी तैयारी की। दादा अव्दुल्लाने मेरी विदाईके लिए एक जलसा भी किया। उसमे किसीने डर्बनके 'मर्करी' अखवारका एक पर्चा मेरे हाथमे दिया। उसमे धारा सभा नेटाल असेबलीकी कारवाईके विवरणमे कुछ पक्तिया मैने 'भारतीय मताधिकार' (इडियन फ्रेचाइज) उपशीर्षकके नीचे पढी। सरकारकी ओरसे उसमे एक बिल पेश किया गया था जो हिदुस्तानियोको धारा सभाके चुनावमे मत देनेके अधिकारसे वचित करता था। मैने देखा कि हिदुस्तानियोके सारे हक छीन लेनेकी यह शुरूआत है। उस मौकेपर किये गए भाषणोमे ही यह इरादा स्पष्ट था। जलसेमे आये हुए सेठो आदिको मैने वह खवर पढकर सुनाई। जितना समझाते वना समझाया भी। सारी हकीकत तो मै जानता नही था। मैने उन्हे सलाह दी कि हिदुस्तानियोको इस हमलेका सामना डटकर करना चाहिए। उन्होने भी इस वातको कवूल किया, पर कहा कि इस तरहकी लडाई हमारे लडे नही लडी जा सकती और मुझसे रुक जानेका आग्रह किया। मैने यह लडाई लडने तक, यानी महीने दो महीने, रुक जाना मजूर किया। उसी रात धारा सभाको भेजनेके लिए अर्जी तैयार की। बिलके ओर वाचन मुल्तवी रखनेके लिए तार भेजा गया। तुरत एक कमेटी वनाई गई। उसके अध्यक्ष सेठ अब्दुल्ला हाजी वनाये गये। तार उन्हीके नामसे भेजा गया। बिलकी कारवाई दो दिन रुकी रही। दक्षिण अफ्रीकाकी धारा सभाओ-मेसे नेटालकी धारा सभामे हिदुस्तानियोका यह पहला आवे-दनपत्र था। उसका असर तो अच्छा हुआ, पर विल पास हुआ ही। उसका अत क्या हुआ, यह तो चौथे प्रकरणमे वता चुका हू। इस तरह लडनेका वहा हिदुस्तानियोका यह पहला अनुभव था। इससे उनमे खूब जोश पैदा हुआ। रोज सभाए होती और

अधिकाधिक लोग उनमे सम्मिलित होते। इस कामके लिए जितना चाहिए था उससे अधिक पैसा इकट्ठा हो गया। नकले करने, दस्तखत लेने आदिके कामोमे मदद करनेके लिए बिना पैसा लिए और पासका पैसा लगाकर काम करनेवाले भी बहुसख्यक स्वयसेवक मिल गये। गिरमिटमुक्त हिदुस्तानियोकी सतान भी इस काममे उत्साहके साथ शामिल हुई। ये सभी अग्रेजी जाननेवाले और सुदर अक्षर लिखनेवाले युवक थे। उन्होने नकले तैयार करने आदिका काम रात-दिनका ख्याल न कर बडे उत्साहसे किया। एक महीनेके अदर ही दस हजार हस्ताक्षरो वाला आवेदनपत्र लार्ड रिपनके पास भेज दिया और मेरा तात्कालिक काम पूरा हुआ।

मैने विदा मागी, पर भारतीय जनताको इस सघर्षमे इतना रस मिलने लगा था कि अब वह मुझे छोडना ही नही चाहती थी। उसने कहा—"आप ही तो हमे समझाते है कि हमे जडमूलसे उखाड फेकनेका यह पहला कदम है। विलायतसे क्या जवाब आयेगा, इसे कौन जानता है ? हमारा उत्साह आपने देख लिया। हम काम करनेको तैयार है। करना चाहते भी है। हमारे पास पैसा भी है। पर रास्ता दिखानेवाला न हुआ तो इतना किया-धरा बेकार हो जायगा। इसलिए हम तो मानते है कि कुछ दिन यहा और रह जाना आपका फर्ज है।" मुझे भी दिखाई दिया कि कोई स्थायी सस्था हो जाय तो अच्छा है। पर रहू कहा और किस तरह ? उन लोगोने मुझे तनख्वाह देनेकी बात कही, पर मैने तनख्वाह लेनेसे साफ इनकार कर दिया। सार्वजनिक कार्य बडी-बडी तनख्वाह लेकर नही हो सकता। फिर मै तो नीव डालनेवाला था। रहना भी ऐसे ढगसे चाहिए कि उस वक्तके मेरे विचारोके अनुसार बैरिस्टरको फबे और जातिको भी शोभा दे। अर्थात् खर्च भी भारी था। लोगोको दबाकर

उनसे ऐसा करके आदोलन वढाना और इसके साथ-साथ अपनी रोजी भी कमा लेना, यह दो परस्पर विरोधी बातोका सगम होगा। इससे मेरी अपनी काम करनेकी शक्ति भी घट जायगी। ऐसे अनेक कारणोसे मैने लोकसेवाके कार्यके लिए पैसा लेनेसे साफ इनकार कर दिया। पर मैने यह सुझाव पेश किया कि आप लोगोमेसे वडे व्यापारी अपनी वकालतका काम मुझे दे और इसके लिए मुझे पेशगी 'रिटेनर'[1] दे तो मै रुकनेको तैयार हू। एक वरसका रिटेनर आप दे। एक बरस हम एक-दूसरेका अनुभव प्राप्त करे, सालभरके कामका हिसाब करके देखे और फिर ठीक जान पडे तो आगे काम चलाए। इस सुझावका सवने स्वागत किया। मैने वकालतकी सनदके लिए दरख्वास्त दी। वहाकी 'ला सोसायटी' अर्थात् वकील मडलने मेरी दरख्वास्तका विरोध किया। उनकी दलील एक ही थी कि नेटालके कानूनके मशाके अनुसार काले या गेहुँए रगके लोगोको वकालतकी सनद नही दी जा सकती। मेरी दरख्वास्तकी हिमायत वहाके मशहूर वकील श्री एस्कवने की, जो पहले एटर्नी जनरल थे और पीछे नेटालके प्रधान-मत्री हो गये थे। आमतौरपर लवे अरसेसे यह रिवाज चला आ रहा था कि वकालतकी सनदकी दरख्वास्त कानून-पडितोमेसे जो अग्रणी हो वह विना मेहनतानेके अदालतके सामने पेश करे। इसी प्रथाके अनुसार श्री एस्कवने मेरी वकालत मजूर की। वह दादा अब्दुल्लाके वडे (सीनियर) वकील भी थे। वकील-मडलकी दलील वडी अदालत (सीनियर कोर्ट) ने रद्द करदी और मेरी दरख्वास्त मजूर कर ली। यो वकील-मडलका विरोध विना चाहे मेरी दूसरी प्रसिद्धिका कारण हो गया।

---

[1] वकील-बैरिस्टरको उस दृष्टिसे दिया हुआ पेशगी मेहनताना कि जरूरत पडनेपर काम लेनेका हक रहे।

दक्षिण अफ्रीकाके अखबारोने वकील-मडलकी हसी उडाई और कुछने मुझे बधाई भी दी।

जो कामचलाऊ कमेटी बनाई गई थी उसे स्थायी रूप दिया गया। मैने काग्रेसकी एक भी बैठक देखी तो नही थी, पर काग्रेसके बारेमे पढा था। हिंदके दादा (दादा भाई) के दर्शन कर चुका था। उनकी मैं पूजा करता था। अत. काग्रेसका भक्त तो होना ही चाहिए था। उसके नामको लोकप्रिय बनानेका भी ख्याल था। नया जवान नया नाम क्यो ढूढने जाय ? फिर उसमे भूल कर बैठनेका भी भारी भय था। अत मैने सलाह दी कि कमेटी 'नेटाल इडियन काग्रेस' नाम ग्रहण करे। काग्रेसके विषयमे अपना अधूरा ज्ञान अधूरी रीतिसे मैने लोगोके सामने रखा। १८९४ ई० के मई या जूनमे काग्रेसकी स्थापना हुई। भारतीय सस्था और इस सस्थामे इतना अतर था कि नेटाल काग्रेसकी बैठके बारहो मास हुआ करती थी और जो सालमे कम-से-कम तीन पौंड दे सके वही उसका सदस्य हो सकता था। अधिक-से-अधिक तो जो कुछ भी दिया जाय वह सधन्यवाद स्वीकार किया जाता। पाच-सात सदस्य सालाना २४ पौंड देनेवाले भी निकल आए। १२ पौंड देनेवालोकी तादाद तो काफी थी। एक महीनेके अदर कोई तीन सौ सदस्योके नाम दर्ज हो गये। हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई आदि जितने धर्मो और प्रान्तोके लोग वहा थे उसमे शामिल हुए। पहले बरसभर काम बडे जोरसे चला। सेठ लोग निजकी सवारिया लेकर दूर-दूरके गावोमे नये मेंबर बनाने और चदा इकट्ठा करने जाते थे। हर आदमी मागते ही पैसा नही दे देता था। उन्हे समझाना होता था। समझानेमे एक प्रकारकी राजनैतिक शिक्षा मिलती थी और लोग परिस्थितिसे परिचित होते थे। फिर हर महीने कम-से-कम एक बार तो काग्रेसकी बैठक होती

ही थी। उसमे उस महीनेका पाई-पाईका हिसाव सुनाया जाता और वह पास होता। महीनेके अदर घटित सारी घटनाएं भी सुनाई जाती और कार्रवाई लिख ली जाती। सदस्य-गण जुदा-जुदा सवाल पूछते। नए कामोपर मशवरा होता। यह सब करते हुए जो लोग कभी ऐसी सभाओमे नही वोलते थे वे वक्ता वन जाते थे। भापण भी शिष्टता, औचित्यका ध्यान रखकर ही करते थे। यह सारा हमारे लिए नया अनु-भव था। लोगोने इसमे वहुत रस लिया। इस वीच लार्ड-रिपनके नेटालका (मताधिकार हरण) विल नामजूर कर देनेकी खवर आई। इससे लोगोका हर्ष और आत्म-विश्वास दोनो वढे।

जैसे वाहर काम हो रहा था वैसे लोगोके अंदर काम करने-का आदोलन भी चल रहा था। हमारी रहन-सहनके वारेमे सारे दक्षिण अफ्रीकामे गोरे जोरदार आंदोलन कर रहे थे। हिंदुस्तानी वहुत गंदे है, कजूस है, जिस मकानमे व्यापार करते है उसीमे रहते भी है, उनके घर जैसे मांद हो, अपने आरामके लिए भी वे पैसा नही खर्च करते। ऐसे मैले, मक्खीचूस लोगोके साथ साफ-सुथरे, उदार और वहुत ज्यादा जरूरतो वाले गोरे व्यापारमे कैसे प्रतियोगिता कर सकते है? यह उनकी हमेशाकी दलील थी। इसमे घर साफ-सुथरा रखने घर और दुकान अलग-अलग रखने, कपडे साफ रखने, वडी कमाईवाले व्यापारीको फवने लायक रहन-सहन रखने आदिके वारेमे भी काग्रेसकी वैठकोमे विवेचन और विवाद होता, सुझाव रखे जाते। कार्रवाई सारी मातृभापामे ही होती।

इन सवसे लोगोको अनायास कितनी व्यावहारिक शिक्षा और राजनैतिक काम-काजका कितना अनुभव मिल रहा था, पाठक इसे समझ सकते है। काग्रेसके ही अतर्गत गिरमिट-मुक्त हिंदुस्तानियोकी सन्तान अर्थात् नेटालमे ही जन्मे हुए

अंग्रेजी बोलनेवाले भारतीय युवकोंके सुभीतेके लिए एक शिक्षण-मडल भी स्थापित किया गया। उसमे नामकी फीस रखी गई। मुख्य उद्देश्य था उन नौजवानोको इकट्ठा करना, उनमे हिन्दुस्तानके प्रति प्रेम उत्पन्न करना और उसका सामान्य ज्ञान करा देना। साथ ही यह हेतु भी था कि स्वतंत्र भारतीय व्यापारी उन्हे अपना ही समझते है। यह उन्हे दिखा दिया जाय और व्यापारीवर्गमे भी उनके लिए आदर उत्पन्न किया जाय। अपना खर्च चलाते हुए भी काग्रेसके पास एक बडी रकम इकट्ठी हो गई थी। उसकी जमीन खरीदी गई और इस जमीनकी आमदनी आजतक उसे मिला करती है।

इतना व्योरा मैंने जानबूझ कर दिया है। सत्याग्रह कैसे स्वाभाविक रीतिसे उत्पन्न हुआ और लोग कैसे उसके लिए तैयार हुए। ऊपरके व्योरे जाने विना पाठक इस बात-को पूरी तरह नही समझ सकते थे। काग्रेसके ऊपर मुसीबते आई, सरकारी अधिकारियोकी ओरसे हमले हुए, उन हमलोसे वह कैसे बची, यह और ऐसी दूसरी बातोका जानने लायक इतिहास मुझे छोड देना पड रहा है। पर एक बात बता देना जरूरी है। अतिशयोक्तिसे भारतीय जनता सदा बचती रहती। उसकी कमिया उसे दिखानेका यत्न सदा किया जाता। गोरोकी दलीलोमे जितनी सचाई होती, वह तुरत स्वीकार कर ली जाती और गोरोके साथ स्वतत्रता और आत्मसम्मानकी रक्षा करते हुए सहयोग करनेके हर अवसरका स्वागत किया जाता। हिन्दुस्तानियोके आन्दोलनका जितना समाचार वहाके अखबार ले सकते थे उतना उन्हे दे दिया जाता और अखबारोमे हिंदुस्तानियोपर वेजा हमला होता तो उसका जवाब भी दिया जाता।

नेटालमे जैसी 'नेटाल इडियन काग्रेस' थी वैसी ही सस्था

ट्रासवालमे भी थी। पर ट्रासवालकी सस्था नेटालसे सर्वथा स्वतंत्र थी। उनके विधानमे भी अतर था। पर उसकी चर्चामे पाठकोको उलझाना नही चाहता। ऐसी सस्था केप टाउनमे भी थी। उसका विधान नेटाल और ट्रासवाल दोनोकी सस्थाओसे भिन्न प्रकारका था। फिर भी तीनोके कार्य लगभग एक ही तरहके कहे जा सकते है।

१८९४का साल खतम हुआ। काग्रेसका पहला वरस भी १८९५के मध्यमे पूरा हो गया। मेरा वकालतका काम भी मवक्किलोको पसद आया। मेरा प्रवासकाल और लबा हो गया। १८९६ मे लोगोसे इजाजत लेकर ६ महीनेके लिए हिंदुस्तान लौटा, पर पूरे छ महीने भी न रह पाया था कि नेटालसे तार मिला और मुझे तुरत लौट जाना पडा। १८९६-९७ का हाल हमे अलग अध्यायमे मिलेगा।

: ७ :

भारतीयोंने क्या किया ?—२

इस प्रकार नेटाल इडियन काग्रेसका काम स्थिर हो गया। मैने भी लगभग ढाई वरस अधिकतर राजनैतिक काम करते हुए नेटालमे बिता लिए। अब मैने सोचा कि अगर मुझे दक्षिण अफ्रीकामे अभी और रहना हो तो बाल-बच्चोको भी साथ रखना जरूरी है। कुछ समय देशका दौरा कर आनेका भी मन हुआ। सोचा कि इस बीच भारतके नेताओको नेटाल और दक्षिण अफ्रीकाके दूसरे भागोमे बसनेवाले भारतीयोकी स्थितिकी सक्षिप्त कल्पना भी करा दूगा। काग्रेसने ६ महीनेकी छुट्टी दी और मेरी जगह नेटालके सुप्रसिद्ध व्यापारी स्व० आदमजी मिया खाको मत्री

नियुक्त किया। उन्होने बडी होशियारीसे काम किया। स्व० आदमजी मिया खा अग्रेजी अच्छी जानते थे। अनुभवसे अपने कामचलाऊ ज्ञानको उन्होने खूब बढा लिया था। गुजराती-का सामान्य अभ्यास था। उनका व्यापार खासतौरसे हवशियोमे था। अत जुलू भाषा और हवशियोके रस्म-रिवाजकी उन्हे अच्छी जानकारी थी। स्वभाव शात और बहुत ही मिलन-सार था। जितना जरूरी हो उतना ही बोलनेकी आदत थी। यह सब लिखनेका हेतु इतना ही है कि बडी जिम्मेदारीके पदपर काम करनेके लिए अग्रेजीके या दूसरे अक्षरज्ञानकी जितनी आवश्यकता होती है उससे कही अधिक आवश्यकता सचाई, शान्ति, सहनशीलता, दृढता, अवसरकी पहचान और तदनु-रूप कार्य करनेकी योग्यता, हिम्मत और व्यवहार-बुद्धिकी होती है। ये गुण न हो तो अच्छे-से-अच्छे अक्षरज्ञानकी भी सामाजिक काममे धेले भर कीमत नही होती।

१८९६ के मध्यमे मै हिंदुस्तान लौटा। कलकत्तेके रास्ते आया, क्योकि उस वक्त नेटालसे कलकत्ते जानेवाले स्टीमर आसानीसे मिल जाते थे। गिरमिटिया कलकत्ते या मद्राससे जहाजपर सवार होते थे। कलकत्तेसे बबई आते हुए रास्तेमे मेरी ट्रेन छूट गई। इससे मुझे एक दिन इलाहा-बादमे अटकना पडा। वहीसे मैने अपना काम शुरू किया। 'पायोनियर'के मि० चेजनीसे मिला। उन्होने सौजन्यके साथ बाते की। सचाईके साथ मुझे बता दिया कि उनका झुकाव उपनिवेशोकी ओर है, पर कहा कि आप जो कुछ लिखेगे उसे पढ जाऊगा और अपने पत्रमे उसपर टिप्पणी भी लिखूगा। मैने इतनेको ही काफी समझा।

देशमे रहनेके दिनोमे दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोकी स्थितिके विषयमे मैने एक पुस्तिका लिखी। उस पर लगभग सभी अखबारोमे टीका-टिप्पणी हुई। उसके दो सस्करण

छपवाने पडे। पाच हजार प्रतिया देशके भिन्न-भिन्न स्थानोमे भेजी गई। इन्ही दिनो मैने भारतके नेताओके दर्शन किये—बबईमे सर फीरोजशाह मेहता, न्यायमूर्ति बदरुद्दीन तैयबजी, न्यायमूर्ति रानडे इत्यादिके, पूनामे लोकमान्य-तिलक और उनके मडल, प्रोफेसर भाडारकर, गोपाल कृष्ण गोखले और उनके मडल वालोके। बबईसे आरभ करके पूना और मद्रासमे भाषण भी किये। इनका विवरण यहा नही देना चाहता।

पर पूनाका एक पवित्र सस्मरण दिये विना नही रह सकता, यद्यपि अपने विषयके साथ उसका कोई सबध नही। पूनामे सार्वजनिक सभा लोकमान्य तिलकके हाथमे थी। स्वर्गीय गोखले-जीका सबध दक्खिन सभाके साथ था। मै पहले मिला तिलक महाराजसे। उनसे मैने जब पूनामे सभा करनेकी बात कही तो उन्होने मुझसे पूछा—“आप गोपालरावसे मिल चुके है?”

मैने पहले उनका आशय नही समझा। अत उन्होने फिर पूछा—“श्री गोखलेसे आप मिल चुके है? उन्हे जानते है?”

मैने जवाब दिया—“अभी मिला नही। उन्हे नामसे ही जानता हू। पर मिलनेका इरादा है।”

लोकमान्य—“आप हिंदुस्तानकी राजनीतिसे परिचित नही जान पडते।”

मैने कहा—“विलायतसे पढकर लौटनेके बाद मै हिंदुस्तानमे थोडे ही दिन रहा और उस अल्पकालमे भी राजनैतिक मामलोमे जरा भी दखल नही दिया। इन चीजोको मै अपने बसके बाहरकी बात मानता था।”

लोकमान्य—“तब मुझे आपको कुछ परिचय देना पडेगा। पूनामे दो पक्ष है—एक सार्वजनिक सभाका, दूसरा दक्खिन सभाका।”

मैने कहा—"इसके बारेमे तो मै कुछ-कुछ जानता हू।"

लोकमान्य—"यहा सभा करना तो आसान है, पर मै देखता हू कि आप अपना सवाल सब पक्षोके सामने रखना चाहते है और मदद भी सबकी चाहते है। यह बात मुझे पसद आती है, पर आपकी सभाका सभापति हममेसे कोई हो तो दक्खिन सभावाले नही आयगे और दक्खिन सभाका कोई आदमी सभापति बने तो हममेसे कोई नही जायगा। अत आपको तटस्थ सभापति ढूढना चाहिए। मै तो इस मामलेमे सलाह भर दे सकता हू। दूसरी मदद मुझसे नही हो सकेगी। आप प्रोफेसर भाडारकरको जानते है ? न जानते हो तो भी उनके पास जाइए। वह तटस्थ माने जाते है। राजनैतिक कामोमे शामिल भी नही होते, पर शायद आप उन्हे ललचा सके। श्री गोखलेसे इस बारेमे बात कीजिए। उनकी सलाह भी लीजिए। बहुत करके वह भी आपको यही सलाह देगे। प्रोफेसर भाडारकर जैसा पुरुष सभापति बनना स्वीकार कर ले तो मुझे विश्वास है कि दोनो पक्ष सभाका आयोजन करनेका काम उठा लेगे। हमारी मदद तो इसमे आपको पूरी रहेगी।"

यह सलाह लेकर मै गोखलेजीके पास गया। इस पहले मिलनमे ही उन्होने मेरे हृदयमे कैसे राज्याधिकार प्राप्त कर लिया इसे तो दूसरे प्रसगमे लिख चुका हू। जिज्ञासुजन 'यग इडिया' या 'नवजीवन'की फाइल देखनेका कष्ट करे।[1] लोकमान्यकी सलाह गोखलेजीको भी पसद आई। मै तुरत प्रोफेसर भाडारकरके पास पहुचा। उन विद्वान् बुजुर्गके दर्शन किए। नेटालकी कहानी ध्यान-पूर्वक सुनकर उन्होने कहा—"आप देखते है कि मै तो सार्वजनिक जीवनमे क्वचित् ही पडता हू। अब तो बूढा भी हुआ। फिर भी आपकी

---

[1] देखिये 'यग इडिया' १३ जुलाई १९२१, 'नवजीवन' २८ जुलाई '२१

वातोने मेरे मनपर वहुत असर किया है। आपके सव पक्षोकी सहायता प्राप्त करनेके विचारको मे पसद करता हू। फिर आप हिंदुस्तानकी राजनीतिसे अनजान जान पडते है और युवक है। अत दोनो पक्षोसे कहिए कि मैने आपका अनुरोध स्वीकार कर लिया। जव सभा हो तो उनमेसे कोई भी मुझे खवर दे देगा तो मै जरूर हाजिर हूगा।" पूनामे सुदर सभा हुई। दोनो पक्षोके नेता उपस्थित हुए और भाषण दिये।

अनन्तर मै मद्रास गया। वहा जस्टिस सुब्रह्मण्यम् ऐयरसे मिला। श्री आनंद चार्लु, 'हिंदू' के तत्कालीन सपादक श्री जी० सुब्रह्मण्यम्, 'मद्रास स्टैंडर्ड'के सपादक श्री परमेश्वरम् पिल्ले, प्रख्यात वकील श्री भाष्यम् आयगार, मि० नॉर्टन आदिसे भी मिला। वहा भी सभा हुई। वहासे मै कलकत्ते गया। श्री सुरेन्द्रनाथ वनर्जी, महाराज ज्योतीन्द्रमोहन ठाकुर, 'इग्लिशमेन' के सपादक मि० साडर्स आदिसे भी मिला। वहा सभाकी तैयारी हो रही थी कि इतनेमे, यानी १८९६ ई० के नववर महीनेमे, मुझे नेटालसे तार मिला—"अविलव आइए।" मै समझ गया कि हिंदुस्तानियोके खिलाफ कोई नया आन्दोलन उठा होगा। अत कलकत्तेका काम पूरा किये विना ही पीछे फिरा और वम्वईसे जानेवाले पहले ही जहाजपर सवार हो गया। यह स्टीमर दादा अब्दुल्लाकी फर्मने खरीद लिया था और उसके अनेक साहसोमे नेटाल और पोरवदरके वीच जहाज चलानेका यह पहला साहस था। उस स्टीमरका नाम 'कोर्लैंड' था। उस स्टीमरके वाद तुरत ही पर्शियन स्टीम नेविगेशन कपनीका स्टीमर 'नादरी' भी नेटालके लिए रवाना हुआ। मेरा टिकट 'कोर्लैंड'का था। मेरा कुटुव भी मेरे साथ था। दोनो जहाजोमे सव मिलाकर दक्षिण अफ्रीका जाने वाले कोई ८०० मुसाफिर रहे होगे।

हिंदुस्तानमे जो आन्दोलन मैने किया वह उतनी वडी तीव्र

हो गया—और बडे अखबारोमेसे अधिकाशने उसपर लेख-टिप्पणिया लिखी—कि रायटरने उसके बारेमे विलायत तार भेजे। यह खबर मुझे नेटाल पहुचते ही मिली। विलायत-के तारोपरसे रायटरके वहाके प्रतिनिधिने एक मुख्तसर तार दक्षिण अफ्रीका भी भेजा। इस तारमे जो कुछ मैने हिंदु-स्तानमे कहा था उसमे थोडा नमक-मिर्च लगा दिया गया था। ऐसी अतिशयोक्ति हम अकसर होते देखते है। यह सब जान-बूझकर नही किया जाता। बहुधन्धी लोग किसी चीजको ऊपर-ऊपरसे पढ लेते है। उनका कुछ अपना खयाल तो होता ही है। उसका एक खुलासा होता है। दिमाग उसका एक दूसराही खुलासा बना लेता है। फिर वह जहा-जहा जाता है वहा उसका एक नया ही अर्थ किया जाता है। ये सारी बाते अनायास हुआ करती है। सार्वजनिक कामोमे यह खतरा रहता है और यह उनकी हद भी होती है। हिंदुस्तानमे मैने नेटालके गोरोपर आक्षेप किए। गिरमिटियोपर लगाये गए तीन पौंडके करके विरुद्ध बहुत कडी बाते कही। सुब्रह्मण्यम् नामक निरपराध गिरमिटियाको उसके मालिकने पीट दिया। उसके जख्म मैने अपनी आखो देखे। उसका सारा मामला मेरे ही हाथमे था। इससे उसकी तसवीर अपनी शक्तिके अनुसार मै ठीक-ठीक खीच सका था। इस सबका खुलासा जब नेटालवासी गोरोने पढा तब वे मुझपर बहुत क्रुद्ध हुए। खूबी यह थी कि जो कुछ मैने नेटालमे लिखा था वह हिंदुस्तानमे कही और लिखी हुई बातोसे अधिक तीखा और अधिक ब्योरेवार था। हिंदुस्तानमे मैने एक भी बात नही कही थी जिसमे तनिक भी अतिशयोक्ति हो, पर अनुभवसे मै इतना जानता था कि किसी भी घटनाका वर्णन अनजान आदमीके सामने करो तो जितना अर्थ हमने उसमे रखा हो वह अनजान श्रोता या पाठक उससे अधिक अर्थ उसमे

देखता है। इससे जानबूझकर हिंदुस्तानमे नेटालका चित्र मैने कुछ हलका ही खीचा था। पर नेटालमे तो मेरा लेख बहुत थोडे गोरे पढते और उसकी परवाह करनेवाले और भी कम होते। हिंदुस्तानमे कही हुई बातके विषयमे इसका उलटा ही होता और हुआ। रायटरके खुलासोको तो हजारो गोरे पढते थे। फिर जो बात तारमे लिखने लायक समझी गई हो उसका महत्व जितना वास्तवमे हो उससे अधिक समझा जाता है। नेटालके गोरे जितना सोचते थे उतना असर हिंदुस्तानमे किए हुए मेरे कामका पडा होता तो गिरमिटकी प्रथा शायद बद हो जाती और इससे सैकडो गोरे मालिकोका नुकसान होता। इसके सिवा यह भी समझा जा सकता है कि नेटालके गोरोकी हिंदुस्तानमे बदनामी हुई।

इस प्रकार नेटालके गोरोका पारा गरम हो रहा था कि इतनेमे उन्होने सुना कि मै बाल-बच्चोके साथ 'कोर्लैंड' जहाजसे लौट रहा हू। उस जहाजमे ३-४ सौ हिंदुस्तानी यात्री है। उसीके साथ 'नादरी' नामका दूसरा स्टीमर भी उतने ही मुसाफिर लेकर आ रहा है। इससे बलती आगमे घी पडा और वह बडे जोरसे भडक उठी। नेटालके गोरोने बडी-बडी सभाए की और लगभग सभी प्रमुख यूरोपियन उनमे शामिल हुए। खासतौरसे मेरी और आमतौरसे हिंदुस्तानी कौमकी कडी आलोचना की गई। 'कोर्लैंड' और 'नादरी' के आगमनको 'नेटालपर चढाई' का रूप दिया गया। सभामे बोलनेवालोने यह अर्थ निकाला कि मै इन ८०० यात्रियोको साथ ले आया हू और नेटालको स्वतत्र भारतीयोसे भर देनेके प्रयत्नमे यह मेरा पहला कदम है। सभामे एक-मतसे यह प्रस्ताव पास हुआ कि दोनो स्टीमरोके मुसाफिरोको और मुझे जहाजसे उतरने न दिया जाय। नेटालकी सरकार उन्हे न रोके या न रोक सके तो अपनी जो कमेटी बनाई गई है

वह कानूनको अपने हाथमे ले ले और अपने ही बलसे हिंदुस्तानियोको उतरनेसे रोके। दोनो स्टीमर एक ही दिन नेटालके बदर डर्बन पहुचे।

पाठकोको याद होगा कि १८९६ ई० मे हिंदुस्तानमे प्लेगके प्रथम दर्शन हुए। नेटालकी सरकारके पास हमे पीछे लौटानेका कोई कानून-सगत साधन तो था ही नही, प्रवेश प्रतिबधक कानून तबतक नही बना था। नेटाल सरकारकी सारी हमदर्दी तो ऊपर लिखी हुई कमेटीकी तरफ ही थी। उसके एक मत्री स्व० मि० एस्कब उसके काममे पूरा हिस्सा ले रहे थे। उसको भडका भी वही रहे थे। सभी बदरगाहोमे यह नियम है कि किसी भी जहाजमे छूतके रोगकी शिकायत हो या वह ऐसे बदरगाहसे होकर आ रहा हो जहा कोई छूतवाला रोग फैला हुआ हो तो वह इतने दिनोतक 'क्वारटाइन'मे रखा जाय यानी उस जहाजके साथ ससर्ग बद रखा जाय और मुसाफिर, माल आदिको उस अवधितक उतारनेकी मनाही रहे। यह रोक आरोग्य-नियमोके अदर और बदरगाहके डाक्टरकी आज्ञासे ही लगाई जा सकती है। नेटालकी सरकारने इस प्रतिबधके अधिकारका शुद्ध राजनैतिक उपयोग अर्थात् दुरुपयोग किया और दोनो स्टीमरोपर कोई भी छूतका रोगी न होनेपर भी दोनोको २३ दिनतक डर्बनके बदरगाहके प्रवेशपथमे रोक रखा। इस बीच कमेटीका काम चलता रहा। दादा अब्दुल्ला 'कोर्लैंड'के मालिक और 'नादरी' के एजेट थे। कमेटीने उन्हे खूब धमकाया। जहाजोको लौटा दे तो लाभका लोभ भी दिखाया गया और न लौटानेपर व्यापारको धक्का पहुचानेका डर भी कितनोने दिखाया। पर कोठीके हिस्सेदार डरपोक न थे। धमकी देनेवालोको जवाब दिया—जबतक हमारा सारा कार-बार चौपट न हो जाय, हम बिल्कुल बरबाद न हो जाय, हम

लडते रहेगे। पर डरकर इन निर्दोष यात्रियोको लौटा देनेका पाप हम करनेवाले नही। जैसे आपको अपने देशका अभिमान है वैसे ही मान लीजिए कि हमे भी कुछ होना चाहिए।" इस कोठीके जो पुराने वकील मि० एफ० ए० लॉटन थे वह भी हिम्मतवाले और बहादुर थे।

इसी बीच भाग्यवश स्वर्गीय श्री मनसुखलाल हीरालाल नाजर (सूरतके कायस्थ और स्वर्गीय न्यायमूर्ति नानाभाई हरिदासके भानजे) अफ्रीका पहुचे। मै उन्हे जानता नही था। उनके जानेकी भी मुझे खबर नही थी। मुझे यह कहनेकी जरूरत शायद ही हो कि 'नादरी' और 'कोर्लैंड' के यात्रियोके लानेमे मेरा कुछ भी हाथ नही था। उनमे अधिकतर तो दक्षिण अफ्रीकाके पुराने बाशिंदे थे। उनमेसे भी बहुतेरे ट्रासवाल जानेके लिए सवार हुए थे। इन मुसाफिरोके लिए भी कमेटीने धमकीके नोटिस भिजवाये। कप्तानने उन्हे पढकर यात्रियोको सुनाया। उनमे साफ लिखा हुआ था—"नेटालके गोरे बहुत उत्तेजित है और उनके मिजाजकी हालत जानते हुए भी अगर हिंदुस्तानी यात्री उतरनेकी कोशिश करेगे तो बन्दरगाहके ऊपर कमेटीके आदमी खडे रहेगे और एक-एक भारतीयको उठाकर समुद्रमे फेक देगे।" 'कोर्लैंड'के मुसाफिरोको इस नोटिसका उल्था मैने सुनाया। 'नादरी' के मुसाफिरोको उनमेसे किसी अंग्रेजी जाननेवालेने उसका आशय समझाया। दोनो जहाजोके यात्रियोने वापस जानेसे साफ इनकार कर दिया। यह भी जता दिया—"बहुतेरे यात्रियोको तो ट्रासवाल जाना है। जो नेटालमे उतरना चाहते है उनमे भी बहुतसे नेटालके पुराने निवासी है। कुछ भी हो, हरएकको नेटालमे उतरनेका कानूनन हक है और कमेटीकी धमकीके बावजूद अपना हक साबित करनेके लिए मुसाफिर यहा उतरेगे ही।"

नेटालकी सरकार भी हारी। अनुचित प्रतिबंध कितने दिन चल सकता है ? २३ दिन तो हो गए, पर दादा अब्दुल्ला न डिगे और न हिंदुस्तानी यात्री ही। अत २३ दिन बाद रोक हटा ली गई और जहाजोको अंदर आनेकी इजाजत मिली। इस बीच मि० एस्कबने उत्तेजित कमेटीको ठंडा कर दिया। उन्होने सभा करके कहा—"डर्बनमे यूरोपियनोने खूब एकता और हिम्मत दिखाई। आप लोगोसे जितना हो सकता था उतना आपने किया, सरकारने भी आपकी सहायता की। इन लोगोको २३ दिनतक जहाजसे उतरने नही दिया। अपनी भावना और अपने जोशका जो दृश्य आपने दिखाया है वह काफी है। इसका गहरा असर बडी सरकारपर पडेगा। आपके कामसे नेटाल सरकारका रास्ता आसान हो गया। अब आपने बल-प्रयोग करके एक भी हिंदुस्तानी मुसाफिरको उतरनेसे रोका तो अपना काम आप अपने हाथो बिगाड देगे। नेटाल सरकारकी स्थिति भी कठिन हो जायगी और ऐसा करके भी इन लोगोको रोकनेमे आप सफल नही होगे। मुसाफिरोका तो कोई दोष है ही नही। उनमे स्त्रिया और बच्चे भी है। बम्बईमे जब वे जहाजपर सवार हुए उस वक्त आपकी मनोदशाकी उन्हे खबर भी नही थी। इसलिए अब आप मेरी सलाह मानकर अपने-अपने घर चले जाए और इन लोगोके आनेमे तनिक भी रुकावट न डाले। पर मैं आप लोगोको यह वचन देता हू कि इसके बाद आनेवालोको रोकनेका अधिकार नेटालकी सरकार धारा सभासे प्राप्त करेगी।" यह तो भाषणका सारमात्र है। मि० एस्कबके श्रोता निराश तो हुए, पर नेटालके गोरोपर उनका बहुत भारी प्रभाव था। अत उनके कहनेसे वे बिखर गए। दोनो जहाज बंदरगाहके अंदर आये।

मेरे बारेमे उन्होने कहला भेजा—"आप दिन रहते जहाज-

से न उतरे। शामको मै (मि० एस्कव) वदरगाहके सुपरिटेडेटको आपको लेनेके लिए भेजूगा। उनके साथ आप घर जायं। आपके घरवाले जव चाहे उतर सकते है।" यह कोई जाव्तेका हुक्म नही था, वल्कि कप्तानके लिए मुझे उतरने न देनेकी सलाह थी और मेरे सिरपर जो खतरा झूल रहा था उसकी चेतावनी थी। कप्तान मुझे जवर्दस्ती तो रोक नही सकता था। पर मैने सोचा कि मुझे यह सलाह मान लेनी चाहिए। वाल-वच्चोको मैने घर न भेजकर डर्वनके प्रसिद्ध व्यापारी और मेरे पुराने मवक्किल तथा मित्र पारसी रुस्तमजीके यहा भेजा और उनसे कहा कि वही तुम लोगोसे मिलूगा। मुसाफिर वगैरह उतर गए। इतनेमे मि० लॉटन, दादा अव्दुल्लाके वकील और मेरे मित्र, आये और मुझसे मिले। उन्होने पूछा—"आप अवतक क्यो नही उतरे?" मैने मि० एस्कवके पत्रकी वात कही। उन्होने कहा—"मुझे तो शामतक इतजार करना और फिर चोर या अपराधीकी तरह शहरमे दाखिल होना पसद नही आता। आपको कोई डर न हो तो अभी मेरे साथ चले और हम इस तरह पैदल शहरसे होकर चले जायगे कि जैसे कुछ हुआ ही न हो।" मैने जवाव दिया—"मै यह नही मानता कि मुझे किसी तरहका डर है। मि० एस्कवकी सूचनाका आदर करू या नही, यही सवाल मेरे सामने है। इसमे कप्तानकी कुछ जिम्मेदारी है या नही, इसको भी थोडा सोच लेना चाहिए।" मि० लॉटनने हसकर कहा—"मि० एस्कवने ऐसा क्या लिखा है कि उनकी सूचनापर आपको तनिक भी ध्यान देना ही पडे। फिर इस सूचनामे कुछ भलमनसी ही है, कोई छल-कपट नही है, यह माननेके लिए भी आपके पास क्या आधार है? शहरमे क्या हुआ है और उसमे इन साहवका कितना हाथ है, यह जितना आप जानते है उससे ज्यादा मै जानता हू। (मैने

बीचमें सिर हिलाया।) फिर यह मान लें कि उन्होंने अच्छे इरादेसे सलाह दी है तो भी उसपर अमल करनेमें आपकी प्रतिष्ठाकी हानि है, यह मैं पक्का मानता हूं। इसलिए मेरी तो सलाह है कि आप तैयार हो तो अभी चलें। कप्तान तो अपना ही आदमी है। इसलिए उसकी जिम्मेदारी अपनी जिम्मेदारी है। उससे पूछनेवाले केवल दादा अब्दुल्ला हो सकते हैं। वह क्या सोचेंगे, यह मैं जानता हूं, क्योंकि इस लडाईमें उन्होंने खूब बहादुरी दिखाई है।" मैंने कहा—"तो फिर चलें। मुझे कोई तैयारी नहीं करनी है। सिर्फ पगडी सिरपर धर लेना बाकी है। कप्तानको बताऊं और चल दें।" हमने कप्तानकी इजाजत ले ली।

मि० लॉटन डर्बनके बहुत पुराने और प्रसिद्ध वकील थे। हिंदुस्तान लौटनेके पहले ही उनके साथ मेरा बहुत निकटका संबंध स्थापित हो चुका था। अपने टेढे मुकदमोंमें उनकी ही मदद लेता और अकसर उन्हें बडा (सीनियर) वकील भी बनाता था। वह खुद हिम्मतवाले आदमी थे। कद ऊंचा-पूरा था।

हमारा रास्ता डर्बनके बडे-से-बडे महल्लेसे होकर जाता था। हम जब रवाना हुए तब शामके चार-साढे चार बजे होंगे। आकाशमें कुछ थोडेसे बादल थे, पर सूरजको छिपा देनेके लिए काफी थे। सेठ रुस्तमजीके मकानका पैदल जानेपर कम-से-कम एक घंटेका रास्ता था। ज्योंही हम जहाजसे उतरे, कुछ लडकोंने हमें देख लिया। उनमें कोई बडी उम्रवाला तो था ही नहीं। आमतौरसे बंदरगाहपर जितने आदमी रहा करते हैं उतने ही आदमी दिखाई देते थे। मेरी जैसी पगडी पहननेवाला अकेला मैं ही था। इसमें लडकोंने मुझे तुरत पहचान लिया और 'गांधी' 'गांधी', 'इसको मारो,' 'घेरो' चिल्लाते हुए हमारी ओर बढ आए। कुछ लडके ढेले भी

फेकने लगे। कुछ अधेड उम्रवाले गोरे भी उनमे शामिल हो गए। धीरे-धीरे हल्ला बढा। मि० लॉटनने देखा कि पैदल जानेमे खतरा लेना है। अत उन्होने 'रिक्शा' बुलाया। 'रिक्शा'के मानी है आदमीके खीचनेकी छोटी-सी गाडी। मै तो कभी 'रिक्शा'मे बैठा ही न था, कारण कि जिस सवारी-को आदमी खीचता हो उसमे बैठनेसे मुझे सख्त नफरत थी। मगर आज मुझे जान पडा कि रिक्शामे बैठ जाना मेरा धर्म है। पर भगवान् जिसको बचाना चाहते हो वह गिरना चाहे तो भी नही गिर सकता, इसका तो मुझे अपने जीवनके पाच-सात कठिन प्रसगोमे प्रत्यक्ष अनुभव हो चुका है। मै नही गिरा, इसका तनिक भी यश मै नही ले सकता। रिक्शा खीचनेवाले हवशी ही होते है। छोकरो और बडी उम्रवाले गोरोने भी रिक्शावालेको धमकाया कि तुमने इस आदमीको रिक्शामे बैठाया तो हम तुम्हे पीटेगे और तुम्हारा रिक्शा भी तोड डालेगे। अत रिक्शावाला 'खा' अर्थात् ना कहकर चलता बना और मेरा रिक्शामे बैठना रह गया।

अब पैदल चलकर जानेके सिवा हमारे पास दूसरा रास्ता नही रहा। हमारे पीछे खासा मजमा जुट गया। ज्यो-ज्यो हम आगे बढते, मजमा भी बढता जाता था। मुख्य रास्ते वेस्ट स्ट्रीटमे पहुचनेपर तो छोटे-बडे सैकडो लोग उसमे शामिल हो गये। एक तगडे आदमीने मि० लॉटनको दोनो हाथोमे पकडकर मुझसे अलग कर दिया। अत. अब उनकी स्थिति ऐसी न रही कि मेरे पास पहुच सके। मुझपर गालियो, पत्थरो और जो कुछ भी उनके हाथमें आया उस सबकी वर्षा होने लगी। मेरी पगडी सिरसे गिरा दी गई। इतनेमे एक मोटे-तगडे आदमीने पहुचकर मुझको थप्पड जमाया और फिर लात भी मारी। मै चक्कर खाकर गिरनेवाला था कि इतनेमे रास्तेके पासके एक मकानके आगनकी रेलिंग मेरे

हाथमे आ गई । मैंने जरा दम लिया और चक्कर दूर होनेपर आगे बढा । जीता घर पहुचनेकी आशा लगभग छोड चुका था, पर इतना मुझे अच्छी तरह याद है कि उस वक्त भी मेरा दिल मारनेवालोका रत्ती भर भी दोष नही देखता था ।

इस तरह मै अपना रास्ता तै कर रहा था कि इतनेमे डर्बनके पुलिस सुपरिटेडेटकी पत्नी सामनेकी ओरसे आ निकली । हम एक-दूसरेको अच्छी तरह पहचानते थे । यह महिला बहादुर थी । यद्यपि आकाशमे बादल घिर रहे थे और सूरज भी डूबनेको था, फिर भी इस महिलाने अपनी छतरी मेरी रक्षाके लिए खोल दी और मेरी बगलमे होकर चलने लगी । स्त्रीका अपमान और वह भी डर्बनके बहुत पुराने और लोकप्रिय कप्तानकी पत्नीका यह गोरे नही कर सकते थे । उन्हे चोट भी नही पहुचा सकते थे । अत उनको बचाते हुए मुझपर जो मार पडती वह बहुत हल्की होती । इस बीच पुलिस सुपरिटेडेटको इस हमलेकी खबर मिली और उन्होने पुलिसका एक दस्ता भेज दिया, जिसने मुझको घेर लिया । हमारा रास्ता पुलिस चौकीकी बगलसे होकर जाता था । वहा पहुचे तो देखा कि पुलिस सुपरिटेडेट खडे हमारी राह देख रहे है । उन्होने मुझे चौकीमे ही चले जानेकी सलाह दी । मैंने उन्हे धन्यवाद दिया और उसमे आश्रय लेनेसे इनकार कर दिया । मैंने कहा कि मुझे तो अपने ठिकाने पर ही पहुचना है । मुझे डर्बनके लोगोकी न्यायवृत्ति और अपने सत्यपर विश्वास है । आपने जो मेरे रक्षार्थ पुलिस भेजी उसके लिए अहसानमद हू । उसके सिवा मिसेज अलेक्जेडरने भी मेरी रक्षा की है ।"

मै सही-सलामत रुस्तमजीके यहा पहुचा । वहा पहुचते-पहुचते लगभग शाम हो गई थी । 'कोर्लैड' के डाक्टर दाजी बरजोर रुस्तमजी सेठके यहा मौजूद थे । उन्होने मेरी चोटोका इलाज शुरू किया । चोटे देखी । वे अधिक नही थी ।

एक भीतरी वद मुहकी चोट वहुत दुख रही थी, पर अभी मुझे शाति पानेका अधिकार नही मिला था। रुस्तमजी सेठके घरके सामने हजारो आदमी जमा हो गए। रात हुई तो बहुत-से लफगे लोग भी उस मजमेमे मिल गए। उन लोगोने रुस्तमजी सेठको कहला भेजा कि गाधीको हमारे हवाले नही कर दोगे तो उसके साथ ही तुम्हे और तुम्हारी दुकानको भी जलाकर खाक कर देगे। रुस्तमजी ऐसे भारतीय न थे जो किसीके डरानेसे डर जाते। सुपरिटेडेट अलेक्जेडरको इसकी खबर मिली तो वह अपनी खुफिया पुलिसके साथ आकर चुपकेसे इस मजमेमे घुस गए। एक चौकी मगाकर वह उसके ऊपर खडे हो गए। यो लोगोसे वातचीत करनेके बहाने रुस्तमजीके मकानके दरवाजेपर कब्जा कर लिया, जिससे कोई उसको तोडकर घुस न सके। खुफिया पुलिसके आदमियोको उन्होने पहले ही मुनासिब जगहो पर रख दिया था। पहुचनेके साथ ही उन्होने अपने एक अहलकारको कह दिया था कि हिंदुस्तानीकी पोशाक पहन और चेहरा रगकर हिंदुस्तानी व्यापारीका भेष बना ले और मुझसे मिलकर कहे—"आप अपने मित्रकी, उनके मेहमानोकी, उनके मालकी और अपने बालबच्चोकी रक्षा चाहते हो तो हिंदुस्तानी सिपाहीका पहनावा पहनकर रुस्तमजीके गोदाममे निकलकर मजमेमेसे ही मेरे आदमीके साथ चुपकेसे निकल जाइए और पुलिस चौकीपर पहुच जाइए। गलीके मोडपर आपके लिए गाडी तैयार खडी है। आपको और दूसरोको बचानेका मेरे पास बस यही एक रास्ता है। मजमा इतना उत्तेजित है कि उसे रोक रखनेके लिए मेरे पास कोई साधन नही। आप जल्दी न करेगे तो यह मकान जमीदोज कर दिया जायगा। यही नही, जानमालका कितना नुकसान होगा इसका अदाजा भी मै नही कर सकता।"

मै स्थितिको तुरत समझ गया। मैने उसी क्षण सिपाहीकी पोशाक मागी और उसे पहनकर निकल गया और उक्त पुलिस कर्मचारीके साथ सही-सलामत चौकीपर पहुच गया। इस बीच श्री अलेक्जेंडर अवसरके अनुरूप गीतो और भाषणसे भीडको रिझा रहे थे। जब उन्हे यह इशारा मिल गया कि मै पुलिस चौकीमे पहुच गया तब उन्होने अपना सच्चा भाषण आरभ किया

"आप लोग क्या चाहते है ?"

"हम गाधीको चाहते है।"

"उसको क्या करना चाहते है ?"

"उसे हम जलाएगे।"

"उसने आपका क्या बिगाडा है ?"

"उसने हमारे बारेमे हिदुस्तानमे बहुतसी झूठी बाते कही है और नेटालमे हजारो हिदुस्तानियोको घुसा देना चाहता है।"

"पर वह बाहर न निकले तो क्या कीजिएगा ?"

"तो हम इस मकानमे आग लगा देगे।"

"इसमे तो उसके बाल-बच्चे है। दू ` स्त्री-पुरुष है। स्त्रियो और बच्चोको आगमे भूनते आपको शर्म नही आती ?"

"यह तो आपका दोष है। आप हमे लाचार करते है तो हम क्या करे ? हम तो और किसीको कष्ट देना नही चाहते। गाधीको सौप दीजिए। बस हमे और कुछ नही चाहिए। आप अपराधीको न सौपे और उसे पकडनेमे दूसरोको नुक-सान पहुचे तो इसका दोष हमारे सिर डालना कहाका न्याय है ?"

सुपरिटेडेटने हलकी हसी हसकर उन लोगोको यह खबर दी कि गाधी तो उन लोगोके बीचसे होकर सही-सलामत दूसरी जगह पहुच गया ! लोग खिलखिलाकर हस पडे और 'झूठ-झूठ' चिल्ला उठे।

सुपरिटेंडेंट बोले—"आप अपने बूढे कप्तानकी बातका विश्वास न करते हो तो जिन तीन या चार आदमियोको पसंद करें उनकी कमेटी चुन दें। दूसरे सब लोग यह वचन दें कि कोई मकानके अदर न घुसेगा और अगर कमेटी गाधीको घरके भीतर न पा सके तो सब लोग शात होकर घर लौट जाएगे। आप लोगोने जोशमें आकर पुलिसके अधिकारको आज नही माना, इसमे बदनामी पुलिसकी नही, आपकी ही है। इसीसे पुलिसने आपके साथ चाल चली। आपके शिकारको आपके बीचसे ही निकाल लेगई और आप हार गए, इसमे पुलिसको तो आप दोष दे ही नही सकते। जिस पुलिस को आपने ही नियुक्त किया है उसने अपने कर्तव्यका पालन किया है।"

यह सारी बातचीत सुपरिटेंडेंटने इतनी मिठास, इतने हास्य और इतनी दृढताके साथ की कि जो वचन वह माग रहे थे लोगोने दे दिया। कमेटी बनी। उसने पारसी रुस्तमजीके मकानका कोना-कोना छान डाला और लोगोसे कहा—"सुपरिटेंडेंटकी बात सच है। उसने हमे हरा दिया।" लोग निराश तो हुए, पर अपने वचनपर स्थिर रहे, कोई नुकसान नही किया और अपने-अपने घर चले गए। यह दिन १८९७ ई० की १३ वी जनवरीका था।

उसी दिन सवेरे ज्योंही मुसाफिरोंपर लगी हुई रोक हटी, डर्बनके एक अखबारका रिपोर्टर मेरे पास आया और मुझसे सारी बातें पूछ गया था। मुझपर लगाये गए इल्जामोंकी पूरी सफाई दे देना बहुत ही आसान था। मैंने मिसालें देकर दिखा दिया था कि मैंने तिलभर भी अत्युक्ति नहीं की है। जो कुछ मैंने किया है वह मेरा धर्म था। वह मैं न करूं तो मनुष्य कहलानेका भी अधिकारी न होऊंगा। यह सारी बातचीत उसमें पूरी-की-पूरी प्रकाशित हुई और [illegible]

यूरोपियनोने अपना दोष स्वीकार किया। अखबारोने नेटालकी परिस्थितिसे महानुभूति प्रकट की, पर साथ ही मेरे कार्यका पूरा समर्थन किया। इससे मेरी प्रतिष्ठा बढी और साथ-साथ हिंदुस्तानी कौमकी भी। गोरोपर यह बात साबित हो गई कि गरीब हिंदुस्तानी भी नामर्द नही हैं, और व्यापारी भी अपने व्यापारकी परवा किए बिना स्वाभिमान और स्वदेशके लिए लड सकते है।

इससे एक ओर यद्यपि जातिको दु ख सहन करना पडा और स्वय दादा अब्दुल्लाको भारी नुकसान उठाना पडा, फिर भी मै मानता हू कि इसके अतमे तो लाभ ही हुआ। जातिको अपनी शक्तिका कुछ अदाजा मिला और उसका आत्मविश्वास बढा। मै भी कुछ अधिक कामका बना, बहुमूल्य अनुभव प्राप्त किया। उस दिनका विचार करता हू तो देखता हू कि ईश्वर मुझे सत्याग्रहके लिए तैयार कर रहा था।

नेटालकी घटनाओका असर विलायतमे भी हुआ। उपनिवेश-सचिव श्री चेबरलेनने नेटालकी सरकारको तार दिया कि जिन लोगोने मुझपर हमला किया उनपर मुकदमा चलाया जाना चाहिए और मुझको न्याय मिलना चाहिए।

मि० एस्कब न्याय-विभागके प्रधान एटर्नी-जनरल थे। उन्होने मुझे बुलाया और मि० चेबरलेनके तारकी बात कही। मुझे जो चोट पहुची थी उसके लिए दु ख प्रकट किया और मै बच गया इसपर प्रसन्नता पकट की। उन्होने कहा—"मै आपको विश्वास दिलाता हू कि आपको या आपकी कौमके किसी आदमीको कष्ट पहुचे, यह मै तनिक भी नही चाहता था। आपको कष्ट पहुचनेका मुझे डर था, इसीसे रातमे जहाजसे उतरनेके लिए सदेसा भेजा, पर आपको मेरा सुझाव पसद नही आया। मि० लॉटनकी सलाह आपने मानी

इसके लिए मै आपको तनिक भी दोष नही देना चाहता। आपको जो ठीक जान पडे उसे करनेका आपको पूरा अधिकार था। मि० चेंबरलेनकी मांगके साथ नेटालकी सरकार पूरी तरह सहमत है। हम चाहते है कि अपराधियोको दड मिले। हमला करनेवालोमेसे आप किसीको पहचान सकते है?" मैने जवाब दिया—"मुमकिन है, एक-दो आदमियोको मै पहचान सकू, पर यह बात आगे बढे इसके पहले ही मुझे आपको यह बता देना चाहिए कि मैने अपने दिलमे यह निश्चय कर रखा है कि अपने ऊपर हुए हमलेके बारेमे मै किसीके खिलाफ अदालतमे फरियाद नही करूँगा। हमला करनेवालोका तो मै कोई दोष भी नही देखता। उन्हे जो कुछ भी खबर मिली वह अपने नेताओसे मिली। उसकी सचाईकी जाच करने वह थोडे बैठ सकते है? मेरे बारेमे उन्होने जो कुछ सुना वह सही हो तो वे भडक उठे और आवेशमे आकर जो न करना चाहिए वह कर बैठे, इसके लिए मै उन्हे दोष नही दे सकता। उत्तेजित जनसमूह इसी रीतिसे न्याय करता आया है। अगर इस विषयमे किसीका दोष है तो इस कमेटीका है जो इस मामलेमे बनाई गई थी, और खुद आपका है और इसलिए नेटालकी सरकारका है। रायटरने चाहे जैसे तार भेजे हो, पर जब आप जानते थे कि मै खुद यहा आ रहा हू तब आपका और कमेटीका फर्ज था कि जो अनुमान आपने किए उनके बारेमे पहले मुझसे पूछते और मेरा जवाब सुनते, फिर जो आपको मुनासिब मालूम होता है वह करते। अब मुझपर जो हमला हुआ उसके लिए मै आपको या कमेटीपर [illegible], ऐसा तो है ही नही और यह मुमकिन हो तो भी [illegible] ही [illegible] नही है। नेटालके गोरोके [illegible] आगे [illegible] और [illegible] ।

यह राजनैतिक विषय हुआ। मुझे भी इसी मैदानमे आपसे लडना और आपको और दूसरे गोरोको यह दिखाना है कि भारतीय राष्ट्र ब्रिटिश साम्राज्यके एक बडे भागके रूपमे, गोरोको नुकसान पहुचाए बिना, केवल अपने सम्मान और अधिकारकी रक्षा करना चाहता है।"

मि० एस्कव बोले—"आपने जो कुछ कहा वह मैने समझ लिया और वह मुझे पसद भी आया। आपसे यह सुननेकी मै आशा नही रखता था कि आप मुकदमा चलाना नही चाहते, और आप मुकदमा चलाना चाहते तो मै जरा भी नाखुश न होता, पर जब आपने फरियाद न करनेका विचार प्रकट कर दिया है तब मुझे यह कहनेमे हिचक नही कि आपने उचित निश्चय किया है। इतना ही नही, अपने इस सयमसे आप अपनी कौमकी विशेष सेवा करेगे। साथ ही मुझे यह भी कबूल करना चाहिए कि अपने इस निश्चयसे आप नेटाल सरकारको विषम स्थितिसे बचा लेगे। आप चाहे तो हम धर-पकड वगैरह करेगे, पर आपको यह बतानेकी जरूरत नही है कि यह सब करनेमे गोरोका क्रोध फिर उमडेगा, अनेक प्रकारकी टीकाए होगी और ये बाते किसी भी सरकारको नही रुच सकती। पर अगर आपने अतिम निश्चय कर लिया हो तो आप अपना विचार जतानेवाली एक चिट्ठी मुझको लिख दे। हमारी बातचीतका खुलासा भेजकर ही हम मि० चेबरलेनके सामने अपनी सरकारका बचाव नही कर सकते। मुझे तो आपके पत्रके भावार्थका ही तार करना होगा। पर मै यह नही कहता कि यह चिट्ठी आप मुझे अभी लिखकर देदे। अपने मित्रोके साथ आप मशविरा करले। मि० लॉटनकी भी सलाह लेले। उसके बाद भी अगर आप अपनी रायपर कायम रहे तो मुझे लिखे। पर इतना मुझे कह देना चाहिए कि अपनी चिट्ठीमे फरियाद न करनेकी जिम्मेदारी आपको साफ तौरपर अपने

ही ऊपर लेनी होगी। तभी मै उसका उपयोग कर सकूगा।" मैंने कहा—"इस बारेमे मैंने किसीके साथ मशविरा नही किया है। आपने इस बातके लिए मुझे बुलाया है, यह भी मै नही जानता था। और इस विषयमे किसीसे सलाह-मशविरा करनेकी इच्छा भी नही है। जब मि० लॉटनके साथ चल देनेका निश्चय किया तभी अपने दिलमे तै कर लिया था कि मुझे कोई चोट पहुचे तो इसके लिए दिलमे बुरा नही मानूगा। अत पीछे फरियाद करनेका तो सवाल ही नहीं हो सकता। मेरे लिए तो यह धार्मिक प्रश्न है और जैसा कि आप कहते है, मै यह मानता भी हू कि अपने इस सयमसे मै अपनी कौमकी सेवा करूँगा। यही नही, खुद मेरा भी इससे लाभ ही है। इसलिए मै अपने ऊपर सारी जिम्मेदारी लेकर यही आपको पत्र लिख देना चाहता हू।" और मैंने वही उनसे सादा कागज लेकर चिट्ठी लिख दी।

: ८ :

भारतीयोंने क्या किया ?—२

विलायतसे संबंध

पिछले प्रकरणोंमें पाठकोंने देखा होगा कि भारतीय समाजने अपनी स्थिति सुधारनेके लिए विशेष और सामान्य रूपसे कितना प्रयत्न किया और उसने अपनी प्रतिष्ठा बढाई। दक्षिण अफ्रीकामें जैसे उसने अपने सभी साधनोंका उपयोग करनेके लिए यथाशक्ति प्रयत्न किया उसी तरह हिंदुस्तान और विलायतसे जितनी मदद मिल सकती थी उतनी पानेकी कोशिश भी की। हिन्दुस्तानके संबंधमें तो मैं पहले ही लिख चुका हूं। विलायतमें [illegible] किया

गया, अब इसका उल्लेख आवश्यक है। कांग्रेसको ब्रिटिश कमेटीके साथ तो संबंध जोडना ही चाहिए था। इसलिए हर हफ्ते हिंदके दादा (दादाभाई नवरोजी) और कमेटीके अध्यक्ष सर विलियम वेडरबर्नको पूरे विवरणकी चिट्ठी लिखी जाती और जब-जब आवेदन-पत्रकी नकल वगैरह भेजनेकी जरूरत होती तब-तब डाक-खर्च वगैरह और कमेटीके साधारण खर्चमें सहायताके रूपमें कम-से-कम १० पौंड भेज दिए जाते।

यहीं दादाभाईका एक पवित्र संस्मरण लिख दूं। वह इस कमेटीके अध्यक्ष न थे, फिर भी हमें यही जान पडा कि रुपये उन्हींकी मार्फत भेजना हमें शोभा देगा, वह भले ही उन्हें हमारी ओरसे अध्यक्षको दे दिया करें। पर पहली ही बार जो रकम हमने भेजी, दादाभाईने उसे लौटा दिया और लिखा कि रुपये भेजने आदि कमेटीसे संबंध रखनेवाले काम आपको सर विलियम वेडरबर्नकी मार्फत ही करने चाहिए। मेरी अपनी (दादाभाईकी) मदद तो रहेगी ही। पर कमेटीकी प्रतिष्ठा सर विलियम वेडरबर्नकी मार्फत काम लेनेमें ही बढेगी। मैंने यह भी देखा कि दादाभाई इतने बूढे होनेपर भी अपने पत्रव्यवहारमें बहुत ही नियमित थे। उन्हें कुछ लिखना न हो तो भी पत्रकी पहुंच तो लौटती डाकसे आ ही जाती और उसमें आश्वासनके दो शब्द तो होते ही। ऐसी चिट्ठियां भी खुद ही लिखते और इन पहुंचवाली चिट्ठियोंकी नकल भी अपनी टिशू पेपर बुकमें छाप लेते।

एक पिछले प्रकरणमें मैं यह भी दिखा चुका हूं कि यद्यपि कांग्रेसका नाम आदि हमने रखा था, पर अपने मसलेको एक पक्षका प्रश्न बना देनेकी बात हमने कभी सोची ही नहीं थी। इससे दादाभाईकी जानकारीमें दूसरे पक्षोंके साथ भी हमारा पत्र-व्यवहार चलता रहता। इसमें दो आदमी मुख्य थे एक सर मंचेरजी भावनगरी और दूसरे सर विलियम विल्सन हंटर। सर

मंचेरजी भावनगरी उन दिनो पार्लमेटके सदस्य थे। इनको अच्छी मदद मिलती और वह सदा उपयोगी सूचनाए भी दिया करते, पर दक्षिण अफ्रीकाके प्रश्नके महत्त्वको भारतीयोसे भी पहले समझने और कीमती मदद देनेवाले थे सर विलियम विलसन हटर। ये 'टाइम्स'के भारतीय विभागके सम्पादक थे। उनको जब हमारा पहला पत्र मिला तभीसे वह दक्षिण अफ्रीकाकी स्थितिका सच्चा रूप ब्रिटिश जनताके सामने रखने लगे और जहा-जहा ठीक जान पडा वहा-वहा निजी पत्र भी लिखे। जब कोई जरूरी मसला पेश होता तब उनकी डाक लगभग हर हफ्ते आती। अपने पहले ही उत्तरमे उन्होने लिखा—"आपने जो स्थिति बताई है उसे पढकर मुझे दुःख हुआ है। अपना काम आप विनयसे, शातिसे और अत्युक्तिसे बचते हुए कर रहे है। मेरी हमदर्दी इस मामलेमे पूरे तौरपर आपकी तरफ है और आपको न्याय मिले इसके लिए जो कुछ मुझसे हो सके वह निजी और सार्वजनिक रूपमे भी करना चाहता हू। मुझे निश्चय है कि इस मामलेमे हम एक इच भी पीछे नही हट सकते। आपकी माग ऐसी है कि निष्पक्ष मनुष्य उसमे काटछाट करनेकी बात कह ही नही सकता।" लगभग यही शब्द 'टाइम्स'मे इस विषयपर उन्होने जो पहला लेख लिखा उसमे भी लिखे। यही नीति उन्होने अततक कायम रखी। लेडी हटरने एक पत्रमे लिखा था कि मृत्युके आखिरी दिनोमे भी वह भारतीय प्रश्नपर एक लेखमाला लिखनेकी बात सोच रहे थे और उसका खाका तैयार कर लिया था।

[illegible]

रहनेके दिनोमे वह स्व० सर विलियम हटर, सर मचेरजी भावनगरी और काग्रेसकी ब्रिटिश कमेटीके साथ बराबर मिलते रहते थे। वैसेही वे भारतीय सिविल सर्विसके पेंशनर कर्मचारियो, भारतीय सचिवके दफ्तर और उपनिवेश विभाग आदिसे भी सम्पर्क रखते थे। इस प्रकार एक भी दिशा, जहा हमारी पहुच हो सकती थी, कोशिशसे खाली नही रखी। इस सबका फल इतना तो पक्के तौरसे हुआ कि प्रवासी भारतीयोको स्थिति बडी सरकारके लिए एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न बन गई और उसका भला-बुरा असर दूसरे उपनिवेशोपर भी पडा। यानी जहा-जहा हिंदुस्तानी बसते थे वहा-वहा हिंदुस्तानी और गोरे दोनो जाग्रत हो गए।

: ९ :

बोअर-युद्ध

जिन पाठकोने पिछले प्रकरणोको ध्यानपूर्वक पढा होगा उन्हे इसकी कल्पना हो गई होगी कि बोअर-युद्धके समय दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोकी क्या स्थिति थी। तबतक हुए प्रयत्नोकी चर्चा भी की जा चुकी है।

१८९९ ई० मे डाक्टर जेमिसनने, खानोके मालिकोके साथ हुए गुप्त परामर्शके अनुसार, जोहान्सबर्गपर धावा किया। दोनोकी आशा तो यह थी कि जोहान्सबर्गपर कब्जा हो जानेके बाद ही बोअर सरकारको उनके धावेकी खबर होगी, पर यह हिसाब लगानेमे डा० जेमिसन और उनके दोस्तोने भारी भूल की। उनका दूसरा अदाजा यह था कि उनकी गुप्त योजना प्रकट हो भी गई तो रोडेशियामे सिखाये हुए निशानबाजोके सामने रण-शिक्षासे कोरे बोअर किसान क्या कर

सकेंगे, उन्होंने यह भी सोच रखा था कि जोहान्सबर्गकी आबादीका बहुत बड़ा भाग तो हमारा स्वागत ही करेगा। पर इस भले डाक्टरका यह हिसाब भी गलत रहा। राष्ट्रपति क्रूगरको सारी योजनाकी खबर वक्तसे मिल गई थी। उन्होंने अतिशय शांति और कुशलताके साथ गुप्त रीतिसे डाक्टर जेमिसनका सामना करनेकी तैयारी कर ली और साथ-साथ जो लोग साजिशमे उनके साथी थे उन्हे गिरफ्तार कर लेनेकी तैयारी भी कर रखी। अत डाक्टर जेमिसन जोहान्सबर्गके पास पहुच पाए इसके पहले ही बोअर सेनाने गोलियोंकी बौछारसे उनका स्वागत किया। इस सेनाके सामने डाक्टर जेमिसनका जत्था टिक नही सकता था। जोहान्सबर्गमे कोई बगावत न कर सके, इसका भी पूरा प्रबंध कर लिया गया था। इससे वहां किसीने सिर उठानेका साहस नही किया। राष्ट्रपति क्रूगरकी सरगर्मीसे जोहान्सबर्गके करोड़पति अवाक् रह गये। उनकी बढिया तैयारी कर रखनेका अति सुंदर फल यह हुआ कि इस संकटका सामना करनेमे सरकारका कम-से-कम पैसा खर्च हुआ और जानका नुकसान भी कम-से-कम हुआ।

डा० जेमिसन और उनके दोस्त सोनेकी खानोंके मालिक पकड़े गए। उनपर तुरत मुकदमा चलाया गया। कितनोंको फांसीकी सजा हुई। उनमें अधिकांश तो करोड़पति ही थे। बेचारी सरकार इसमें क्या कर सकती थी? दिन-दहाड़ेका हमला था। राष्ट्रपति क्रूगरका महत्त्व एकाएक बढ़ गया। उप-निवेश-सचिव मि० चेम्बरलेनने धन्यवाद-सूचक तार भेजा और राष्ट्रपति क्रूगरके कृपाभावको [illegible] उनसे गुनहगारोंके लिए [illegible] मांगी। राष्ट्रपति क्रूगर [illegible] [illegible] जानते थे। दक्षिण अफ्रीकामें [illegible] [illegible] है [illegible]।

डाक्टर जेमिसन और उनके मित्रोकी साजिश उनकी गणनाके अनुसार तो सुयोजित वस्तु थी, पर राष्ट्रपति क्रूगरके हिसावसे वह वालवुद्धिका कार्य थी। इसलिए उन्होने मि० चेवरलेनकी विनती स्वीकार कर ली और किसीको भी फासीकी सजा नही दी। इतना ही नही, सभी अपराधियोको क्षमा देकर छोड दिया!

पर उछला हुआ अन्न कवतक पेटमे रह सकता है? राष्ट्रपति क्रूगर भी जानते थे कि डा० जेमिसनका हमला तो गभीर रोगका छोटासा चिन्ह-मात्र था। जोहान्सवर्गके करोडपति अपनी वेइज्जतीको किसी तरह भी धो डालनेका प्रयत्न न करे, यह हो नही सकता था। फिर जिन सुधारोके लिए डा० जेमिसनके हमलेकी योजना की गई थी उनमेसे तो एक भी नही हो पाया था। इसलिए करोडपति मुह वद किये वैठे रहे यह मुमकिन नही था। उनकी मागोके साथ दक्षिण अफ्रीकामे व्रिटिश साम्राज्यके प्रधान प्रतिनिधि (हाई कमिश्नर) लार्ड मिल्नरकी पूरी हमदर्दी थी। वैसे ही मि० चेवरलेनने भी ट्रासवालके विद्रोहियोके प्रति राष्ट्रपति क्रूगरकी महती उदारताकी सराहना करनेके साथ ही सुधार करनेकी आवश्यकताकी ओर भी उनका ध्यान खीचा था। सभी मानते थे कि विना तलवार उठाये यह झगडा मिटनेवाला नही है। खानोके मालिकोकी मागे ऐसी थी कि उनका अन्तिम परिणाम ट्रासवालमे वोअरोकी प्रधानताका नष्ट हो जाना ही हो सकता था। दोनो पक्ष समझते थे कि आखिरी नतीजा लडाई ही है। इसलिए दोनो उसकी तैयारी कर रहे थे। इस समयका शब्द-युद्ध देखने लायक था। राष्ट्रपति क्रूगर वाहरसे अधिक हथियार मगाते तो व्रिटिश एजट उन्हे चेतावनी देता कि आत्मरक्षाके लिए अग्रेज सरकारको भी दक्षिण अफ्रीकामे थोडी सेना लानी होगी। जव व्रिटिश सेना दक्षिण

अफ्रीकामे दाखिल होती तो राष्ट्रपति क्रूगरकी ओरसे ताना मारा जाता और ज्यादा तैयारी की जाती। यो एक पक्ष दूसरेपर दोष लगाता और दोनो युद्धकी तैयारी करते जाते।

राष्ट्रपति क्रूगर जब पूरी तैयारी कर चुके तब उन्होने देखा कि अब बैठे रहना तो अपनी गरदन खुद दुश्मनके हाथमे दे देना है। ब्रिटिश साम्राज्यके पास धन-जनका अक्षय्य भडार है। वह लबे अरसेतक धीरे-धीरे तैयारी करते और राष्ट्रपति क्रूगरको समझाते-बुझाते न्यायकी विनती करते हुए वक्त गुजार सकता है और यो दुनियाको दिखा सकता है कि जब राष्ट्रपति क्रूगर खान मालिकोको न्याय दे ही नही रहे है तब हमे निरुपाय होकर युद्ध करना पड रहा है। यो कहकर वह ऐसी जबर्दस्त तैयारीके साथ युद्ध करेगा कि बोअर उसके सामने टिक ही नही सकेगे और उन्हे दीन बनकर उसकी मागे मजूर करनी पडेगी। जिस जातिके १८ से लगाकर साठ सालतकके सारे पुरुष कुशल योद्धा हो, जिसकी स्त्रिया भी चाहे तो तलवारके हाथ दिखा सकती हो, जिस जातिमे स्वतत्रता धार्मिक सिद्धान्त माना जाता हो, वह जाति चक्रवर्ती राजाके बलके सामने भी दैन्य ग्रहण नही करेगी। बोअर जनता ऐसी ही वीर थी।

आरेंज फ्री स्टेटके साथ राष्ट्रपति क्रूगरने पहले ही [illegible] कर ली थी। इन दोनो बोअर राज्योकी एक ही [illegible] थी। राष्ट्रपति क्रूगर [illegible] ज्यादा [illegible] था कि [illegible]

[illegible]

भी जमादी। इसका नतीजा दूसरा कुछ हो ही नही सकता था। ब्रिटिश साम्राज्य जैसा चक्रवर्त्ती राज्य धमकीके सामने कब झुक सकता है? 'अल्टिमेटम'की अवधि पूरी हुई और बोअर सेना विद्युद्वेगसे आगे बढी। उसने लेडी स्मिथ, किंबरली और मेफेकिंगका घेरा डाल दिया। इस प्रकार १८९९ मे यह महायुद्ध आरभ हुआ। पाठक जानते ही है कि इस युद्धके कारणोमे यानी ब्रिटिश मागोमे बोअर राज्योमे भारतीयोकी परिस्थिति, और उनके साथ होनेवाला व्यवहार भी शामिल था।

इस अवसरपर दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोका कर्तव्य क्या है, यह महत्वपूर्ण प्रश्न उनके सामने उपस्थित हुआ। बोअर लोगोमेसे तो सारा पुरुषवर्ग लडाईपर चला गया। वकीलोने वकालत छोडी, किसानोने अपने खेत छोडे, व्यापारियोने अपनी कोठियो-दुकानोपर ताले डाल दिए, नौकरी करनेवालोने नौकरी छोडी। अग्रेजोकी तरफसे बोअरोके बराबर तो नही, फिर भी केप कॉलोनी, नेटाल और रोडेशियामे असैनिक वर्गके बहुसख्यक लोग स्वयसेवक बने। बहुतसे बडे अग्रेज वकीलो और व्यापारियोने उनमे नाम लिखाया। जिस अदालतमे मै वकालत करता था उसमे भी अब बहुत ही थोडे वकील दिखाई दिये। बडे वकीलोमेसे तो अधिकाश लडाईके काममे लग गये थे। हिन्दुस्तानियो पर जो तुहमते लगाई जाती है उनमेसे एक यह है, "ये लोग दक्षिण अफ्रीकामे केवल पैसा कमाने और जोडनेके लिए आते है। हम (अग्रेजो) पर वे निरे भार रूप है और जैसे कीडा काठके भीतर बसकर उसको कुरेदकर खोखला कर देता है वैसे ही ये लोग हमारा कलेजा कुरेदकर खा जानेके लिए ही आये है। इस देशपर हमला हो, हमारा घरबार लुट जानेका वक्त आजाय तो ये हमारे कुछ भी काम आनेवाले नही। हमे लुटेरोसे अपना ही बचाव नही करना होगा, इन लोगोकी रक्षा भी करनी होगी।"

इस आरोपपर भी हम सभी भारतीयोंने विचार किया। हम सबको जान पडा कि यह आरोप मिथ्या, निराधार है। इसे सिद्ध करनेका यह बहुत बढिया मौका है। पर दूसरी ओरसे नीचे लिखी बाते भी सोचनी पडी

"हमे तो अग्रेज और बोअर दोनो एकसा सताते है। ट्रासवालमे दुख हो और नेटाल, केप कॉलोनीमे न हो, सो बात नही है। कोई अतर है तो केवल मात्राका। फिर हमारी स्थिति तो गुलाम कौमकी-सी कही जाती है। हम जानते है कि बोअर जैसी मुट्ठीभर आदमियोकी कौम अपने अस्तित्वके लिए लड रही है। इस दशामे भी हम उसका विनाश होनेमे सहायक क्यो हो ? अतमे व्यवहारकी दृष्टिसे देखे तो कोई यह कहनेका साहस नही कर सकता कि बोअर इस लडाईमे हार जाएंगे। वह जीत गए तो हमसे बदला चुकानेमे कब चूकनेवाले है ?"

इस दलीलको पेश करनेवाला हममेसे एक सबल पक्ष था। मै खुद भी इस दलीलको समझता और उसको मनासिब वजन भी देता था। फिर भी वह मुझे ठीक नही लगी और उसके भीतर भरे हुए अंदेशेका उत्तर मैने अपने आपको और कौमको इस प्रकार दिया

"दक्षिण अफ्रीकामें हमारी हस्ती महज ब्रिटिश प्रजाकी हैसियतसे ही है। हरएक अर्जीमें हमने ब्रिटिश प्रजाकी हैसियतसे ही हक मांगे है। ब्रिटिश प्रजा होनेमें हमने गौरव माना है, या औरोंको, अपने शासकोको और दुनियाको यह समझाया है कि इसमें हमारा गौरव है। [illegible] भी हमारे हकोंकी रक्षा [illegible] की है कि हम ब्रिटिश [illegible] और [illegible] [illegible]

तरह दूरसे तमाशा देखते रहे तो यह हमारे मनुष्यत्वको शोभा नही देगा। यही नही, यह अपने कष्टको और बढा लेना भी होगा। जिस आरोपको हम मिथ्या मानते है उसको झूठा साबित कर देनेका हमें अनायास अवसर मिला है। इस अवसरको खो देना अपने हाथो ही उस इल्जामकी सचाईका सबूत पेश कर देना होगा। फिर हमारे ऊपर अधिक दुख आए और अग्रेज और ज्यादा ताना मारे तो यह अचरज-की बात न होगी। यह तो हमारा ही अपराध माना जायगा। अग्रेजोके सारे आरोप आधार-रहित है, उनमे दलीलके लायक भी दम नही है, यह कहना अपने आपको ठगने जैसा है। यह सही है कि ब्रिटिश साम्राज्यमे हमारी हैसियत गुलाम की-सी है, पर अबतक हमारा व्यवहार यही रहा है कि साम्राज्यमे रहते हुए गुलामीसे छूटनेकी कोशिश करते रहे। हिदुस्तानके सभी नेता इसी नीतिका अनुसरण कर रहे है। हम भी यही करते रहे है। अगर हम चाहते हो कि ब्रिटिश साम्राज्यके अग बने रहकर ही अपनी स्वाधीनता प्राप्त करे और उन्नति करे तो इस वक्त लडाईमे तन-मन-धनसे अग्रेजो-की मदद करके वैसा करनेका यह सुनहला मौका है। वोअरोका पक्ष न्यायका पक्ष है, यह बात अधिकाशमे स्वीकार की जा सकती है, पर किसी राज्यतत्रके अदर रहकर प्रजावर्गका प्रत्येक जन हर मामलेमे अपनी निजकी रायपर अमल नही कर सकता। राज्याधिकारी जितने काम करे सब ठीक ही हो, यह नही होता। फिर भी प्रजावर्ग जबतक शासन-विशेषको स्वीकार करता है तबतक उसके कार्योके अनुकूल होना और उनमें सहायता करना उसका स्पष्ट धर्म है।

"फिर प्रजाका कोई वर्ग धार्मिक दृष्टिसे राज्यके किसी कार्यको अनीतिमय मानता हो तो उसका फर्ज है कि उस कार्यमे विघ्न डालने या सहायता करनेके पहले राज्यको उस

अधीनिसे बचानेकी कोशिश पूरे तौरसे और जानकी जोखिम उठाकर भी करें। हमने ऐसा कुछ नहीं किया। ऐसा धर्म हमारे सामने उपस्थित भी नहीं है और न हममेंसे किसीने यह कहा या माना है कि ऐसे सार्वजनिक और व्यापक कारणसे हम इस लड़ाईमें शामिल होना नहीं चाहते। अतः प्रजारूपमें हमारा सामान्य धर्म तो यही है कि लड़ाईके गुण-दोषका विचार न कर जब वह हो ही रही है तो उसमें यथाशक्ति सहायता करें। अतमें यह कहना या मानना कि बोअर राज्योंकी जीत होनेपर—वे न जीतेंगे यह माननेके लिए कोई भी कारण नहीं है—हम चूल्हेसे निकलकर भाड़में गिरेंगे और पीछे वे मनमाना वैर चुकाएंगे, वीर बोअर-जाति और खुद अपने साथ भी अन्याय करना है। यह बात तो महज हमारी नामर्दीकी निशानी गिनी जायगी। ऐसा सोचना तक अपनी वफादारीको बट्टा लगाना होगा। कोई अंग्रेज क्या क्षणभरके लिए भी यह सोच सकता है कि अंग्रेज हार गए तो मेरी अपनी क्या दशा होगी? लड़ाईके मैदानमें उतरनेवाला कोई भी आदमी अपनी मनुष्यता गवाए बिना ऐसी दलील कर ही नहीं सकता।"

यह दलील मैंने १८९९ में सामने रखी थी और आज भी उसमें मुझे रद्दोबदलकी गुंजाइश नहीं दिखाई देती। अर्थात् ब्रिटिश साम्राज्यके प्रति जो मोह उस समय मेरे मनमें था, उस साम्राज्यके अधीन स्वराज्य प्राप्त करनेकी जो आशा उस समय मैंने बांधी थी वह मोह और वह आशा आज भी मेरे मनमें बनी होती तो मैं अक्षरशः यही दलील दक्षिण अफ्रीकामें और वैसी परिस्थिति-में आज भी पेश करता। इस दलीलका [illegible] [illegible] दलीलें [illegible] मैंने दक्षिण अफ्रीकामें सुनीं और उसके बाद [illegible] भी सुनीं। फिर भी अपने [illegible]

कोई भी कारण मैं नही देख सका। मैं जानता हू कि मेरे आजके विचारोका प्रस्तुत विषयके साथ कुछ भी सबध नही, पर ऊपरका भेद जता देनेके लिए दो सबल कारण है। एक तो यह कि यह पुस्तक उतावलीसे हाथमे लेनेवाला इसे धीरजके साथ और ध्यानपूर्वक पढेगा, यह आशा रखनेका मुझे कोई हक नही। ऐसे पाठकको मेरी आजकलकी सरगर्मीके साथ उपर्युक्त विचारोका मेल बैठाना कठिन होगा। दूसरा कारण यह है कि इस विचार-श्रेणीके अन्दर भी सत्यका ही आग्रह है। जैसा अन्तरमे है वैसा ही दिखाना और तदनुसार आचरण करना धर्माचरणकी आखिरी नही, पहली सीढी है। धर्मकी इमारत इस नीवके बिना खडी करना असभव है।

अब हम पिछले इतिहासकी ओर लौटे।

मेरी दलील बहुतोको पसद आई। मै पाठकोसे यह मनवाना नही चाहता कि यह दलील अकेले मेरी ही थी। फिर यह दलील पेश की जानेके पहले भी लडाईमे साथ देनेका विचार रखनेवाले बहुतेरे हिंदुस्तानी थे ही, पर अब व्यावहारिक प्रश्न यह उपस्थित हुआ कि युद्धके इस नक्कारखानेमे हिंदुस्तानी तूतीकी आवाज कौन सुनेगा? उसकी क्या गिनती होगी? हथियार तो हममेसे किसीने कभी हाथमे लिया ही नही था। युद्धके बिना हथियारवाले काम करनेके लिए भी तालीम तो मिलनी ही चाहिए। यहा तो एक तालपर कूच करना भी हममेसे किसीको नही आता था। सेनाके साथ लबी मजिले करना, अपना सामान खुद लादकर चलना, यह भी हमसे कैसे होगा? फिर गोरे हम सबको कुली ही समझेगे। अपमान भी करेगे, तिरस्कारकी दृष्टिसे देखेगे। यह सब कैसे सहन होगा? हमने फौजमे भरती होनेकी माग की तो इस मागको मजूर कैसे करायेगे? अन्तमे हम सब इस

निश्चयपर पहुंचे कि इस मांगको मंजूर करानेके लिए जोरदार कोशिश करें। काम कामको सिखाता है। इच्छा होगी तो शक्ति ईश्वर देगा ही। सौंपा हुआ काम कैसे होगा, इसकी चिंता छोड़ दें। युद्ध-कार्यकी जितनी शिक्षा मिल सके उतनी ले लें और एक बार सेवा-धर्म स्वीकार करनेका निश्चय कर ले तो फिर मान-अपमान के विचारको दूर रखें। अपमान हो तो उसे सहकर भी सेवा करते रहें।

अपनी मांगको मंजूर करानेमें हमें बेहद कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। उनका इतिहास रोचक है, पर उसे देनेका यह स्थान नहीं। इसलिए इतना ही कह देना काफी होगा कि हममेंसे मुख्य जनोंने घायलों और रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषा करनेकी शिक्षा प्राप्त की, अपनी शारीरिक स्थितिके विषयमें डाक्टरका सार्टिफिकेट हासिल किया और लड़ाईपर जानेकी मांग सरकारके पास भेज दी। इस पत्र और मांगको मंजूर करनेके लिए उसमें जो आग्रह दिखाया गया था उसका बहुत अच्छा असर हुआ। पत्रके उत्तरमें सरकारने हमारा उपकार माना, पर उस वक्त हमारी मांग मंजूर करनेसे इनकार किया। इस बीच बोअरोंका बल बढ़ता गया। उनका हमला [illegible] बाढ़की तरह हुआ और [illegible]

[illegible]

गिरमिटियोको भी इसमे शामिल कर लेना वाछनीय है। इस वक्त तो सरकारको जितने भी आदमी मिल सके उतने दरकार थे। इससे सब कोठियोमे भी निमत्रण भेजे गये। फलत लगभग ११०० भारतीयोका शानदार विशाल दस्ता डर्बनसे रवाना हुआ। उसके प्रस्थानके समय श्री एस्कबने, जिनके नामसे पाठक परिचित ही है और जो नेटालके गोरे स्वय-सेवकोके महानायक थे, हमे धन्यवाद और आशीर्वाद दिया।

अग्रेजी अखबारोको यह सब चमत्कार-सा लगा। हिंदुस्तानी युद्धमे कुछ भी मदद देगे इसकी उन्हे आशा ही नही थी। एक अग्रेजने अपने एक प्रमुख पत्रमे एक स्तुतिकाव्य लिखा, जिसके टेककी पक्तिका अर्थ यह है, "अन्तत हम सभी एक ही साम्राज्यके बच्चे है।"

इस दस्तेमे ३०० से ४०० तक गिरमिट-मुक्त हिंदुस्तानी थे जो स्वतत्र भारतीयोकी कोशिशसे इकट्ठा हुए थे। इनमेसे ३७ मुखिया माने जाते थे। इन्ही लोगोके हस्ताक्षरसे सरकारके पास प्रस्ताव भेजा गया था और दूसरोको इकट्ठा करनेवाले भी यही थे। नेताओमे बैरिस्टर, क्लर्क, मुनीम आदि थे। बाकीके लोगोमे कारीगर, राज, बढई और मामूली मजदूर वगैरह थे। इनमे हिंदू, मुसलमान, मद्रासी, उत्तर भारत वाले इस प्रकार सभी वर्गोके लोग थे। व्यापारी वर्गमेसे, कह सकते है कि एक भी आदमी नही था, पर व्यापारियोने अपना हिस्सा पैसेके रूपमे दिया और काफी दिया।

इतने बडे दस्तेको जो फौजी भत्ता मिलता है उसके अतिरिक्त दूसरी जरूरते भी होती है और वे पूरी हो जाय तो इस कठिन जीवनमे कुछ राहत मिल जाती है। ऐसी राहत देनेवाली चीजे जुटानेका भार व्यापारी वर्गने अपने सिर लिया। इसके साथ-साथ जिन घायलोकी हमे सेवा करनी पडती थी उनके लिए भी मिठाई, बीडी-सिगरेट आदि देनेमे

उन्होने अच्छी मदद की। हमारा पडाव जब किसी नगरके पास होता तो वहाके व्यापारी ऐसी मदद देनेमे पूरा हिस्सा लेते थे।

जो गिरमिटिए हमारे दस्तेमे शामिल हुए थे उनके लिए उनकी अपनी कोठियोसे अग्रेज नायक भेजे गए थे; पर काम तो सबका एक ही था। सबको साथ ही रहना भी होता था। ये गिरमिटिए हमे देखकर बहुत खुश हुए और एक पूरे दस्तेकी व्यवस्था सहज ही हमारे हाथमे आ गई। इससे यह सारा दस्ता हिंदुस्तानी दस्ता ही कहा गया और उसके कामका यश भी भारतीय जनताको ही मिला। सच पूछिये तो गिरमिटियोके उसमे शामिल होनेका यश भारतीय जनता नही ले सकती थी, उनके अधिकारी तो कोठीवाले ही थे। पर इतना सही है कि दस्ते सगठित हो जानेके बाद उसकी सुव्यवस्थाका यश स्वतत्र भारतीय अर्थात् भारतीय जनता ही ले सकती थी और इसका स्वीकार जनरल बूलरने अपने खरीतोमे किया है।

हमे घायलो और पीडितोकी सेवा-शुश्रूषाकी शिक्षा देने-वाले डाक्टर बूथ भी मेडिकल सार्जेण्टके रूपमे हमारे दलके साथ थे। वे भले पादरी थे और भारतीय ईसाइयोमे काम करते हुए भी सबके साथ हिल-मिल रहते थे। ऊपर जिन [illegible] [illegible] मैने [illegible] लिखा है उनमे [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

रणक्षेत्रमे जो सिपाही घायल हो उन्हे सेनाके साथ रहनेवाला स्थायी सेवादल (ऐम्ब्युलेस कोर) उठाकर फौजके पीछे, तोप-बदूककी मारके बाहर पहुचा दे। गोरोका और हमारा तात्कालिक सेवादल सगठित करनेका कारण यह था कि लेडी स्मिथमे घिरे हुए जनरल व्हाइटको छुडानेके लिए जनरल बूलर महाप्रयास करनेवाले थे और इसमे इतने आदमियोके घायल होनेका डर था कि स्थायी सेवादल उन्हे सम्हाल नही सकता था। लडाई ऐसे प्रदेशमे हो रही थी जहा रणक्षेत्र और केन्द्रके बीच पक्की सडके भी नही थी। इस कारण घोडा-गाडी आदि सवारियोसे घायलोको ले जाना भी मुमकिन नही था। केन्द्रीय शिविर सदा किसी-न-किसी रेलवे स्टेशनके पास रखा जाता था और वह मैदानसे सात-आठसे लगाकर पच्चीस मीलतकके फासले पर होता था।

हमे काम तुरत मिल गया और वह जितना हमने सोचा था उससे ज्यादा कडा था। घायलोको उठाकर ७-८ मील ले जाना तो मामूली बात थी, पर अकसर बुरी तरह घायल सैनिको और अफसरोको उठाकर हमे पच्चीस-पच्चीस मील ले जाना पडता था। रास्तेमे उन्हे दवा भी देनी पडती थी। कूच सवेरे ८ बजे शुरू होता और शामके पाच बजे छावनीके अस्पतालपर पहुच जाना पडता। यह बहुत कठिन काम समझा जाता। घायलको उठाकर एक ही दिनमे २५ मील ले जानेका मौका तो एक ही बार आया। फिर शुरूमे अग्रेजोकी हार-पर-हार हो गई और जख्मियोकी तादाद बहुत बढ गई। इससे हमे मारके अदर ले जानेका विचार भी अधिकारियोको ताकपर रख देना पडा। पर मुझे यह बता देना होगा कि जब ऐसा मौका आया तब हमसे यह कह दिया गया कि आपके साथ की हुई शर्तके अनुसार आप लोग ऐसी जगह नही भेजे जा सकते जहा आपको तोपका गोला या बदूककी गोली लगनेका खतरा हो। इसलिए

अगर आप इस खतरेमे न पडना चाहते हो तो आपको इसके लिए मजबूर करनेका जनरल बूलरका जरा भी इरादा नही। पर आप यह जोखिम उठा लेगे तो सरकार आपका अहसान मानेगी। हम तो जोखिम लेना चाहते ही थे। खतरेमे बाहर रहना हमे कभी पसंद नही आया था। अत हम सबने इस अवसरका स्वागत किया, पर किसीको न गोली लगी और न कोई और तरहकी चोट पहुची।

इस दस्तेके रोचक अनुभव तो कितने ही है, पर उन सबको देनेके लिए यहा स्थान नही। फिर भी इतना बता देना चाहिए कि हमारे दस्तेको, जिसमे अनघड, शिक्षा-सस्कार-रहित गिरमिटिए भी शामिल थे, यूरोपियनोके स्थायी सेवादल और काली फौजके गोरे सिपाहियोसे अकसर मिलने-जुलने और साथ काम करनेके मौके आते, पर हममेसे किसीको यह नही जान पडा कि गोरे हमारे साथ अशिष्ट व्यवहार करते है या हमे तुच्छ समझते है। गोरोके तात्कालिक दस्तेमे तो दक्षिण अफ्रीकामे बसे हुए गोरे ही भरती हुए थे। लडाईके पहले वे हिंदुस्तानी विरोधी आन्दोलन करनेवालोमेसे थे, पर इस सकट-कालमे हिंदुस्तानी अपने निजके दु ख भूलकर हमारी मददके लिए आगे आये है, इस ज्ञान और इस दृश्यने उनके दिलको भी क्षण भरके लिए पिघला दिया था। जनरल बूलरके खरीतेमे हमारे कामकी तारीफ की गई थी, यह लिख चुका हू। ३७ मुखियोको लडाईमे अच्छा काम करनेके लिए तमगे भी दिए गये।

लेडी स्मिथके छुटकारेके लिए जनरल बूलरने जो यह हमला किया था उसके पूरा होनेके दो महीनेके अदर ही हमारे और गोरोके दस्तोको भी घर जानेकी इजाजत दे दी गई। लडाई तो इसके बाद बहुत दिनोतक चलती रही। हम तो फिर शामिल होनेके लिए सदा ही तैयार थे और विघटनके आदेशके

साथ यह कह दिया गया था कि फिर ऐसी जबर्दस्त जंगी कार्रवाई करनी पडी तो सरकार आपकी सेवाका उपयोग अवश्य करेगी।

दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयो द्वारा युद्धमे अर्पित यह सहायता नगण्य गिनी जायगी। उनके काममे जानका खतरा तो कह सकते है कि बिल्कुल ही नही था। फिर भी शुद्ध इच्छाका असर तो हुए बिना रहता ही नही। फिर इस इच्छाका अनुभव ऐसे वक्त हो जब कोई उसकी आशा न रखता हो तब तो उसकी कीमत दूनी आकी जाती है। जबतक लडाई चलती रही, भारतीयोके विषयमे ऐसी सुदर भावना बनी रही।

इस प्रकरणको समाप्त करनेके पहले मुझे एक जानने योग्य वृत्तात सुना देना चाहिए। लेडी स्मिथमे घिरे हुए लोगोमे अग्रेजोके साथ-साथ वहा बसनेवाले इक्के-दुक्के हिंदुस्तानी भी थे। उनमे कुछ व्यापारी और शेप गिरमिटिया थे, जो रेलवे कर्मचारी और गोरे गृहस्थोके यहा खिदमतगारी करते थे। उनमे एक प्रभुसिह नामका गिरमिटिया था। घिरे हुए आदमियोको अफसर कुछ काम तो सौपता ही है। एक बडा ही जोखिमवाला और उतना ही मूल्यवान् काम कुलियोमे गिने जानेवाले प्रभुसिहके जिम्मे किया गया था। लेडी स्मिथके पासकी पहाडीपर बोअर लोगोकी एक 'पोम-पोम' तोप थी। इसके गोलोसे बहुत-से मकान धराशायी हुए और बहुत-से लोगोने जानसे भी हाथ धोया। तोपसे गोलेके दगने और दूरके निशानेतक पहुचनेमे एक-दो मिनट तो लग ही जाते है। इतनी देरकी चेतावनी भी घिरे हुए लोगोको मिल जाय तो वे किसी-न-किसी आडमें छिप जाते और अपनी जान बचा लेते। प्रभुसिहको एक पेडके नीचे बैठनेकी ड्यूटी दी गई थी। जबसे तोप दगने लगी और जबतक दगती रही तबतक इसे वहा बैठे और तोपवाली पहाडीकी ओर आख लगाये

रहना पडता। ज्योही उसे आग भडकती दिखाई दे, तुरत घटा वजा देना होता। उसे सुनकर जैसे विल्लीको देखकर चूहे अपने विलमे घुस जाते है वैसे ही जानलेवा गोलेके आनेकी सूचनाका घटा वजते ही नगरवासी अपनी-अपनी छिपनेकी जगहमे छिप जाते और अपनी जान वचा लेते।

प्रभुसिहकी इस अमूल्य सेवाकी सराहना करते हुए लेडी स्मिथके फौजी अफसरने लिखा है कि प्रभुसिहने ऐसी निष्ठासे काम किया कि एक वार भी वह घटा वजानेसे नही चूका। यह वतानेकी जरूरत शायद ही हो कि प्रभुसिहको खुद तो सदा खतरेमे ही रहना पडता था। यह वात नेटालमे तो मशहूर हुई ही, लार्ड कर्जन (हिदुस्तानके तत्कालीन वाइसराय) के कानतक भी पहुची। उन्होने प्रभुसिहको भेट करनेके लिए एक काश्मीरी जामा भेजा और नेटालकी सरकारको लिखा कि प्रभुसिहको यह उपहार समारोह-पूर्वक प्रदान किया जाय और जिस कारगुजारीके लिए उसे यह दिया जा रहा है उसका जितना ढिढोरा पीटा जा सकता हो पीटा जाय। यह काम डर्वनके मेयरको सौपा गया और डर्वनके टाउनहालमे सार्वजनिक सभा करके प्रभुसिहको उक्त उपहार अर्पित किया गया। यह दृष्टात हमे दो बाते सिखाता है एक तो यह कि हम किसी भी मनुष्यको तुच्छ न समझे। दूसरी यह कि डरपोक-से-डरपोक आदमी भी अवसर आनेपर वीर बन सकता है।

: १० :

लड़ाईके बाद

युद्धका मुख्य भाग १९०० मे पूरा हो गया। इस बीच लेडी स्मिथ, किवरली और मेफेकिंगका छुटकारा हो गया

था। जनरल क्रोंजे हार चुके थे। बोअरोंने ब्रिटिश उपनिवेशोंका जितना भाग जीत लिया था वह सब ब्रिटिश सल्तनतको वापस मिल चुका था। लार्ड किचनरने ट्रांसवाल और ऑरेंज फ्री स्टेटको भी जीत लिया था। अब कुछ बाकी था तो केवल 'वानर युद्ध' (गोरीला वारफेयर)।

मैंने सोचा कि दक्षिण अफ्रीकामें अब मेरा काम पूरा हो गया मान लिया जा सकता है। एक महीनेके बदले मैं छ बरस रह गया। कार्यकी रूप-रेखा बंध गई थी। फिर भी भारतीय जनताके खुशीसे इजाजत दिये बिना मेरा निकास नहीं हो सकता था। मैंने अपने साथियोंको बताया कि मेरा इरादा हिंदुस्तानमें लोकसेवा करनेका है। स्वार्थके बदले सेवाधर्मका पाठ मैं दक्षिण अफ्रीकामें पढ चुका था। उसकी धुन समा चुकी थी। मनसुखलाल नाजर दक्षिण अफ्रीकामें थे ही। खान भी थे। दक्षिण अफ्रीकासे ही गये हुए कितने ही भारतीय युवक बैरिस्टर होकर लौट भी चुके थे। अत मेरा देश लौटना किसी तरह अनुचित नहीं माना जा सकता था। यह सब दलीलें देते हुए भी मुझे इस शर्तपर इजाजत मिली कि दक्षिण अफ्रीकामें कोई अनसोची अड़चन आ पड़े और मेरी जरूरत समझी जाय तो कौम मुझे चाहे जब वापस बुला सकती है और मुझे तुरत वापस जाना होगा। यात्राका और मेरे रहनेका खर्च कौमको उठाना होगा। यह शर्त मंजूर कर मैं देश लौटा।

मैंने बम्बईमें बैरिस्टरी करनेका निश्चय किया और चेंबर ले लिया। इसमें मुख्य हेतु तो था स्वर्गीय गोखलेकी सलाहसे और उनकी देखरेखमें सार्वजनिक कार्य करना, पर साथ ही आजीविका कमानेका भी उद्देश्य था। मेरी वकालत भी कुछ चल निकली। दक्षिण अफ्रीकाके साथ जो मेरा इतना गहरा संबंध जुड़ गया था उससे

वहासे लौटे हुए मवक्किलोसे ही मुझे इतना पैसा मिल जाता था कि मेरा खर्च आसानीसे चल जाता। पर मेरे भाग्यमे स्थिर होकर बैठना लिखा ही न था। मुश्किलसे तीन-चार महीने बबईमे स्थिर होकर बैठा हूगा कि दक्षिण अफ्रीकासे तार आया--"स्थिति गभीर है। मि० चेवरलेन जल्दी ही आ रहे है। आपकी उपस्थिति आवश्यक है।"

बम्बईका दफ्तर और घर समेटा और पहले ही जहाजसे दक्षिण अफ्रीकाके लिए रवाना हो गया। यह सन् १९०२ के अतका समय था। १९०१के आखिरमे मै हिंदुस्तान लौटा था। १९०२के मार्च-अप्रैलमे बबईमे दफ्तर खोला। तारसे मै पूरी बात जान नही सका था। मैने अटकल लगाई कि सकट कही ट्रासवालमे ही होगा। पर चार-छ महीनेके अदर लौट सकूगा, यह सोचकर बाल-बच्चोको साथ लिए बिना ही मै चल दिया था। मगर ज्योही डर्बन पहुचा और सारी हकीकत सुनी मै दिग्मूढ हो गया। हममेसे बहुतोने सोचा था कि युद्धके बाद सारे दक्षिण अफ्रीकामे हिंदुस्तानियोकी हालत सुधर जायगी। ट्रासवाल और फ्री स्टेटमे तो कोई कठिनाई हो ही नही सकती, क्योकि लार्ड लेसडाउन, लार्ड सेलबर्न आदि बडे ब्रिटिश अधिकारियोने कहा था कि बोअर राज्योमे भारतीयोकी विषम स्थिति भी इस युद्धका एक कारण है। प्रिटोरियामे रहनेवाला ब्रिटिश राजदूत भी अनेक बार मेरे सामने कह चुका था कि ट्रासवाल ब्रिटिश उपनिवेश हो जाय तो हिंदुस्तानियोके सारे कष्ट तुरत मिट जायगे। यूरोपियन भी मानते थे कि राज्य-व्यवस्था बदल जानेपर ट्रासवालके पुराने (भारतीय विरोधी) कानून हिंदुस्तानियोपर लागू नही हो सकेगे। यह बात इतनी सर्वमान्य हो गई थी कि नीलाम करनेवाले जो गोरे जमीनकी बोली बोलते समय लडाईके पहले हिंदुस्तानियोकी बोली मजूर नही करते थे वे

अब खुले तौरपर उसे स्वीकार करने लगे। कितने ही हिंदुस्तानियोंने इस तरह नीलाममें जमीन खरीद भी ली। पर जब वे तहसीलमें जमीनकी रजिस्ट्री कराने गये तो मालके अफसरने १८८५ का कानून सामने रख दिया और दस्तावेजकी रजिस्ट्री करनेसे इन्कार कर दिया। डर्बनमें उतरनेपर मैंने इतना तो सुन लिया। नेताओंने मुझसे कहा कि आपको ट्रांसवाल जाना है। मि० चेंबरलेन पहले तो यहीं आयगे। यहाकी (नेटालकी) स्थितिसे भी उनको वाकिफ करा देना जरूरी है। यहांका काम निबटाकर उन्हींके पीछे-पीछे आपको ट्रांसवाल जाना होगा।

नेटालमें श्री चेंबरलेनसे एक शिष्टमंडल मिला। उन्होंने सारी बाते बड़े सौजन्यके साथ सुन ली और नेटालके मंत्रिमंडलके साथ बाते करनेका वचन दिया। नेटालमें जो कानून युद्धके पहले बन गए थे उनमें तुरत हेर फेर होनेकी आशा मैं खुद नहीं करता था। इन कानूनोंका वर्णन पिछले प्रकरणोमें किया जा चुका है।

पाठक यह तो जानते ही है कि लड़ाईके पहले चाहे जो हिंदुस्तानी चाहे जब ट्रांसवालमें दाखिल हो सकता था। पर मैने देखा कि अब ऐसी स्थिति नहीं है। फिर भी इस वक्त जो रुकावटे थी वे गोरे और हिंदुस्तानी दोनोंपर समान रूपसे लागू होती थी। आज भी देशकी दशा ऐसी थी कि बहुतसे लोग एक साथ उसमें भर जाय तो सबको अन्न-वस्त्र भी पूरा न मिल सके। लडाईके कारण बन्द हुई बहुतसी दुकानें अब भी बन्द थी। दुकानोंका अधिकांश माल बोअर सरकार साफ कर गई थी। अत मैंने मनमें सोचा कि अगर यह रुकावट एक थोड़ी मुद्दतके लिए ही हो तो भय करनेका कारण नहीं, पर गोरे और हिंदुस्तानीके लिए ट्रांसवाल जानेका परवाना लेनेकी रीतिमें अंतर था और यह भेद ही

भयका कारण हो गया। परवाने देनेके दफ्तर दक्षिण अफ्रीकाके जुदा-जुदा बंदरगाहोंमें खोले गये थे। गोरेको तो कह सकते हैं कि मांगते ही परवाना मिल जाता था, पर हिंदुस्तानियोंके लिए तो ट्रांसवालमें एक एशियाटिक विभाग स्थापित किया गया था।

यह अलग महकमेकी स्थापना एक नयी घटना थी। हिंदुस्तानियोंको इस महकमेके अफसरके पास अर्जी भेजनी होती। वह मंजूर हो गई तो डर्बन या किसी दूसरे बंदरगाहसे आमतौरसे परवाना मिल जाता था। यह अर्जी मुझे भी देनी होती तो मि० चेंबरलेनके ट्रांसवालसे चल देनेके पहले परवाना मिलनेकी आशा नहीं रखी जा सकती थी। ट्रांसवालके भारतीय वैसा परवाना प्राप्त कर मुझे नहीं भेज सके थे। यह बात उनके बसके बाहर थी। मेरे परवानेका आधार उन्होंने डर्बनसे मेरे परिचय, मेरे संबंधका बनाया था। परवाना देनेवाले अफसरसे मेरी जान-पहचान नहीं थी, पर डर्बनके पुलिस सुपरिटेंडेंटसे थी। इसलिए उन्हें साथ लेजाकर अपनी पहचान दिला दी। १८९३ में मैं एक सालतक ट्रांसवालमें रह चुका हूं, यह अधिकार बताकर मैंने परवाना हासिल किया और प्रिटोरिया पहुंचा।

यहां मैंने बिलकुल दूसरा ही वातावरण पाया। मैंने देखा कि एशियाटिक विभाग एक भयानक महकमा है और महज हिंदुस्तानियोंको दबानेके लिए कायम किया गया है। उसके अफसर उन लोगोंमेंसे थे जो युद्धकालमें हिंदुस्तानी सेनाके साथ दक्षिण अफ्रीका गए थे और भाग्यपरीक्षाके लिए वहां रह गए थे। उनमेंसे कितने तो घूसखोर थे। दो अफसरोंपर मुकदमा भी चला। जूरीने तो उन्हें छोड़ दिया, पर चूंकि उनके घूस खानेके बारेमें कोई संदेह नहीं रह गया था, इसलिए वे नौकरीसे अलग कर दिये गए। पक्षपातकी

तो कोई हद ही न थी, जहा इस तौरपर एक खास महकमा क़ायम किया गया हो और जब वर्ग-विशेषके स्वत्वोपर अकुश रखनेके लिए ही उसका निर्माण हुआ हो तब अपनी हस्ती कायम रखनेके लिए और वह अपने कर्तव्यका पालन ठीक तौरसे कर रहा है यह दिखानेके लिए उसका झुकाव नए-नए अकुश ढूढते रहनेकी ओर ही होता है। हुआ भी यही।

मैने देखा कि मुझे फिरसे श्रीगणेश करना होगा। एशियाटिक महकमेको तुरत इसका पता नही लग सका कि मै ट्रासवालमे कैसे दाखिल हो गया। मुझसे पूछनेकी तो यकायक उसकी हिम्मत हुई नही। मै मानता हू कि उसके अधिकारियोने इतना तो माना होगा कि मै चोरीसे नही दाखिल हुआ हूगा। इधर-उधरसे पूछताछकर उन्होने यह भी मालूम कर लिया कि मैने परवाना कैसे हासिल कर लिया। प्रिटोरियाका शिष्ट-मण्डल भी मि० चेवरलेनके पास जानेको तैयार हुआ। जो आवेदनपत्र उनके सामने पेश किया जानेवाला था उसका मसविदा मैने बना दिया। पर एशियाटिक महकमेने मुझे उनके सामने जानेकी मनाही कर दी। भारतीय नेताओने सोचा कि ऐसी दशामे हमे भी मि० चेवरलेनसे मिलने नही जाना चाहिए, पर मुझे यह विचार नही रुचा। मैने उन्हे यह सलाह दी कि मेरा जो अपमान हुआ है उसे मुझे तो पी ही जाना चाहिए, कौमको भी उसकी परवा नही करनी चाहिए। अर्जी तो तैयार है ही, मि० चेवरलेनको उसे सुना देना बहुत जरूरी है। हिन्दुस्तानके एक वैरिस्टर मि० जार्ज गाडफ्रे वहा मौजूद थे। मैने उन्हे अर्जी पढ देनेके लिए तैयार कर लिया। शिष्ट-मण्डल गया। मेरी बात उठी तो मि० चेवरलेनने कहा—"मि० गाधीसे तो मै डर्बनमे मिल चुका हू। इसलिए यह सोचकर कि वहाके लोगोका वृत्तान्त यहीके लोगोसे सुनना ज्यादा अच्छा

होगा मैने उनसे मिलनेसे इन्कार कर दिया ।" मेरी दृष्टिसे तो इस उत्तरने आगमे घीका काम दिया । एशियाटिक महकमेने जो सिखाया था, मि० चेवरलेन वही वोले। जो हवा हिंदुस्तानमे वहा करती है वही उक्त विभागने ट्रासवालमे वहा दी। गुजराती भाइयोको यह वात मालूम होनी ही चाहिए कि वम्बईका रहनेवाला चपारनमे अग्रेज अफसरोके लिए परदेसी होता है । इस नियमके अनुसार डर्वनमे रहनेवाला मै ट्रासवालकी स्थिति कैसे जान सकता हू, यह पाठ एशियाटिक विभागने मि० चेवरलेनको पढाया। उनको क्या मालूम "कि मे ट्रासवालमे रह चुका हू और न रहा होऊ तो भी ट्रासवालकी पूरी परिस्थितिसे परिचित हू। सवाल एक ही था ट्रासवालकी परिस्थितिसे सर्वाधिक परिचित कौन है ? हिंदुस्तानसे मुझे खास तौरसे वुलाकर भारतीय जनताने इस प्रश्नका उत्तर दे दिया था, पर हुकूमत करनेवालेके सामने न्यायशास्त्रकी दलील नही चल सकती, यह कोई नया अनुभव नही। मि० चेवरलेनपर इस वक्त स्थानीय व्रिटिश अधिकारियोका इतना असर था और गोरो-को सन्तुष्ट करनेके लिए वह इतने आतुर थे कि उनके हाथो न्याय होनेकी आशा तनिक भी नही थी या वहुत ही कम थी। पर न्याय पानेका एक भी उचित उपाय भूलसे या स्वाभि-मानवश किये विना न रह जाय, इस खयालसे शिष्ट-मण्डल उनके पास भेजा गया।

पर मेरे सामने १८९४से भी अधिक विषम प्रसग उप-स्थित हो गया। एक दृष्टिसे देखनेसे मुझे ऐसा दिखाई दिया कि मि० चेवरलेन यहासे रवाना हुए कि मै हिंदुस्तान-को वापस जा सकता हू। दूसरी ओर मै यह भी साफ देख सकता था कि अगर मै कौमको भयावह स्थितिमे देखते हुए भी हिंदु-स्तानमे सेवा करनेके अभिमानसे वापस जाऊ तो जिस सेवा-

धर्मकी झाकी मुझे हुई है वह दूषित हो जायगी। मैंने सोचा कि मेरी सारी जिंदगी भले ही दक्षिण अफ्रीकामे बीत जाय, पर जबतक घिरे हुए बादल बिखर नही जाते या हमारी सारी कोशिशके बावजूद और अधिक उमडकर कौमपर फट नही पडते, तबतक मुझे ट्रासवालमे ही रहना चाहिए। मैंने नेताओके साथ इस प्रकारकी बातचीत की और १८९४ की तरह वकालतकी आमदनीसे गुजर करनेका अपना निश्चय भी बता दिया। कौमको तो इतना ही चाहिए था।

मैंने तुरत ट्रासवालमे वकालत करनेकी इजाजतकी दरख्वास्त दे दी। डर था कि यहा भी वकीलोका मण्डल मेरी अर्जीका विरोध करेगा, पर वह निराधार निकला। मुझे सनद मिल गई और मैंने जोहान्सबर्गमे दफ्तर खोला। ट्रासवालमे हिंदुस्तानियोकी सबसे बडी आबादी जोहान्सबर्गमे ही थी। इसलिए मेरी आजीविका और सार्वजनिक काम दोनोकी दृष्टिसे जोहान्सबर्ग ही मेरे लिए अनुकूल केन्द्र था। एशियाटिक विभागकी भ्रष्टताका कटु अनुभव मुझे दिन-दिन हो रहा था और वहाके भारतीय मडल (ट्रासवाल ब्रिटिश इडियन असोसियेशन) का सारा जोर इस सडनको दूर करनेकी ही ओर लग रहा था। १८८५ के कानूनको रद कराना तो अब दूरका लक्ष्य हो गया था। तात्कालिक कार्य एशियाटिक विभागके रूपमे जो बाढ हमारी ओर चढी आ रही थी उससे अपना बचाव करना था। लार्ड मिलनर, लार्ड सेलबोर्न जो वहा आये थे, सर आर्थर लॉली जो ट्रासवालमे लफ्टिनेंट गवर्नर थे और पीछे मद्रासके गवर्नर हुए, इन तथा उनसे नीचेकी श्रेणीके अधिकारियोके पास भी शिष्ट-मण्डल गये। मै अकेले भी अकसर उनसे मिलता। थोडी-बहुत राहत भी मिलती। पर वह सभी फटे कपडेमे पैवद लगा देना जैसा था। लुटेरे हमारा सारा धन हर ले और पीछे

हम गिडगिडावे तो उसमेसे कुछ लौटा दे, इसमे हम जिस प्रकारका सन्तोप मान सकते है कुछ वैसा ही सतोप हमे मिलता। जिन अहलकारोके वरखास्त किये जानेकी वात ऊपर लिख चुका हू उनपर इस आन्दोलनके फलस्वरूप ही मुकदमा चलाया गया। भारतीयोके प्रवेशके विपयमे जो आशका होनेकी वात पहले वता चुका हू वह सही निकली। गोरोको परवाना लेना जरूरी नही रहा, पर हिदुस्तानियोके लिए उसकी पख लगी ही रही। ट्रासवालकी पुरानी बोअर सरकारने जैसे कडे कानून वनाये थे वैसी कडाईसे उनपर अमल नही होता था। यह कुछ उसकी उदारता या भलमनसाहत नही थी, वल्कि उसका शासन-विभाग लापरवाह था और इस विभागके अधिकारी भले हो तो भलमनसी वरतनेका उन्हे जितना अवकाश पिछली सरकारकी अधीनतामे था उतना व्रिटिश सरकारकी मातहतीमे नही था। व्रिटिश राज्यतत्र पुराना होनेसे दृढ और व्यवस्थित हो गया है और अफसरो-अहलकारोको उसमे यत्रकी तरह काम करना पडता है, क्योकि उनके ऊपर एकके वाद एक चढते-उतरते अकुश लगे हुए है। इससे व्रिटिश विधानमे राज्यपद्धति उदार हो तो प्रजाको उसकी उदारताका अधिक-से-अधिक लाभ मिल सकता है और अगर वह पद्धति जुल्म करनेवाली या कजूस हो तो इस नियत्रित शासनतत्रमे उसका दवाव भी वह पूरा-पूरा अनुभव करती है। इसकी उलटी स्थिति ट्रासवालकी पुरानी शासन-व्यवस्था जैसे राज्यतत्रमे होती है। उदार कायदे-कानूनका लाभ मिलना न मिलना अधिकाशमे उस विभागके अधिकारियोके भले-बुरे होनेपर अवलवित होता है। अत जव ट्रासवालमे व्रिटिश राज्य स्थापित हुआ तो भारतीयोसे सबध रखनेवाले सभी कानूनोपर उत्तरोत्तर अधिक कडाईसे अमल होने लगा। पकडसे वचनेके जो रास्ते पहले खुले रह

गये थे वे सब बन्द कर दिये गये। यह तो हम देख ही चुके हैं कि एशियाटिक विभागकी नीति कडाईकी होनी ही चाहिए थी। अत पुराने कानून कैसे रद कराये जाय, यह सवाल तो अलग रहा, पर उनकी कठोरता अमलमे नरम कैसे कराई जा सकती है, फिलहाल तो इसी दृष्टिसे भारतीय जनताको प्रयत्न करना रहा।

एक सिद्धातकी चर्चा जल्दी या देरसे हमे करनी ही होगी और इस जगह कर देनेसे आगे पैदा होनेवाली परिस्थिति और भारतीय दृष्टिबिन्दुको समझनेमे कुछ आसानी हो सकती है। ज्योही ट्रासवाल और औरेज फ्री स्टेटमे ब्रिटिश पताका फहराने लगी, लार्ड मिलनरने एक कमेटी नियुक्त की। उसका काम था दोनो राज्योके पुराने कानूनोकी जाचकर ऐसे कानूनोकी सूची तैयार करना जो प्रजाके अधिकारपर प्रतिबध लगाते हो या ब्रिटिश विधानके तत्वके विरुद्ध हो। भारतीयोकी स्वतत्रतापर आघात करनेवाले कानून भी साफतौरसे इस सूचीमे आते थे। पर यह कमेटी नियुक्त करनेमे लार्ड मिलनरका उद्देश्य हिंदुस्तानियोके कष्टोका नही, बल्कि अग्रेजोके कष्टोका निवारण था। जिन कानूनोसे अप्रत्यक्ष रीतिसे अग्रेजोको बाधा होती थी उन्हे जितनी जल्दी हो सके रद कर देना उनका उद्देश्य था। कमेटीकी रिपोर्ट बहुत ही थोडे समयमे तैयार हो गई और छोटे-बडे कितने ही कानून जो अग्रेजोके स्वार्थके विरोधी थे, कह सकते है कि कलमके एक ही फर्राटेमे रद कर दिये गए।

इसी कमेटीने भारतीय विरोधी कानूनोको भी छाटकर अलग किया। वे एक पुस्तकके रूपमे छापे गये, जिसका उपयोग या हमारी दृष्टिसे दुरुपयोग एशियाटिक विभाग आसानीसे करने लगा।

अब अगर भारतीय विरोधी कानून बिना हिंदुस्तानियोका

नाम उनमे रखे और इस ढगपर बनाये गए हो कि वे खास तौरसे उन्हीके खिलाफ न हो, बल्कि सबपर लागू होते हो, सिर्फ उनपर अमल करना न करना अधिकारीकी मर्जीपर छोडा गया हो, या उन कानूनोके अदर ऐसे प्रतिबध रखे गये हो जिनका अर्थ तो सार्वजनिक हो, पर उनकी अधिक चोट हिंदुस्तानियोपर ही पडती हो, तो ऐसे कानूनोसे भी कानून बनानेवालोका अर्थ सिद्ध हो सकता था और फिर भी वे सार्वजनिक रूपसे लागू होनेवाले कहे जाते। उनसे किसीका अपमान न होता और कालक्रमसे जब विरोधका भाव नरम हो जाता तब कानूनमे कोई हेरफेर किये बिना, केवल उदार दृष्टिसे उसपर अमल होनेसे, जिस जाति-वर्गके विरुद्ध वह कानून बना होता वह बच जाता। जिस प्रकार दूसरी श्रेणीके कानूनोको मैने सार्वजनिक कानून कहा है, वैसे ही पहले प्रकारके कानूनोको एकदेशीय या जातीय कानून कह सकते है। दक्षिण अफ्रीकामे उन्हे रग-भेदकारी कानून कहते है, इसलिए कि उनमे चमडेके रगका भेद करके काले या गेहुआ रंगके चमडेवाली जनतापर गोरोके मुकाबले अधिक अकुश रखा जाता है।

जो कानून बन चुके थे उनमेसे ही एक मिसाल लीजिये। पाठकोको याद होगा कि मताधिकार (हरण)का जो पहला कानून नेटालमे पास हुआ और जो पीछे साम्राज्य सरकार द्वारा रद कर दिया गया उसमे इस आशयकी धारा थी कि एशियाई मात्रको आगेसे चुनावमे मत देनेका अधिकार न होगा। अब ऐसे कानूनको बदलना हो तो लोकमतको इतना शिक्षित करना होगा कि अधिकाश जन एशियाइयोसे द्वेष करनेके बदले उनकी ओर मित्रभाव रखनेवाले हो जायं। जब ऐसा सुअवसर आये तभी नया कानून बनाकर यह रगका दाग दूर किया जा सकता है। यह हुआ एकदेशीय या रग-भेद करनेवाले

कानूनका दृष्टान्त। अब ऊपर बताया हुआ कानून रद होकर उसकी जगहपर जो दूसरा कानून बना उसमे भी मूल उद्देश्यकी लगभग रक्षा कर ली गई थी, फिर भी वह सार्वजनिक था और रंग-भेदका डंक उसमेसे दूरकर दिया गया था। इस कानूनकी एक दफाका भावार्थ यह है "जिस देशकी जनताको 'पार्लमेंटरी फ्रेंचाइज' अर्थात् ब्रिटिश जनताको अपनी साधारण सभा-सदस्यके चुनावमे मत देनेका जैसा अधिकार प्राप्त है वैसा मताधिकार नही है उस देशका निवासी नेटालमे मताधिकारी नही हो सकता।" इसमे कही भी हिंदुस्तानी या एशियाईका नाम नही आता। हिंदुस्तानमे इंगलैंडका-सा मताधिकार है या नही, इस विषयमे विधान-शास्त्री तो भिन्न-भिन्न मत देंगे। पर दलीलकी खातिर मान लीजिये कि हिंदुस्तानमे उस वक्त यानी १८९४ मे मताधिकार नही था या आज भी नही है, फिर भी नेटालमे मताधिकारियो—वोटके अधिकारियोके नाम दर्ज करनेवाला अधिकारी हिंदुस्तानियोका नाम वोटर-सूचीमे लिख ले तो यकायक कोई यह नही कह सकता कि उसने गैरकानूनी काम किया। सामान्य अनुमान सदा प्रजाके अधिकारकी ओर किया जाता है। अत उस वक्तकी सरकार जबतक विरोध करनेका इरादा न कर ले तबतक ऊपर लिखे हुए कानूनके मौजूद रहते हुए भी भारतीयो और दूसरोके नाम वोटर-सूचीमे दर्ज किये जा सकते है अर्थात् कुछ दिनोमे नेटालमे हिंदुस्तानीसे नफरत करनेका भाव घट जाय, वहाकी सरकार हिंदुस्तानियोका विरोध न करना चाहे तो कानूनमे कुछ भी फेरफार किये बिना हिंदुस्तानियोके नाम वोटरोके रजिस्टरमे दर्ज किये जा सकते है। सामान्य या सार्वजनिक कानूनकी यह खूबी होती है। ऐसी और मिसाले दक्षिण अफ्रीकाके उन कानूनोमे दी जा सकती है जिनका जिक्र पिछले प्रकरणोमे किया जा चुका है। इसलिए

बुद्धिमानीकी राजनीति यही मानी जाती है कि एकदेशीय--वर्ग या जाति विशेषपर ही लागू होनेवाले--कानून कम-से-कम बनाये जाय। बिलकुल ही न बनाना तो सर्वोत्कृष्ट नीति है। कोई कानून जब एक बार बन गया तो उसे बदलनेमे अनेक कठिनाइया आती है। लोकमत जब बहुत शिक्षित समझदार हो जाय तभी कोई कानून रद किया जा सकता है। जिस लोकतत्रमे सदा कानूनोमे रद्दोबदल होती रहती है वह लोकतत्र सुव्यवस्थित नही माना जा सकता।

ट्रासवालमे एशियाइयोके खिलाफ जो कानून बने थे उनमे भरे हुए जहरका अन्दाजा अब हम अधिक अच्छी तरह कर सकते है। ये सारे कानून एकदेशीय थे। इनके अनुसार एशियावासी चुनावमे मत नही दे सकता था। सरकारने जो रकबे या महल्ले ठहरा दिये थे उनके बाहर न जमीन खरीद सकता था और न रख सकता था। इन कानूनोके रद हुए बिना अधिकारी वर्ग हिंदुस्तानियोकी मदद कर ही नही सकता था। ये कानून सार्वजनिक नही थे। इसीसे लार्ड मिल्नरकी कमेटी उन्हे अलग छाट सकी थी। वे सार्वजनिक होते तो दूसरे कानूनोके साथ वे सब कानून भी रद हो गये होते, जिनमे एशियाइयोका नाम तो खासतौरसे नही लिया गया है, पर जिनका अमल उन्हीके खिलाफ होता था। अधिकारीवर्ग यह तो कह ही नही सकता था--"हम क्या कर सकते है ? हम लाचार है। जबतक नई धारा सभा इन कानूनोको रद नही कर देती तबतक हमे तो उनको अमलमे लाना ही होगा।"

जब ये कानून एशियाटिक महकमेके हाथमे आये तो उसने उनपर पूरे तौरसे अमल करना शुरू किया। इतना ही नही, शासक-मडल अगर उन कानूनोको अमल करने योग्य माने तो उनमे जो त्रुटियाँ छूट गई हो, बचावके रास्ते रह गये

हो, उन्हे वद कर देनेके नये अधिकार भी उसे प्राप्त करने ही होंगे। दलील तो सीधी-सादी मालूम होती है। कानून अगर बुरे है तो उन्हे रद कर देना चाहिए और अच्छे है तो उनमे जो त्रुटिया रह गई हो उन्हे दूर कर देना चाहिए। कानूनोपर अमल करानेकी नीति शासक-मडलने स्वीकार कर ली थी। भारतीय जनता वोअर-युद्धमे अग्रेजोके कधे-से-कधा सटाकर खडी हुई थी और जानकी जोखिम उठाई थी, पर यह तो तीन-चार वरसकी पुरानी वात हो गई थी। ट्रासवालका ब्रिटिश राजदूत भारतीय जनताका पक्ष लेकर लडा था, यह भी पुराने राजतत्रकी वात थी। युद्धके कारणोमे भारतीयोके कष्ट भी वताये गये थे, पर यह ऐसे अधिकारियोकी घोषणा थी जो दूरदर्शितासे रहित और स्थानीय अनुभवसे कोरे थे। स्थानीय अनुभवने तो स्थानीय अधिकारियोको साफ वता दिया कि वोअर-राज्यमे हिंदुस्तानियोके खिलाफ जो कानून वनाये गये थे वे न यथेष्ट थे और न व्यवस्थित। हिंदुस्तानी जव जीमे आये ट्रासवालमे घुस आये और जहा जैसे जीमे आये रोजगार करने लगे तव तो अग्रेज व्यापारियोकी भारी हानि होगी। इन और ऐसी दूसरी दलीलोने गोरो और उनके प्रतिनिधि शासक-मडलके दिमागपर कसकर कब्जा जमाया। गोरे कम-से-कम समयमे अधिक-से-अधिक पैसा इकट्ठा कर लेना चाहते थे। हिंदुस्तानी इसमे थोडा भी हिस्सा वटाए, यह उन्हे कव पसन्द आता ? राजनीतिमे तत्त्वज्ञानका ढोग भी घुसा। दक्षिण अफ्रीकाके वुद्धिमान पुरुषोका सन्तोष निरी वनियाशाही, अपने लाभ, स्वार्थकी दलीलसे नही हो सकता था। अन्याय करनेके लिए भी मानव-बुद्धि सदा ऐसी दलीले ढूढती है जो उसे ठीक लगे। दक्षिण अफ्रीकाकी वुद्धिने भी यही किया। जनरल स्मट्स आदिने जो दलीले दी वे इस प्रकार थी

"दक्षिण अफ्रीका पश्चिमकी सभ्यताका प्रतिनिधि है। हिंदुस्तान पूर्वकी सभ्यताका केंद्र-स्थान है। दोनो सभ्यताओका सम्मिलन हो सकता है, इस बातको इस जमानेके तत्त्वज्ञानी तो स्वीकार नही करते। इन दोनो सभ्यताओकी प्रतिनिधि जातियोका छोटे समुदायोमे भी सगम हो तो इसका परिणाम विस्फोटके सिवा और कुछ नही हो सकता। पश्चिम सादगी-का विरोधी है, पूर्वके लोग सादगीको प्रधान पद देते है। इन दोनोका मेल कैसे हो सकता है? इन दोनोमे कौन सभ्यता अधिक अच्छी है, यह देखना राजकाजी अर्थात् व्याव-हारिक पुरुषोका काम नही। पश्चिमकी सभ्यता अच्छी हो या बुरी, पर पश्चिमकी जनता उसे ही अपनाये रहना चाहती है। उस सभ्यताके रक्षार्थ पश्चिमकी जनताने अथक प्रयत्न किया है। खूनकी नदिया बहाई है। अनेक प्रकारके दूसरे दुख सहे है। अत पश्चिमकी जनताको अब दूसरा रास्ता नही सूझनेका। इस दृष्टिसे देखा जाय तो हिंदुस्तानी और गोरोका सवाल न व्यापारद्वेषका है और न वर्णद्वेषका। केवल अपनी सभ्यताके रक्षणका, अर्थात् आत्मरक्षाके उच्चतम अधिकारके उपयोग और उससे प्राप्त कर्तव्यके पालनका सवाल है। हिंदुस्तानियोके दोष निकालना भाषणकर्ताओको लोगोको भडकानेके लिए भले ही रुचता हो, पर राजनैतिक दृष्टिसे विचार करनेवाले तो यही मानते और कहते है कि भारतीयोके गुण ही दक्षिण अफ्रीकामे दोषरूप हो रहे है। अपनी सादगी, अपने लबे समयतक श्रम करनेके धैर्य, अपनी किफायतशारी, अपनी परलोक-परायणता, अपनी सहन-शीलता, इत्यादि गुणोके कारण ही हिंदुस्तानी दक्षिण अफ्रीकामे अप्रिय हो रहे है। पश्चिमकी जनता साहसिक, अधीर, दुनियवी आवश्यकताओको बढाने और उन्हे पूरी करनेमे मग्न, खाने-पीनेकी शौकीन, शरीरश्रम बचानेको आतुर और उडाऊ

स्वभावकी है। इससे उसे यह डर रहता है कि पूर्वकी सभ्यताके हजारो प्रतिनिधि दक्षिण अफ्रीकामे बस गये तो पश्चिमके लोगोका पछाडा जाना निश्चित ही है। इस आत्मघातके लिए दक्षिण अफ्रीकामे बसनेवाली पश्चिमकी जनता हर्गिज तैयार नही हो सकती और इस जनताके हिमायती उसे इस खतरेमे कभी नही पडने देगे।"

मै समझता हू, भले-से-भले और चरित्रवान् यूरोपियन इस दलीलको जिस शक्लमे पेश करते है मैने उसी रूपमे निष्पक्षभावसे यहा उसे उपस्थित किया है। मै ऊपर इस दलीलको तत्त्वज्ञानका ढोग बता आया हू, पर इससे मै यह सूचित करना नही चाहता कि इस दलीलमे कुछ भी सार नही है। व्यावहारिक दृष्टि, अर्थात् तात्कालिक स्वार्थ-दृष्टिसे तो इसमे बहुत-कुछ सार है, पर तात्त्विक दृष्टिसे वह निरा ढोग है। मेरी छोटीसी अक्लको तो यही दिखाई देता है कि तटस्थ मनुष्यकी बुद्धि ऐसे निर्णयको स्वीकार नही कर सकती। कोई सुधारक अपनी सभ्यताको वैसी असहाय स्थितिमे नही डालेगा जैसी स्थितिमे ऊपरकी दलीले देनेवालोने अपनी सभ्यताको डाल दिया है। पूर्वके किसी तत्त्वज्ञानीको यह भय होता हो कि पश्चिमकी जनता पूर्वके साथ आजादीसे मिले-जुले तो पूर्वकी सभ्यता पश्चिमकी बाढमे बालूकी तरह बह जायगी। यह मै नही जानता। पूर्वके तत्त्वज्ञानको जहातक मै समझ पाया हू, मुझे तो यही दिखाई देता है कि पूर्वकी सभ्यता पश्चिमके स्वतत्र सगमसे निर्भय रहती है। यही नही, वैसे सम्पर्कका स्वागत करती है। इसकी उल्टी मिसाले पूर्वमे दिखाई दे तो जिस सिद्धातका प्रतिपादन मैने किया है उसको इससे आच नही आती, क्योकि मै मानता हू कि इस सिद्धातके समर्थनमे अनेक दृष्टान्त दिये जा सकते है। कुछ भी हो, पश्चिमके तत्त्वज्ञानियोका दावा तो यह है कि

पश्चिमकी सभ्यताका मूल सिद्धात यही है कि पशुबल सर्वो-परि है और इसीसे इस सभ्यताके हिमायती पशुबलके रक्षणमे अपने समयका अधिक-से-अधिक भाग लगाते है। उनका तो यह भी सिद्धात है कि जो राष्ट्र अपनी आवश्यकताए नही बढाता उसका अतमे नाश होना निश्चित है। इसी सिद्धात-का अनुसरण करके तो पश्चिमकी जातिया दक्षिण अफ्रीकामे बसी है और अपनी सख्याकी तुलनामे सैकडो गुना बडी तादादवाले हबशियोको अपने वशमे कर लिया है। उन्हे हिंदुस्तानकी एक जनताका भय हो ही कैसे सकता है? इस सभ्यताकी दृष्टिसे वस्तुत उन्हे कुछ भी भय नही है, इसका सबसे बडा सबूत तो यह है कि हिंदुस्तानी अगर सदाके लिए दक्षिण अफ्रीकामे मजदूर बनकर ही रहते तो उनके बसनेके विरुद्ध कोई आन्दोलन उठा ही नही होता।

अत जो चीज बाकी रह जाती है वह है केवल व्यापार और वर्ण। हजारो यूरोपियनोने लिखा और कबूल किया है कि हिंदुस्तानियोका व्यापार छोटे अग्रेज व्यापारियोके लिए हानिकर है और गेहुए रगसे नफरत तो फिलहाल गोरे चमडे-वाली जातियोकी हड्डी-हड्डीमे व्याप्त हो गई है। उत्तरी अमरीकामे कानूनमे सबका बराबर हक है, पर वहा भी बुकर्टी वाशिगटन जैसा पुरुष, जिसने ऊची-से-ऊची पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त की थी, जो अतिशय चरित्रवान और ईसाई धर्मको माननेवाला था और जिसने पश्चिमकी सभ्यताको पूरे तौरपर अपना लिया था, राष्ट्रपति रूजवेल्टके दरबारमे न जा सका और न आज तक जा सकता है। वहाके हबशियोने पश्चिमी सभ्यताको स्वीकार कर लिया है। वे ईसाई भी बन गये है, पर उनका काला चमडा उनका अपराध है और उत्तरी अमरीकामे अगर लोक व्यवहारमे उनका तिर-स्कार किया जाता है तो दक्षिण अमरीकामे अपराधके सदेह-

मात्रसे गोरे उन्हे जिंदा जला देते है। दक्षिण अमरीकामे इस दंडनीतिका एक खास नाम भी है जो आज अंग्रेजी भाषाका प्रचलित शब्द हो गया है। वह है 'लिंच-ला।' लिंच-ला के मानी उस दडनीतिके है जिसके अनुसार पहले सजा दी जाती है, पीछे अपराधका विचार किया जाता है। यह प्रथा लिंच नामके व्यक्तिसे चली है। अत उसीके नाम पर इसका नामकरण हुआ है।

इस विवेचनसे पाठक देख सकते है कि ऊपर दी हुई तात्त्विक मानी जानेवाली दलीलमे अधिक तत्त्व या सार नही है। पर वे यह अर्थ भी न करे कि यह दलील देनेवाले सभी लोग उसे झूठी जानते हुए भी पेश करते है। उनमेसे बहुतेरे सचाईके साथ मानते है कि उनकी दलील तात्त्विक है। हो सकता है कि हम वैसी स्थितिमे हो तो हम भी वैसी ही दलील पेश करे। कुछ ऐसे ही कारणोसे 'बुद्धि कर्मानुसारिणी' कहावत निकली होगी। इसका अनुभव किसको नही हुआ होगा कि हमारी अन्तर्वृत्ति जैसी बनी हो वैसी ही दलीले हमे सूझा करती है और वे दूसरेके गले न उतरे तो हमे असन्तोष, अधीरता और अन्तमे रोष भी होता है।

इतनी बारीकीमे मै जानबूझकर गया हू। मै चाहता हू कि पाठक भिन्न-भिन्न दृष्टियोको समझे और जो अबतक वैसा न करते आये हो वे भिन्न-भिन्न दृष्टियोको समझने और उनका आदर करनेकी आदत डाले। सत्याग्रहका रहस्य समझने और खासकर इस अस्त्रको आजमानेके लिए ऐसी उदारता और ऐसी सहनशक्तिकी अति आवश्यकता है। इसके बिना सत्याग्रह हो ही नही सकता। यह पुस्तक कुछ लिखनेके शौकसे तो लिखी नही जा रही है। दक्षिण अफ्रीका-के इतिहासका एक प्रकरण जनताके आगे रखना भी उसका उद्देश्य नही। मेरा हेतु तो यह है कि जिस वस्तुके लिए मै जीना

हू, जीना चाहता हू और यह मानता हू कि जिसके लिए मरनेको भी उतना ही तैयार हूं, वह वस्तु कैसे पैदा हुई, उसका पहला सामुदायिक प्रयोग किस तरह किया गया, इसको सारी जनता जाने, समझे और जहातक पसन्द करे और उसकी शक्ति हो वहातक उसे अमलमे भी लाये ।

अब हम अपनी कहानीको फिर चलाये । हम यह देख चुके कि ब्रिटिश शासनाधिकारियोने यह निर्णय किया कि ट्रासवालमे नये आनेवाले हिंदुस्तानियोको रोके और पुराने बाशिन्दोकी स्थिति ऐसी कठिन कर दे कि वे ऊबकर ट्रासवाल छोड दे और न छोडे तो लगभग मजदूर बनकर ही रह सके। दक्षिण अफ्रीकाके महान माने जानेवाले कितने ही राजपुरुष एकाधिक बार कह चुके है कि इस देशमे हिंदुस्तानी लकडहारे और पानी भरने वालेके रूपमे ही खप सकते है । ऊपर जिस एशियाटिक विभागकी चर्चा की गई है उसके अधिकारियोमे मि० लायनल कर्टिस भी थे जो हिंदुस्तानमे रह चुके थे और दो अमली शासन पद्धति (डायर्की) की खोज और प्रचार करने-वालेके रूपमे प्रसिद्ध है । वह एक कुलीन घरानेके नौजवान है। कम-से-कम उस वक्त, १९०५-६ मे तो नौजवान ही थे। लार्ड मिलनरके विश्वासपात्र थे। हर कामको शास्त्रीय पद्धतिसे ही करनेका दावा करते थे, पर उनसे भारी भूले भी हो सकती थी। जोहान्सबर्गकी म्युनिसिपैलिटीको अपनी एक ऐसी ही गलतीसे १४ हजार पौडके घाटेमे डाल दिया था । उन्होने इस बातकी खोज की कि नये हिंदुस्तानियोका आना रोकना हो तो इस बारेमे सरकारका पहला कदम यह होना चाहिए कि हरएक पुराने हिंदुस्तानीका नाम-पता इस तौरपर दर्ज कर लिया जाय कि उसके बदले दूसरा इस देशमे दाखिल न हो सके और हो तो तुरत पकड लिया जाय । ट्रास-

वालमे अंग्रेजी राज्य कायम होनेके बाद हिंदुस्तानियोके लिए जो परवाने निकाले गए थे उनमे उनके हस्ताक्षर और जो हस्ताक्षर न कर सके तो उनके अगूठे की निशानी ली जाती थी। पीछे किसी अधिकारीने सुझाया कि उनका फोटो भी ले लिया जाय। यो फोटो, अगूठेकी निशानी और दस्तखत तीनो लिए जाने लगे। इसके लिए किसी कानून-कायदेकी जरूरत तो थी नही, अत नेताओको तुरत इसकी खबर भी नही हो सकी। धीरे-धीरे उन्हे इन नवीनताओकी खबर हुई। जनताकी ओरसे अधिकारियोके पास आवेदनपत्र भेजे गए, शिष्ट-मण्डल भी भेजे गए। अधिकारियोकी दलील यह थी कि चाहे जो आदमी चाहे जिस रीतिसे इस देशमे दाखिल हो जाय, यह हमसे सहन नही हो सकता। अत सभी हिंदुस्तानियोके पास एक ही तरहका परवाना होना चाहिए और उसमें इतना ब्योरा होना चाहिए कि परवाना पानेवाला असल आदमी ही उसके जरिए इस देशमे दाखिल हो सके, दूसरा कोई नही। मैंने यह सलाह दी कि यद्यपि कोई कानून तो ऐसा नही है जिसकी रूसे हम ऐसे परवाने रखनेको बधे हो, फिर भी जबतक शाति-रक्षा कानून मौजूद है तबतक ये लोग हमसे परवाना तो माग ही सकते है। जैसे हिंदुस्तानमे भारतरक्षा कानून (डिफेस आव इडिया ऐक्ट) था वैसे ही दक्षिण अफ्रीकामे शाति-रक्षा कानून (पीस प्रिजर्वेशन आर्डिनेन्स) था और जैसे हिंदुस्तानमे भारत-रक्षा कानून महज जनताको तग करनेके लिए ही लबी मुद्दततक कायम रखा गया वैसे ही यह शाति-रक्षा कानून भी महज हिंदुस्तानियोको हैरान करनेके लिए रख छोडा गया था। गोरोके ऊपर एक तरहसे उसका अमल बिल्कुल ही नही होता था। अब अगर परवाना लेना ही हो तो उसमे पहचानकी कोई निशानी तो होनी ही चाहिए। इसलिए जो लोग अपना नाम न लिख सकते हो उनका अगूठे-

की निशानी लगाना ठीक ही था। पुलिसवालोने यह बात ढूढ निकाली है कि दो आदमियोकी उगलियोकी रेखाए एकसी होती ही नही। उनके रूप और सख्याका उन्होने वर्गीकरण किया है और इस शास्त्रके जानकार दो अगूठोकी छापकी तुलना करके एक-दो मिनटमे ही कह सकते है कि वे अलग-अलग आदमियोके अगूठेकी है या एक ही आदमीके अगूठेकी। फोटो देना मुझे तो तनिक भी पसद नही था और मुसलमानोकी दृष्टिसे तो इसमे धार्मिक आपत्ति भी थी।

अन्तमे अधिकारियोके साथ हमारी बातचीतके फलस्वरूप यह तै पाया कि हरएक हिंदुस्तानी अपना पुराना परवाना देकर उसके बदलेमे नये नमूनेके परवाने बनवाले और नये आनेवाले हिंदुस्तानी नये नमूनेके परवाने ही ले। यह करना हिंदुस्तानियोका कानूनन फर्ज नही था, पर इस आशासे लगभग सभी भारतीयोने अपनी खुशीसे फिरसे परवाने लेना मंजूर कर लिया कि कही उनपर नई रुकावटे न लगादी जाय, दूसरे वे दुनियाको यह दिखा देना चाहते थे कि भारतीय जनता धोखा देकर किसीको इस देशमे नही घुसाना चाहती और शांतिरक्षा कानूनका उपयोग नये आनेवाले हिंदुस्तानियोको हैरान करनेके लिए न किया जायगा। यह कोई ऐसी-वैसी बात न थी। जो काम करना हिंदुस्तानियोंको कानूनसे तनिक भी फर्ज नही था उसे उन्होने पूरे एका और बडी ही शीघ्रतासे कर दिखाया। यह उनकी सचाई, व्यवहार-कुशलता, भलमनसी, समझदारी और नम्रताका चिह्न था। इस काममे भारतीय जनताने यह भी साबित कर दिया कि ट्रासवालके किसी भी कानूनका किसी भी रीतिसे उल्लघन करना वह चाहती ही नही। हिंदुस्तानी समझते थे कि जिस सरकारके साथ जो जनसमाज इतनी भलमनसीका बरताव करेगा वह उसे अपनायेगी, अपना विशेष प्रेमपात्र समझेगी। ट्रासवालकी ब्रिटिश सर-

कारने इस भारी भलमनसीका वदला किस प्रकार दिया, इसे हम अगले प्रकरणमे देखेगे ।

: ११ :

भलमनसीका वदला—खूनी कानून

परवानोका रद्दोवदल होनेतक हम १९०६ मे प्रवेश कर चुके थे । १९०३ मे मै ट्रासवालमे फिर दाखिल हुआ था । उस सालके लगभग मध्यमे मैने जोहान्सवर्गमे दफ्तर खोला । यानी दो वरस ऐशियाटिक महकमेके हमलोका सामना करनेमे ही गये । हम सवने मान लिया था कि परवानो का झगडा तै होते ही सरकारको पूरा सतोप हो जायगा और भारतीय जनताको कुछ शाति मिलेगी । पर उसके भाग्य-में शाति थी ही नही । मि० लायनल कर्टिसका परिचय पिछले प्रकरणमे दे चुका हू । उन्होने सोचा कि हिंदुस्तानियोके नये परवाने ले लेनेसे ही गोरोका उद्देश्य सिद्ध नही होता । उनकी दृष्टिमे वडे कामोका आपसके समझौतेसे होना ही काफी नही था । ऐसे कामोके पीछे कानूनका वल होना चाहिए । तभी उनकी शोभा है और उनके मूलभूत सिद्धातोकी रक्षा हो सकती है । मि० कर्टिसका विचार था कि हिंदुस्तानियोको जकडनेके लिए कोई ऐसा काम किया जाय जिसका असर सारे दक्षिण अफ्रीकापर पडे और अतमे दूसरे उपनिवेश भी उसका अनुकरण करे । उनकी रायमें जवतक दक्षिण अफ्रीका-का एक भी दरवाजा हिंदुस्तानियोके लिए खुला रहेगा तवतक ट्रासवाल सुरक्षित नही माना जा सकता । फिर उनकी दृष्टि-से सरकार और भारतीय जनताके वीच समझौता होनेसे तो भारतीय जनताकी प्रतिष्ठा और वढ जाती थी । उनका

इरादा इस प्रतिष्ठाको बढानेका नही, बल्कि घटानेका था। उनको हिंदुस्तानियोकी रजामदीकी जरूरत नही थी। वह तो चाहते थे उनपर बाहरी प्रतिबंध लगाकर उन्हे थर्रा देना। अत. उन्होने एशियाटिक ऐक्टका मसविदा बनाया और सरकारको सलाह दी कि जबतक इस मसविदेके अनुसार कानून बनकर तैयार नही हो जाता तबतक हिंदुस्तानियोका लुक-छिपकर ट्रासवालमे दाखिल होना रोका नही जा सकता और जो इस तरह यहा पहुच जाय उन्हे निकाल बाहर करनेकी प्रचलित कानूनोमे कोई व्यवस्था नही है। मि० कर्टिसकी दलीले और मसविदा सरकारको पसद आया और उसने इस मसविदेके अनुरूप बिल ट्रासवालकी धारा सभामे पेश करनेके लिए ट्रासवालके सरकारी गजटमे प्रकाशित कर दिया।

इस बिलकी तफसीलमे जानेके पहले एक महत्त्वकी घटनाकी चर्चा थोडे शब्दोमे कर देना आवश्यक है। सत्याग्रहकी प्रेरणा करनेवाला मै ही हू। इसलिए यह बहुत जरूरी है कि पाठक मेरी स्थितियोको पूरी तरह समझले। यो जब ट्रासवालमे हिंदुस्तानियोपर प्रतिबंध लगानेके प्रयत्न हो रहे थे, नेटालमे वहांके हबशियो—जुलू लोगोने बगावत कर दी। इस झगड़ेको बगावत कह सकते है या नही, इस बारेमे मुझे शका थी और आज भी है। फिर भी नेटालमे इस घटनाका परिचय सदा इसी नामसे दिया गया है। इस मौकेपर भी नेटालमे रहनेवाले बहुतसे गोरे इस विप्लवको शात करनेमे सहायता देनेके लिए स्वयसेवकके रूपमे सेनामे भरती हुए। मै भी नेटालका ही निवासी माना जाता था। इसलिए मैने सोचा कि मुझे भी उसमे काम करने चाहिए। भारतीय जनताकी अनुमति प्राप्तकर मैने सरकारको लिखा कि घायलोकी सेवा करनेवाली एक छोटी-सी टुकडी खडी करनेकी

इजाजत मुझे दे दी जाय। सरकारने प्रस्ताव स्वीकार किया। अत मैंने ट्रासवालका घर तोड दिया। बालबच्चोको नेटाल-मे उस खेतपर भेज दिया जहासे 'इडियन ओपीनियन' नामका साप्ताहिक अखबार निकाला जाता था और जहा मेरे सह-कारी रहते थे। दफ्तर कायम रखा, क्योकि मै जानता था कि मुझे इसमे बहुत दिन नही लगेगे।

२०-२५ आदमियोकी छोटीसी टुकडी खडी करके मै फौजमे शामिल हो गया। इस छोटी-सी टुकड़ीमे भी लगभग सभी जातियोके भारतीय थे। इस टुकडीको एक महीने सेवा करनी पडी। हमे जो काम सौंपा गया उसको मैंने सदा ईश्वर-का अनुग्रह माना है। मैंने देखा कि जो हब्शी जख्मी होते थे उन्हे हम ही उठाये तो वे उठे, नही तो वही पडे सडा करे। इन जख्मियोके जख्मोकी मरहम-पट्टी करनेमे कोई भी गोरा हाथ न बटाता। जिस शस्त्रवैद्य डा० सैवेजकी मातहतीमे हमें काम करना था वह स्वय अतिशय दयालु थे। घायलोको उठाकर अस्पताल पहुचा देनेके बाद उनकी सेवा-शुश्रूषा हमारे कार्य-क्षेत्रके बाहरकी बात हो जाती थी। पर हम तो यह सोच कर गए थे कि जो भी सेवा हमे सौंपी जाय वह हमारी कर्त्तव्य-परिधिके अन्दर ही होगी। अत इस भले डाक्टरने हमसे कहा कि मुझे कोई भी गोरा हब्शियोकी सेवा करनेके लिए नही मिलता और मुझमे यह शक्ति नही कि किसीको इसके लिए मजबूर कर सकू। आप यह दयाका काम करे तो आप-का अहसान मानूगा। हमने इस कामका स्वागत किया। कितने ही हब्शियोके जख्म पाच-पाच, छ-छ दिनसे साफतक नही किये गये थे, इससे उनसे दुर्गंध आ रही थी। इन सबको साफ करना हमारे सिर पडा और हमे यह सेवा बहुत रुची। हब्शी हमारे साथ बात तो कर ही नही सकते थे, पर उनकी चेष्टाओ और उनकी आखोमें हम यह देख सकते थे कि उनका

मन कह रहा है कि मानो भगवानने ही हमे उनकी सहायताके लिए भेज दिया हो। इस काममे अकसर हमे चालीस-चालीस मीलकी मंजिल करनी होती।

एक महीनेमे हमारा काम समाप्त हो गया। अधिकारियो-को संतोप हुआ। गवर्नरने कृतज्ञता-प्रकाशका पत्र लिखा। हमारी टुकडीमे तीन गुजराती थे, जिन्हे सार्जेंटका अधिकार दिया गया था। उनके नाम जानकर गुजरातियोको प्रसन्नता होगी। उनमे एक थे उमियाशंकर, दूसरे सुरेन्द्रराय मेढ और तीसरे हरिशंकर जोशी। तीनो कसे हुए बदनके थे और तीनोने बडी कडी मेहनत की। दूसरे भारतीयोके नाम मुझे इस वक्त याद नही आ रहे है। पर एक पठान भी उनमे था, यह मुझे अच्छी तरह याद है। यह भी याद है कि हम उसके बराबर बोझ उठा लेते थे और कूचमे भी उसके साथ-साथ रहते थे, यह देखकर उसे अचरज होता था।

इस टुकडीके कामके सिलसिलेमे मेरे दो विचार, जो अरसेसे मनमे धीरे-धीरे पक रहे थे, पूरी तरह पक गये। उनमे एक तो यह है कि सेवाधर्मका प्रधानपद देनेवालेको ब्रह्मचर्यका पालन करना ही चाहिए, दूसरा यह कि सेवाधर्म स्वीकार करनेवालेको गरीबीको सदाके लिए अपना लेना चाहिए। वह किसी ऐसे धधेमे न लगे जिससे सेवाधर्मके पालनमे उसे कभी सकोच होनेका अवसर आये, या उसमे तनिक भी रुकावट हो सके।

मै इस टुकडीमे काम कर रहा था तभी जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी ट्रासवाल लौट आनेकी चिट्ठिया और तार आ रहे थे। अत फिनिक्समे सब लोगोसे मिलकर मै तुरत जोहान्सबर्ग पहुचा और वहा वह बिल पढा जिसके बारेमे ऊपर लिख चुका हू। बिलवाला गजट २२ अगस्त १९०६ ई० का मै दफ्तरसे घर ले गया था। घरके पास एक

छोटीसी पहाडी थी। वहा अपने साथीको लेकर इस बिलका उलथा 'इडियन ओपीनियन' के लिए करने लगा। ज्यो-ज्यो मै उसकी धाराओको पढता गया त्यो-त्यो मेरा कलेजा अधिकाधिक कापने लगा। उसमे मै भारतीयोके द्वेषके सिवा और कुछ भी नही देख सका। मुझे दिखाई दिया कि अगर यह बिल पास हो गया और भारतीयोने उसे मजूर कर लिया तो दक्षिण अफ्रीकासे उनके पैर जडमूलसे उखड जायगे। मुझे स्पष्ट दिखाई दिया कि भारतीय जनताके लिए यह जीवन-मरणका प्रश्न है। मुझे यह भी दिखाई दिया कि अर्जी अब देनेसे सफलता नही मिली तो वह चुप नही बैठ सकती। इस कानूनके सामने सिर झुकानेसे मर मिटना बेहतर है। पर मरे कैसे? भारतीय जनता किस खतरेमे कूदे या कूदनेका साहस करे कि उनके सामने विजय या मृत्यु इन दोके सिवा तीसरा रास्ता रह ही न जाय? मेरे सामने तो ऐसी सगीन दीवार खडी हो गई कि मुझे रास्ता सूझा ही नही। जिस प्रस्तावित बिलने मेरे अतरमे इतनी हलचल मचा दी थी उसका ब्यौरा पाठकोको जान लेना ही चाहिए। उसका सार यह है:

"ट्रासवालमे रहनेका हक रखनेवाला हरएक भारतीय पुरुष, स्त्री और आठ बरस या इससे ऊपरका लडका-लडकी एशियाई दफ्तरमे अपना नाम दर्ज कराके परवाना हासिल करे। यह परवाना लेते समय पुराना परवाना अधिकारी (रजिस्ट्रार) को सौप दे। नाम दर्ज करनेकी अर्जीमे नाम, ठिकाना, जाति, उम्र आदि लिख दे। रजिस्ट्रार प्रार्थीके शरीरपर जो खास निशान हो उन्हे नोट कर ले और उसकी दसो उगलियो और अँगूठेका निशान ले ले। जो भारतीय स्त्री-पुरुष नियत अवधिके अदर ऐसी दरखास्त न दे, उसका ट्रासवालमे रहनेका हक रद हो जायगा। दरख्वास्त न देना कानूनन् अपराध माना जायगा। उसके लिए जेलकी सजा

मिल सकती है, जुर्माना किया जा सकता है और अदालत उचित समझे तो देशनिकालेका दड भी दे सकती है। बच्चो-की ओरसे मा-बापको दर्ख्वास्त देनी होगी और उगलियो-के निशान आदि लेनेके लिए उन्हे रजिट्रारके सामने हाजिर करनेकी जिम्मेदारी भी मा-बापपर होगी। मां-बापने इस कर्त्तव्यका पालन नही किया हो तो १६ बरसका होनेपर बालकको खुद यह फर्ज अदा करना चाहिए। उसके अदा न किये जानेपर मा-बाप जिस-जिस दडके पात्र होते है उस दडके अधिकारी १६ की उम्रको पहुचते हुए लडकी-लडके भी माने जायगे। प्रार्थीको जो परवाना या रजिस्टरीका सार्टिफिकेट दिया जाय उसे हर पुलिस अफसरके सामने, जब और जहा वह मागा जाय, पेश करना लाजिमी होगा। उसे पेश न करना अपराध माना जायगा और अदालत उसके लिए कैद या जुर्मानेकी सजा दे सकती है। राह चलते व्यक्तिसे भी परवाना पेश करनेको कहा जा सकता है। परवानेकी जाचके लिए पुलिस अफसर घरमे भी घुस सकते है। ट्रासवालके बाहरसे आनेवाले भार-तीय स्त्री-पुरुषको जाच करनेवाले अफसरके सामने अपना परवाना पेश करना ही होगा। कोई कामसे अदालतमे जाय या मालके दफ्तरमे व्यापार या बाइसिकिल रखनेको अनुमति-पत्र लेने जाय तो वहा भी अफसर उससे परवाना माग सकता है। अर्थात् कोई भारतीय किसी भी सरकारी दफ्तर-मे उस दफ्तरसे सबद्ध कार्यके लिये जाय तो अफसर उसकी प्रार्थना स्वीकार करनेसे पहले उससे उसका परवाना माग सकता है। उसे पेश करने या उसे रखनेवाले व्यक्तिसे अधिकारी इस बारेमे जो कुछ पूछे उसे बतानेसे इन्कार करना भी अपराध माना जायगा और अदालत उसके लिए भी जेल या जुर्मानेकी सजा दे सकती है।"

दुनियाके किसी भी हिस्सेमे स्वतत्र मनुष्योके लिए इस

तरहका कानून है, इसका पता मुझे नही है। मैं जानता हूं कि नेटालके गिरमिटिया हिंदुस्तानियोंके लिए परवानेका कानून बहुत सख्त है पर वे बेचारे तो स्वतंत्र लोग माने ही नहीं जा सकते। फिर भी कह सकते हैं कि उनके परवानेका कानून इस कानूनकी तुलनामें नरम है, और उस कानूनके तोड़नेकी सजा तो इस कानूनमें निर्दिष्ट दण्डके सामने कुछ भी नहीं है। लाखोंका कारबार करनेवाला रोजगारी इस कानूनके अनुसार देश निकालेकी सजा पा सकता है, यानी इस कानूनका भंग होनेसे उसके बिलकुल तबाह हो जानेकी स्थिति उत्पन्न हो सकती है। धैर्यवान् पाठक आगे चलकर देख सकेंगे कि इस अपराधकेलिए लोगोंको देशनिकालेकी सजा भी मिल चुकी है। जरायम पेशा जातियोंके लिए हिंदुस्तानमें कितना कड़ा कानून है। इस कानूनमें जो दसों उंगलियोंकी निशानी लेनेकी दफा थी वह तो दक्षिण अफ्रीकामें बिलकुल नई बात थी। इस विषयका कुछ साहित्य पढ जाना चाहिए, यह सोचकर मैं मि० हेनरी नामक पुलिस अफसर की लिखी हुई 'उंगलियोंकी निशानी' (फिंगर इंप्रेशन्स) पुस्तक पढ गया। उसमें मैंने देखा कि इस प्रकार कानूनन् उंगलियोंका निशान केवल अपराधियोंसे ही लिया जा सकता है। अतः जबर्दस्ती दसों उंगलियोंकी छाप लेनेकी बात मुझे अति भयानक लगी। स्त्रियोंको और वैसे ही १६ बरसके अंदरके लड़के-लड़कियोंको भी परवाना लेना होगा, यह बात इस बिलमें पहलेपहल रखी गई थी।

अगले दिन कुछ गण्यमान्य हिंदुस्तानियोंको इकट्ठा कर मैंने इस कानूनका अक्षर-अक्षर समझाया। फलतः उसका जो असर मुझपर हुआ था वही उनपर भी हुआ। उनमेंसे एक तो आवेशमें आकर बोल उठे—"कोई मेरी स्त्रीसे परवाना मांगने आया तो मैं उसको वहीं गोली मार दूंगा, पीछे मेरा जो होना हो वह होता रहे।" मैंने उन्हें शांत किया और सबको

सुनाकर कहा—"यह मामला बहुत ही गभीर है। यह बिल अगर पास हो गया और हमने उसे मान लिया तो उसका अनुकरण सारे दक्षिण अफ्रीकामे किया जायगा। मुझे तो उसका उद्देश्य ही इस देशमे हमारी हस्ती मिटा देना मालूम होता है। यह कानून आखिरी सीढी नही है, बल्कि हमे सताकर दक्षिण अफ्रीकासे भगा देनेका पहला कदम है। अत. हमपर केवल ट्रासवालमे बसनेवाले १०-१५ हजार हिदुस्तानियोकी ही जिम्मेदारी नही है, बल्कि दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय मात्रकी है। फिर अगर हम इस बिलका अर्थ पूरे तौरपर समझ सकते हो तो सपूर्ण भारतवर्षकी प्रतिष्ठाकी जिम्मेदारी भी हमपर ही आती है; क्योकि इस बिलसे केवल हमारा ही अपमान नही होता, बल्कि इसमे सारे हिदुस्तानका अपमान है। अपमानका अर्थ ही है निर्दोष व्यक्तिका मान भग होना। हम इस कानूनके पात्र है यह तो कोई कह ही नही सकता। हम निर्दोष है और राष्ट्रके एक भी निर्दोष व्यक्तिका अपमान सारे राष्ट्रका अपमान है। अत. इस कठिन अवसरपर हमने जल्दबाजीकी, अधीरता दिखाई, क्रोध किया तो उससे इस हमलेसे नही बच सकेगे। पर अगर शातिसे उपाय ढूढकर वक्तपर उसका अवलम्बन करे, आपसमे एकता रखे और अपमानका सामना करते हुए जो कष्ट पड़े उन्हे झेल ले तो मै मानता हू कि ईश्वर स्वय ही हमारी सहायता करेगा।" बिलकी गभीरता सबने समझ ली और यह निश्चय किया कि सार्वजनिक सभा करके कुछ प्रस्ताव पास किये जाय। यहूदियोकी एक नाटकशाला भाडेपर लेकर उसमे सभा की गई।

अब पाठक समझ सकते है कि इस प्रकरणके शीर्षकमे इस बिलका परिचय 'खूनी कानून' कहकर क्यो दिया गया है। यह विशेषण मैने इस प्रकरणके लिए नही गढा है,

बल्कि इस विशेषणका उपयोग दक्षिण अफ्रीकामे ही इस कानूनका परिचय देनेके लिए प्रचलित हो गया था।

: १२ :

सत्याग्रहका जन्म

१९०६ की ११ वी सितबरको उक्त नाटकशालामे सभा हुई। ट्रासवालके भिन्न-भिन्न नगरोसे प्रतिनिधि बुलाये गये। पर मुझे कबूल करना होगा कि जो प्रस्ताव मैने बनाये थे उनका पूरा अर्थ मै खुद नही समझ सका। उनसे क्या नतीजे निकलेगे, इसका भी अदाजा उस वक्त नही कर सका था। सभा हुई। नाटकशाला ठसाठस भर गई थी। कुछ नया करना है, कुछ नया होना है—यह भाव मै हरएकके चेहरेपर देख सकता था। ट्रासवाल ब्रिटिश इडियन एसोसियेशनके अध्यक्ष श्री अब्दुलगनी सभापतिके आसन पर विराज रहे थे। वह ट्रासवालके बहुत ही पुरानेवाले बाशिदोमेसे थे। मुहम्मद कासिम कमरुद्दीन नामक प्रसिद्ध फर्मके हिस्सेदार और उसकी जोहान्सबर्गकी शाखाके व्यवस्थापक थे। जो प्रस्ताव सभामे उपस्थित किये गये उनमे सच पूछिए तो एक ही महत्वका प्रस्ताव था। उसका आशय यह था कि इस बिलके विरोधमे सब उपाय करते हुए भी अगर वह पास हो जाय तो भारतीय उसके आगे सिर न झुकाए और सिर न झुकानेसे जो-जो कष्ट सहने पडे उन्हे सह ले।

यह प्रस्ताव मैने सभाको पूरी तरह समझा दिया। सभाने भी शातिसे उसे सुन लिया। सभाका सारा कामकाज तो हिंदी या गुजरातीमे ही होता था, इसलिए यह तो हो ही नही सकता था कि कोई भी उसकी कोई बात न समझ पाये।

हिंदी न समझनेवाले तामिल और तेलगू भाइयोके लिए उन भाषाओके बोलनेवाले सारी बातोको पूरे तौरपर समझा देते थे। प्रस्ताव नियम-पूर्वक उपस्थित किया गया। बहुतो-ने अनुमोदन-समर्थन भी किया। उनमे एक बोलनेवाले सेठ हाजी हबीब थे। ये भी दक्षिण अफ्रीकाके बहुत पुराने और अनुभवी बाशिंदे थे। उन्होने बडा ही जोशीला भाषण दिया। आवेशमे आकर यहातक कह गये—"यह प्रस्ताव हमे खुदाको साक्षी करके स्वीकार करना है। हमे चाहिए कि नामर्द बनकर इस कानूनके सामने कभी सिर न झुकाए। इसलिए मै खुदाकी कसम खाकर कहता हू कि हरगिज इस कानूनके ताबे न होऊगा। और मै इस सारे जलसेको सलाह देता हू कि सब लोग खुदाको साक्षी करके कसम खाय।"

प्रस्तावके समर्थनमे और भी तीखे और जोरदार भाषण हुए थे। सेठ हाजी हबीब जब बोल रहे थे और कसमकी बातपर पहुचे तो मै तुरत चौका और सावधान हो गया। तभी मै अपनी निजकी और कौमकी जिम्मेदारीको पूरे तौरपर समझ सका। कौमने अबतक कितने ही प्रस्ताव पास किये थे। अधिक विचार या नये अनुभवसे उनमे फेरफार भी किये गये। यह भी हुआ कि सबने उन निश्चयोपर अमल नही किया। स्वीकृत प्रस्तावमे रद्दोबदल, उससे सहमत हुए लोगोका इन्कार आदि सारी दुनियामे सार्वजनिक जीवनके सामान्य अनुभव है। पर ऐसे प्रस्तावोमे कोई ईश्वरका नाम बीचमे नही लाता। तात्त्विक दृष्टिसे विचार किया जाय तो निश्चय और ईश्वरका नाम लेकर की हुई प्रतिज्ञामे कोई अन्तर होनाही नही चाहिए। बुद्धिशाली मनुष्य सोच-समझकर कोई निश्चय करे तो उससे वह डिगता नही। उसकी निगाहमे उसका वजन ईश्वरको साक्षी करके की हुई प्रतिज्ञाके बराबर ही होता है। पर

दुनिया तात्त्विक निर्णयोसे नही चलती। ईश्वरको साक्षी बनाकर की हुई प्रतिज्ञा और सामान्य निश्चयके बीच वह जमीन-आसमानका अतर मानती है। सामान्य निश्चयको बदलनेमें निश्चय करने वाला शर्माता नही, पर प्रतिज्ञा करनेवाला अगर अपनी प्रतिज्ञाको तोडता है तो वह खुद तो शर्माता ही ह, समाजभी उसको धिक्कारता है और पापी समझता है। इन बातोकी जड इतनी गहरी हो गई है कि कानून भी कसम खाकर कही हुई बात झूठी ठहरे तो कसम खानेवालेको अपराधी मानता है और सख्त सजा मिलती है।

इन विचारोसे भरा हुआ मै जो प्रतिज्ञाओका अनुभवी था और उनके मीठे फल चख चुका था, ऊपर लिखी प्रतिज्ञाकी बात सुनकर भयसे स्तब्ध हो गया। उसके परिणाम एक क्षणमे मेरे मानसचक्षुके सामने आ गये। इस घबराहटसे जोश पैदा हुआ और यद्यपि मै इस सभामे प्रतिज्ञा करने या लोगोसे करानेका इरादा लेकर नही गया था फिर भी सेठ हाजी हबीबका सुझाव मुझे बहुत पसद आया। पर इसके साथ-साथ मैने यह भी सोचा कि इस प्रतिज्ञाके सारे नतीजोसे लोगोको वाकिफ करा देना चाहिए, प्रतिज्ञाका अर्थ स्पष्ट रूपसे समझा देना चाहिए। इसके बाद अगर वे प्रतिज्ञा कर सके तो उसका स्वागत करना चाहिए और न कर सके तो मुझे समझ लेना होगा कि अभी वे आखिरी कसौटीपर चढनेको तैयार नही हुए है। अत मैने सभापतिसे प्रार्थना की कि मुझे सेठ हाजी हबीबके कथनका अर्थ समझानेकी इजाजत दे। मुझे इसकी इजाजत मिल गई। मै उठा और जो कुछ कहा उसका खुलासा जैसा आज मुझे याद है वैसा नीचे दे रहा हू

"मै सभाको यह बात समझा देना चाहता हू कि आजतक जो प्रस्ताव हमने स्वीकार किये है और जिस रीतिसे स्वीकार किये है उन प्रस्तावो और उस रीतिसे इस प्रस्ताव और इसकी

रीतिमे भारी अतर है। यह प्रस्ताव अति गभीर है, क्योकि इसपर पूरा-पूरा अमल होनेपर दक्षिण अफ्रीकामे हमारी हस्ती-का रहना-मिटना अवलबित है। यह प्रस्ताव स्वीकार करने-की जो रीति हमारे भाईने सुझायी है वह जितनी गभीर है उतनी ही नवीन है। मै खुद इस रीतिसे निश्चय करानेका विचार करके यहा नही आया था। इस यशके अधिकारी अकेले सेठ हाजी हबीब है और इसकी जवाबदेही भी उन्हीपर है। उन्हे मै मुबारकवाद देता हूँ। इनका सुझाव मुझे बहुत रुचा है, पर आप उसे स्वीकार कर लेगे तो आप भी उनकी जिम्मेदारीमे साझी हो जाएगे। यह जिम्मेदारी क्या है, यह आपको समझ लेना चाहिए और कौमके सलाहकार और सेवकके रूपमे उसे पूरे तौरपर समझा देना मेरा फर्ज है।

"हम सभी एक ही सिरजनहारको माननेवाले है। उसको मुसलमान भले ही खुदा कहकर पुकारे, हिंदू भले ही उसको ईश्वरके नामसे भजे, पर है वह एक ही स्वरूप। उस-को साक्षी करके, उसको बीचमे रखकर हम कोई प्रतिज्ञा करे या कसम खाए, यह कोई ऐसी-वैसी बात नही है। ऐसी कसम खाकर अगर हम उससे फिर जाय तो हम कौमके, दुनिया-के और खुदाके सामने गुनहगार होगे। मै तो मानता हू कि सावधानीसे, शुद्धबुद्धिसे मनुष्य कोई प्रतिज्ञा करे और पीछे उसको तोड दे तो वह अपनी इसानियत, अपनी मनुष्यताको खो बैठता है। और जैसे पारा चढा हुआ ताबेका सिक्का रुपया नही है--यह मालूम होते ही उसकी कोई कीमत नही रहती, इतना ही नही, बल्कि उस खोटे सिक्केका मालिक दण्डका पात्र हो जाता है--वैसे ही झूठी कसम खाने-वालेकी भी कोई कीमत नही होती, बल्कि लोक-परलोक दोनोमे वह दण्डका अधिकारी होता है। सेठ हाजी हबीब ऐसी ही गभीर कसम खानेकी हमे सलाह दे रहे है। इस सभामे

ऐसा एक भी आदमी नही है जो वालक या नासमझ माना जा सके। आप सभी पुख्ता उम्रवाले है, दुनिया देखे हुए है, वहुतेरे तो प्रतिनिधि है और कमोवेश जिम्मेदारी भी उठा चुके है। अत इस सभामे एक भी आदमी नही है जो 'मैंने विना समझे प्रतिज्ञा कर दी थी' कहकर कभी उस वचनसे निकल सके।

"मै जानता हू कि प्रतिज्ञाए, व्रत आदि गभीर अवसरोपर ही लिए जाते है। उठते-वैठते प्रतिज्ञा करनेवाला जरूर ठोकर खायगा और गिरेगा। पर इस देशमे, अपने सामाजिक जीवनमे मै प्रतिज्ञा करने योग्य किसी अवसरकी कल्पना कर सकता हू तो वह अवसर अवश्य उपस्थित है। वहुत सम्हाल-कर और डर-डरके कदम उठाना वुद्धिमानी है। पर डर और सम्हालकी भी हद होती है। हम उस हदको पहुच गये है। सरकार सभ्यताकी मर्यादा लाघ गई है। हमारे चारो ओर जव उसने दावानल सुलगा दिया है तव भी हम वलिदानकी पुकार न करें और सोच-विचारमें पडे रहे तो हम नालायक और नामर्द सावित होंगे। अत यह अवसर शपथ लेनेका है, इस विपयमे तनिक भी शका नहीं। पर इस शपथकी शक्ति अपनेमे है या नही, यह हरएक को खुद सोच लेना होगा। ऐसे प्रस्ताव वहुमतसे पास नही किये जाते। जितने लोग कसम खाए उतने ही उस कसमसे वधेगे। ऐसी कसम दिखावेके लिए नही खाई जाती। उसका असर यहाकी सरकार, वडी (साम्राज्य) सरकार या भारत सरकारपर क्या होगा, इसका ख्याल कोई तनिक भी न करे। हरएक अपने हृदयपर हाथ रख उसको ही टटोले। अगर उसकी अन्त-रात्मा कहे कि तुममें शपथ लेनेकी शक्ति है तभी शपथ ले, तभी वह फलवती होगी।

"अव दो शव्द परिणामके विपयमे। वडी-से-वडी आशा

बांधे तो यह कह सकते है कि अगर सब लोग अपनी कसमपर कायम रहे और भारतीय जनताका बडा भाग कसम खा सके तो यह कानून (आर्डिनेस) या तो पास ही न होगा या पास होगा तो तुरत रद हो जायगा। कौमको अधिक कष्ट न सहना पडेगा। हो सकता है कि कुछ भी कष्ट न सहना पडे। पर कसम खानेवालेका धर्म जैसे एक ओरसे श्रद्धापूर्वक आशा रखना है, वैसे ही दूसरी ओरसे नितात आशा-रहित होकर कसम खानेको तैयार होना है। इसलिए मै चाहता हू कि हमारी लडाईमे जो कडवे-से-कडवे परिणाम हमारे सामने आ सकते है, उनकी तसवीर इस सभाके सामने खीचदू। मान लीजिए कि यहा उपस्थित हम सब लोग शपथ ले लेते है। हमारी सख्या अधिक-से-अधिक ३ हजार होगी। यह भी हो सकता है कि वाकीके १० हजार भारतीय कसम न खाय। शुरूमे तो हमारी हसी होनी ही है। फिर इतनी सारी चेतावनी दे देनेपर भी यह मुमकिन है कि कसम खाने वालोमे कुछ या बहुत-से पहली ही परीक्षामे कमजोर साबित हो जाय। हमे जेल जाना पडे, जेलमे अपमान सहने पडे। भूख-प्यास, सरदी-गरमी भी सहनी पडे। कडी मशक्कत करनी पडे। उद्धत दरोगाओ (वार्डरो) के कोडे खाने पडे। जुर्माना हो और कुर्कीमे हमारा माल-असबाब भी बिक जाय। लडनेवाले बहुत थोडे रह गये तो आज हमारे पास बहुत पैसा होते हुए भी हम कल कगाल हो जा सकते है। हमे देशनिकालेकी सजा भी मिल सकती है। जेलमे भूखे रहते और दूसरे कष्ट सहते हुए हममेसे कुछ बीमार हो सकते है और कोई मर भी सकता है। अर्थात्, थोडेमे कहा जा सकता है कि यह बात तनिक भी नामुमकिन नही कि जितने कष्टोकी कल्पना हम कर सकते है वे सभी हमे सहने पडे और समझदारी इसीमे है कि ये सारे कष्ट सहन करने होगे यह मानकर ही

हम कसम खाय। मुझसे कोई पूछे कि इस लडाईका अत क्या होगा और कब होगा तो मै कह सकता हू कि अगर सारी कौम परीक्षामे पूरी तरह उत्तीर्ण हो गई तो लडाईका फैसला बहुत जल्दी हो जायगा। पर अगर हममेसे बहुतसे सकटका सामना होनेपर फिसल गये तो लडाई लबी होगी। पर इतना तो मै हिम्मतके साथ और निश्चयपूर्वक कह सकता हू कि जबतक मुट्ठीभर लोग भी अपनी प्रतिज्ञापर दृढ रहनेवाले होगे तबतक इस युद्धका एक ही अत समझिये—अर्थात् इसमे हमारी जीत ही होगी।

"अब दो शब्द अपनी व्यक्तिगत जिम्मेदारीके बारेमे भी कह दू। यद्यपि मै प्रतिज्ञा करनेकी जोखिमोको बता रहा हू, पर साथ ही आपको शपथ खानेकी प्रेरणा भी कर रहा हू। इसमे मेरी अपनी जिम्मेदारी कितनी है, इसे मै पूरे तौरपर समझता हू। हो सकता है कि आवेशमे या गुस्सेमे आकर इस सभामे उपस्थित लोगोका बडा भाग प्रतिज्ञा करले, पर सकट-कालमे कमजोर साबित हो, और मुट्ठीभर लोग ही अतका ताप सहन करनेके लिए रह जाय। फिर भी मुझ जैसे आदमीकेलिए तो एक ही रास्ता होगा—'मर मिटना, पर इस कानूनके आगे सिर न झुकाना।' मै तो मानता हू कि मान लीजिये ऐसा होनेकी तनिक भी सभावना नही, फिर भी फर्ज कर लीजिए कि सब गिर गये और मै अकेला ही रह गया, तो भी मेरा विश्वास है कि प्रतिज्ञाका भग मुझसे हो ही नही सकता। यह कहनेका मतलब आप समझ ले। यह घमडकी बात नही, बल्कि खासतौरसे इस मचपर बैठे हुए नेताओको सावधान करनेकी बात है। अपनी मिसाल लेकर मै नेताओसे विनयपूर्वक कहना चाहता हू कि अगर आपमे अकेला रह जानेपर भी दृढ रहनेका निश्चय या वैसा करनेकी शक्ति न हो तो आप इतना ही न करे कि खुद प्रतिज्ञा न करे,

वल्कि लोगोके सामने यह प्रस्ताव रखकर उनसे प्रतिज्ञा कराई जाय, इसके पहले ही आप अपना विरोध लोगोपर प्रकट कर दे और अपनी सम्मति उसमे न दे । यह प्रतिज्ञा यद्यपि हम सव साथ मिलकर करना चाहते है तो भी कोई इसका यह अर्थ कदापि न करे कि एक या अनेक लोग अपनी प्रतिज्ञाको तोड दे तो दूसरे सहज ही उसके बधनसे मुक्त हो सकते है । हरएक अपनी-अपनी जिम्मेदारीको समझ कर स्वतत्र रूपसे प्रतिज्ञा करे और यह समझकर करे कि दूसरे कुछ भी करे, पर मै खुद तो मरते दम तक उसका पालन करूगा ही ।"

इस आशयका भाषण करके मै अपनी जगहपर वैठ गया । लोगोने अतिशय शातिसे उसका एक-एक शव्द सुना । दूसरे नेता भी वोले । सवने अपनी और श्रोताओकी जिम्मेदारीका विवेचन किया । सभापति उठे । उन्होने भी स्थितिको समझाया और अतमे सारी सभाने खडे होकर हाथ उठाकर और ईश्वरको साक्षी करके प्रतिज्ञा की कि यह कानून पास हो गया तो हम उसके आगे सिर न झुकाएगे । वह दृश्य मुझे तो कभी भूलनेका नही । लोगोके उत्साहकी सीमा न थी । अगले ही दिन इस नाटकशालामे कोई दुर्घटना हुई और सारी नाटकशाला जलकर खाक हो गई । तीसरे दिन लोग मेरे पास यह खवर लाये और कौमको यह कहकर मुवारकवाद देने लगे कि नाटकशालाका भस्म हो जाना शुभ शकुन है । जैसे नाटकशाला जल गई वैसे ही यह कानून भी एक दिन आगकी नजर हो जायगा । इन लक्षणोका मुझपर कभी असर न हुआ था । अत. मैने इस घटनाको कोई महत्त्व न दिया । यहा उसका उल्लेख केवल यह वतानेके लिए किया है कि लोगोमे इस समय कितना शौर्य और श्रद्धा थी । इन दोनो वातोके दूसरे वहुतसे चिह्न पाठक अगले प्रकरणोमे देखेगे ।

यह विराट सभा करनेके वाद काम करनेवाले वैठ नही रहे। जगह-जगह सभाए की गई और सर्वत्र सर्वसम्मतिसे प्रतिज्ञाए दुहराई गई। 'इडियन ओपीनियन'मे अव यह खूनी कानून ही चर्चाका मुख्य विपय था। दूसरी ओर स्थानीय (प्रादेशिक) सरकारसे मिलनेके भी यत्न किये गये। उपनिवेश सचिव मि० डन्कनके पास एक शिष्ट-मडल भेजा गया। प्रतिज्ञाकी वात उन्हे सुनाई गई। इस शिष्ट-मडलमे सेठ हाजी हवीव भी थे। उन्होने कहा—"कोई अफसर मेरी स्त्रीकी उगलियोका निशान लेने आया तो मै अपने गुस्सेको जरा भी कावूमे न रख सकूगा। मै उसको वही मार डालूगा और फिर अपने आपको खतम कर दूगा।" मत्री महोदय क्षण भर सेठ हाजी हवीवके मुहकी ओर ताकते रह गये। फिर कहा—"यह कानून औरतोपर लागू हो या नही, इस वारेमे सरकार विचार कर ही रही है। इतना इत-मीनान तो मै आप लोगोको अभी दिला सकता हू कि स्त्रियोसे सवध रखनेवाली धाराए वापस ले ली जाएगी। इस विपयमे आपकी भावनाको सरकार समझ सकती है और उसका लिहाज करना चाहती है। पर दूसरी दफाओके वारेमे तो मुझे खेदके साथ वता देना होगा कि सरकार दृढ है और रहेगी। जनरल वोथा चाहते है कि आप भली भाति सोच-विचारकर इस कानूनको मजूर कर ले। गोरोकी हस्तीके लिए सरकार उसको जरूरी समझती है। कानूनके मूल उद्देश्यकी रक्षा करते हुए व्यौरेके वारेमे आपको कोई सुझाव पेश करना हो तो सरकार उसपर अवश्य ध्यान देगी। शिष्ट-मडलको मेरी सलाह है कि अगर आप कानूनको स्वीकार करके तफसीलके वारेमे ही सुझाव पेश करे तो इसमे आपका हित है।" मत्री महोदयके साथ जो दलीले की गई उन्हे मै यहा नही देता, क्योकि वे सभी दलीले पीछे दी जा चुकी

है। उनके सामने रखनेमे भेद केवल भाषाका था। दलीले तो वही थी। मत्रीजीको यह सूचित करके कि आपकी सलाह होते हुए भी कोई इस कानूनको मजूर नही कर सकता और स्त्रियोको उससे मुक्त रखनेके इरादेके लिए सरकारको धन्यवाद देकर शिष्ट-मडलने उनसे बिदा ली। स्त्रियोकी मुक्ति भारतीय जनताके आन्दोलन की बदौलत हुई या सरकार-ने ही और विचार करके मि० कर्टिसकी शास्त्रीय पद्धतिको अस्वीकार करके कुछ लोक-व्यवहारका भी लिहाज किया, यह कहना कठिन है। सरकारी पक्षका कहना था कि सरकार-ने भारतीयोके आन्दोलनके कारण नही, बल्कि स्वतत्र रूपसे विचार करके ही यह निश्चय किया है। चाहे जो हो, पर भारतीय जनताने तो 'काकतालीय न्याय'से यह मान ही लिया कि यह उसके आन्दोलनका ही फल है और इससे लडनेका उत्साह बढा।

कौमके इस सकल्प या आन्दोलनको कौनसा नाम दिया जाय, यह हममेसे कोई नही जानता था। उस वक्त मै इस आन्दोलनको 'पैसिव रेजिस्टेस' कहता था। 'पैसिव रेजिस्टेस'-का अर्थ भी पूरी तरह नही समझता था। इतना ही समझा था कि किसी नई वस्तुका जन्म हुआ है। लडाई ज्यो-ज्यो आगे बढती गई त्यो-त्यो 'पैसिव रेजिस्टेस' नामसे उलझन पैदा होने लगी और इस महान् युद्धका अग्रेजी नामसे ही परिचय देना मुझे लज्जा-जनक जान पडा। फिर कौमकी जबानपर यह शब्द चढ भी नही सकता था। अत 'इडियन ओपीनियन' मे सबसे अच्छा नाम ढूढ निकालनेवालेके लिए छोटे-से इनामकी घोषणा की। कुछ नाम मिले। इस वक्त तक इस युद्धके अर्थ की 'इडियन ओपीनियन' मे भली भाति चर्चा हो चुकी थी। इससे प्रतियोगिता करनेवालोके पास खोजके लिए काफी मसाला हो गया था। मगनलाल गाधीने भी इस

प्रतियोगितामे भाग लिया। उन्होने 'सदाग्रह' नाम भेजा। इस शब्दको पसद करनेका कारण बताते हुए उन्होने लिखा कि हिंदुस्तानी कौमका यह आन्दोलन एक भारी आग्रह है और यह आग्रह 'सद्' अर्थात् शुभ है। इसलिए यह नाम पसद किया। उनकी दलीलका सार मैने थोडेमे दिया है। मुझे यह नाम रुचा। फिर भी जिस वस्तुका समावेश मै करना चाहता था उसका समावेश उसमे नही होता था। इसलिए मैने 'द' को 'त्' करके और उसमे 'य' जोडकर 'सत्याग्रह' नाम बनाया। सत्यमे शातिका अतर्भाव माना और आग्रह किसी भी वस्तुका किया जाय तो उसमेसे बल उत्पन्न होता है। अत आग्रहमे बलका भी समावेश किया, और भारतीय आन्दोलनको 'सत्याग्रह' अर्थात् शातिसे उत्पन्न होनेवाले बलके नामसे पुकारना शुरु किया। तभीसे इस सग्रामके लिए 'पैसिव रेजिस्टेस' शब्दका उपयोग बद कर दिया गया, यहातक कि अग्रेजी लेखोमे भी 'पैसिव रेजिस्टेस' का उपयोग त्याग दिया और उसके बदले 'सत्याग्रह' या कोई दूसरा अग्रेजी शब्द लिखना आरभ किया। इस प्रकार जिस वस्तुका परिचय सत्याग्रहके नामसे दिया जाने लगा उस वस्तु और सत्याग्रह नामका जन्म हुआ। अपने इतिहासको आगे बढानेके पहले 'पैसिव रेजिस्टेस' और 'सत्याग्रह' का भेद हम समझ ले, यह जरूरी है। इसलिए अगले प्रकरणमे हम यह भेद समझेगे।

: १३ :

'सत्याग्रह' बनाम 'पैसिव रेजिस्टेंस'

आन्दोलन ज्यो-ज्यो आगे बढता गया त्यो-त्यो अग्रेजोमे

भी उससे दिलचस्पी होती गई। मुझे यह बता देना चाहिए कि यद्यपि ट्रासवालके अग्रेजी अखबार आम तौरसे खूनी कानूनके पक्षमे ही लिखते थे और गोरोके विरोधका समर्थन करते थे, फिर भी कोई प्रसिद्ध भारतीय उनको कुछ लिख भेजता तो वे खुशीसे उसको छापते थे। भारतीय सरकारके पास जो अर्जिया भेजते उन्हे भी पूरा-पूरा या उनका सार प्रकाशित कर देते। बडी सभाओमे कभी-कभी अपने रिपोर्टर भेजते और जब ऐसा न होता तो जो रिपोर्ट हम लिखकर भेज देते वह छोटी होती तो छाप देते।

यह भलमनसी भारतीय जनताके लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुई और आन्दोलन बढनेपर कुछ प्रमुख यूरोपियन भी उसमे रस लेने लगे। इन मुखियोमे जोहान्सबर्गके लखपती मि० हॉस्किन भी थे। इनमे वर्ण-द्वेष तो आदिसे ही नही था। पर आन्दोलन आरभ होनेके बाद हिंदुस्तानियोके मसलेसे उन्हे गहरी दिलचस्पी हो गई। जर्मिस्टन नामका एक नगर है जो जोहान्सबर्गका उपनगर-सा है। वहाके गोरोने मेरा भाषण सुननेकी इच्छा प्रकट की। सभा हुई। मि० हॉस्किनने उसमे हमारे आन्दोलनका और मेरा परिचय देते हुए कहा—"ट्रासवालके भारतीयोने न्याय प्राप्तिके लिए, दूसरे उपाय निष्फल हो जानेपर 'पैसिव रेजिस्टेस' का अवलबन किया है। उन्हे चुनावमे मत देनेका अधिकार नही। उनकी सख्या थोडी है। वे निर्बल है, उनके पास हथियार नही। इसलिए उन्होने 'पैसिव रेजिस्टेस' को, जो निर्बलोका हथियार है, ग्रहण किया है।" यह सुनकर मै चौका और जो भाषण करने मै गया था उसने दूसरा ही रूप ले लिया। मि० हॉस्किनकी दलीलका खडन करते हुए मैने 'पैसिव रेजिस्टेस' को 'सोल-फोर्स' यानी आत्मबल बताया। इस सभामे मैने देखा कि 'पैसिव रेजिस्टेस' शब्दके उपयोगसे भयानक भ्रम होनेकी
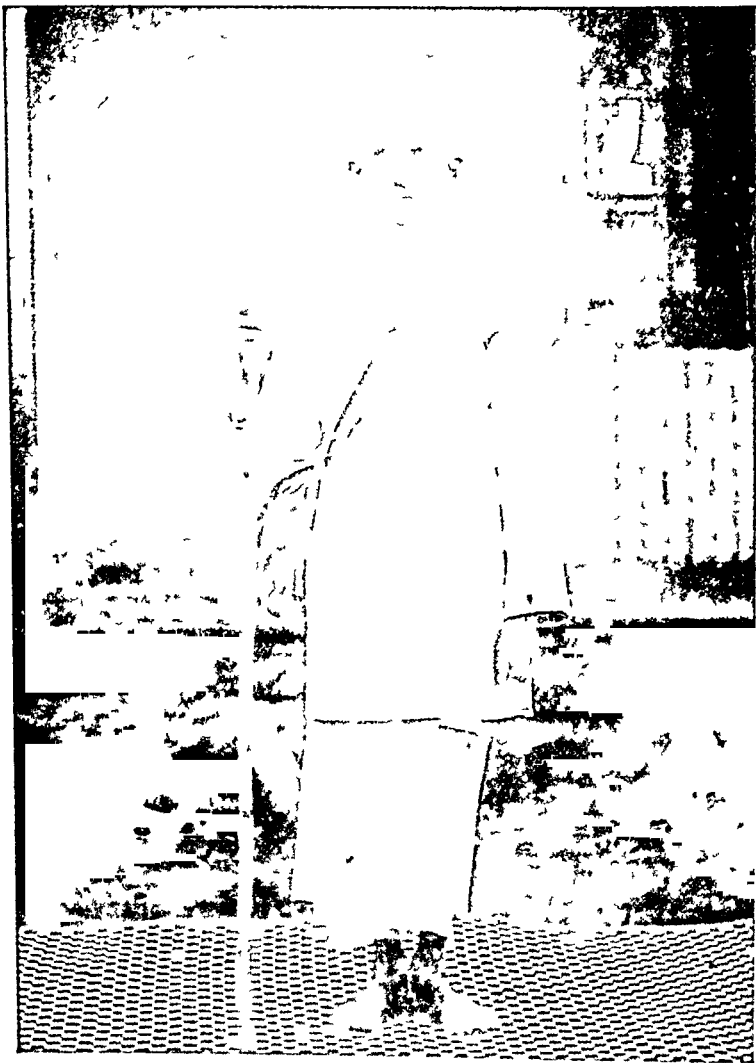
सत्याग्रही गांधी

सभावना है। सभामे दी हुई दलील और 'पैसिव रेजिस्टेस' और आत्मबलका भेद समझानेके लिए जो कुछ और कहनेकी आवश्यकता है उसे मिलाकर मै दोनोके बीच रहनेवाले विरोधको समझानेकी कोशिश करूगा।

'पैसिव रेजिस्टेस' इन दो शब्दोका उपयोग अग्रेजी भाषामे पहले-पहल किसने किया और कब किया, इसका पता तो मुझे नही है। पर ब्रिटिश जनतामे जब-जब किसी छोटे समुदायको कोई कानून पसद नही आया तब-तब उसने उस कानूनके विरुद्ध विद्रोह करनेके बदले उस कानूनके सामने सिर न झुकानेका 'पैसिव' अर्थात् हलका कदम उठाया और उसके फलस्वरूप जो सजा मिले उसे भुगत लेना पसद किया। कुछ बरस पहले जब ब्रिटिश पार्लमेटने शिक्षाका कानून (एजूकेशन-ऐक्ट) पास किया तब डाक्टर क्लिफर्डके नेतृत्वमे 'नान-कनफार्मिस्ट' नामक ईसाई सम्प्रदायने 'पैसिव रेजिस्टेस'का अवलबन किया था। इगलैडकी स्त्रियोने मताधिकार पानेके लिए जो जबर्दस्त आन्दोलन किया था उसे भी 'पैसिव रेजिस्टेस'का नाम दिया गया था। इन दोनो आन्दोलनोको ध्यानमे रखकर ही मि० हॉस्किनने कहा कि 'पैसिव रेजिस्टेस' निर्बल अथवा मताधिकार-रहितका हथियार है। डाक्टर क्लिफर्डके पक्षको मताधिकार प्राप्त था, पर आम सभामे उसकी सख्या इतनी कम थी कि वह वोटके बलसे शिक्षा-कानूनका पास होना नही रोक सका, अर्थात् यह पक्ष सख्याबलमे कमजोर ठहरा। अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिए यह पक्ष शस्त्रका उपयोग कभी करता ही नही, सो बात नही थी। पर इस काममे उसका उपयोग करके वह सफल नही हो पाता। सुव्यवस्थित राज्यतत्रमे हर वक्त बकायदा बगावत करके ही हक हासिल करनेका तरीका चल ही नही सकता। फिर डाक्टर क्लिफर्डके पक्षके कुछ ईसाई सामान्य रीतिमे हथियारका इस्तेमाल हो

सकता हो तो भी उसका विरोध करते। स्त्रियोके आन्दोलनमे मताधिकार तो था ही नही। सख्या और शरीर-बलमे भी वे कमजोर थी। अत यह उदाहरण भी मि० हॉस्किनकी दलीलका पोषण ही करता था। स्त्रियोके आन्दोलनमे हथियारके उपयोगका त्याग नही किया गया था। उनके एक पक्षने तो मकानोमे आग लगाई और पुरुषोपर हमला भी किया। किसीकी हत्या करनेका इरादा उन्होने कभी किया हो यह तो मै नही सोचता, पर मौका मिलनेपर लोगोकी मरम्मत करना और इस प्रकार कुछ-न-कुछ उपद्रव खड़े करते रहना तो अवश्य उनका उद्देश्य था।

पर हिंदुस्तानियोके आन्दोलनमे हथियारके लिए तो कही और किसी भी स्थितिमे स्थान ही नही था, और ज्यो-ज्यो हम आगे बढेगे पाठक देखेगे कि बडे-बडे कष्ट पडनेपर भी सत्याग्रहियोने शरीरबलसे काम नही लिया और वह भी ऐसे मौकोपर जब इस बलका सफलता-पूर्वक उपयोग करनेमे वे समर्थ थे। फिर हिंदुस्तानियोको मताधिकार नही था और वे कमजोर थे यह दोनो बाते सही है। फिर भी आन्दोलनकी योजनाका इनके साथ कोई सबध नही था। यह कहनेमे मेरा आशय यह नही है कि भारतीय जनताके पास मताधिकारका या हथियारका बल होता तो भी वह सत्याग्रह ही करती। मताधिकारका बल हो तो सत्याग्रहके-लिए बहुत करके अवकाश ही नही होता। हथियारका बल हो तो विपक्षी अवश्य सम्हलकर चलता है। अत यह भी समझमे आनेवाली बात है कि हथियार-बलवालेके लिए सत्याग्रहके अवसर थोड़े ही आएगे। मेरे कहनेका तात्पर्य इतना ही है कि मै निश्चयपूर्वक कह सकता हू कि भारतीय आन्दोलनकी कल्पनामे शस्त्रबलकी शक्यता-अशक्यताका सवाल मेरे मनमे उठा ही नही। सत्याग्रह केवल आत्माका बल है और जहा

और जितने अशमे हथियार यानी शरीरबल या पशुबलका उपयोग होता हो या सोचा जाता हो वहा उतने अशमे आत्म-बलका कम उपयोग होता है। मै मानता हू कि ये दोनो शुद्ध विरोधी शक्तिया है और आन्दोलनके जन्मकालमे भी यह विचार मेरे मनमे पूरा-पूरा बैठ गया था।

पर यहा हमे इसका निर्णय नही करना है कि ये विचार योग्य है या अयोग्य। हमे तो केवल 'पैसिव रेजिस्टेंस' और सत्याग्रहके बीचके अतरको ही समझ लेना है। हमने यह देख लिया कि इन दोनो शक्तियोके बीच मूलमे ही बहुत बडा अतर है। इस भेदको समझे बिना अपने आपको 'पैसिव रेजि-स्टर' या सत्याग्रही माननेवाले दोनोको एक ही चीज मान ले तो यह दोनोके साथ अन्याय है और इसके बुरे नतीजे भी होगे। हम खुद दक्षिण अफ्रीकामे 'पैसिव रेजिस्टेंस' शब्दका उपयोग किया करते थे। उससे मताधिकारके लिए लडने-वाली स्त्रियोकी वीरता और आत्मबलका हमपर आरोप करके हमे यश देनेवाले तो बहुत थोडे होते, पर हम भी उन स्त्रियोकी तरह लोगोके जान-मालको नुकसान पहुचानेवाले मान लिये जाते और मि० हॉस्किन जैसे उदार हृदयके सच्चे मित्रने भी हमे कमजोर मान लिया। विचारमे यह बल है कि मनुष्य अपने आपको जैसा मानता है अतमे वैसा ही बन जाता है। हम यह मानते रहे कि हम निर्बल है, इसलिए निरुपाय होकर 'पैसिव रेजिस्टेंस' का उपयोग कर रहे है और दूसरोसे भी यही मनवाया करे तो 'पैसिव रेजिस्टेंस' करते हुए हम कभी बलवान हो ही नही सकेगे और मौका मिलते ही इन निर्बलोके हथियारको फेक देगे। इसके विपरीत अगर हम सत्याग्रही हो और अपने आपको सबल मानकर इस ताकतको इस्तेमाल करे तो इसके दो स्पष्ट परिणाम होते है। इसके विचारका पोषण करते हुए हम दिन-दिन अधिक बलवान होते जाते है

और ज्यो-ज्यो हमारा बल बढता जाता है त्यो-त्यो सत्याग्रहका तेज बढता जाता है और इस शक्तिका उपयोग छोड देनेका मौका हम कभी ढूढते ही नही। फिर 'पैसिव रेजिस्टेस'मे जहा प्रेम-भावका अवकाश नही, वहा सत्याग्रहमे वैरभावके लिए अवकाश नही। इतना ही नही, बल्कि वह अधर्म माना जायगा। 'पैसिव रेजिस्टेस' मे मौका मिले तो शस्त्र-बलका उपयोग किया जा सकता है, सत्याग्रहमे शस्त्र-बलके उपयोगके लिए अच्छे-से-अच्छे अवसर उपस्थित हो तो भी वह सर्वथा त्याज्य है। 'पैसिव रेजिस्टेस' अक्सर शस्त्र-बलके उपयोगकी तैयारी समझा जाता है। सत्याग्रहका उपयोग इस रूपमे किया ही नही जा सकता। 'पैसिव रेजिस्टेस' हथियारकी ताकतके साथ-साथ चल सकता है। सत्याग्रह तो शस्त्र-बलका नितान्त विरोधी है। इसलिए दोनोका मेल कभी मिल ही नही सकता, यानी दोनोका साथ निभ ही नही सकता। सत्याग्रहका उपयोग अपने प्रिय जनोके साथ भी हो सकता है और होता है, 'पैसिव रेजिस्टेस' का उपयोग वस्तुत प्रियजनोके साथ हो ही नही सकता, अर्थात् प्यारोंको वैरी मानिये तभी उसके साथ 'पैसिव रेजिस्टेस' किया जा सकता है। 'पैसिव रेजिस्टेस'-मे विपक्षको दु ख देने, हैरान करनेकी कल्पना सदा विद्यमान रहती है और उसे दु ख देते हुए खुद कष्ट सहना पडे तो उसे सह लेनेको तैयार रहना होता है। पर सत्याग्रहमे विरोधीको दु ख देनेका खयाल तक नही होना चाहिए। उसमे तो स्वय दु खको मोल लेकर-सहकर विरोधीको जीत लेनेकी ही बात सोची जानी चाहिए।

इस प्रकार इन दो शक्तियोके बीचके मुख्य भेद मैने गिना दिये। मेरे कहनेका यह मतलब नही कि 'पैसिव रेजिस्टेस' के जो गुण—या दोष कहिए—मैने गिनाये है वे हर प्रकारके 'पैसिव रेजिस्टेस'मे पाये जाते है। पर यह दिखाया जा सकता है कि

'पैसिव रेजिस्टेंस' के बहुतेरे उदाहरणोंमें ये दोष देखनेमें आये हैं। मुझे यह भी पाठकोंको बता देना चाहिए कि ईसा मसीहको बहुतसे ईसाई 'पैसिव रेजिस्टेंस' के आदि-नेताके रूपमें मानते हैं, पर वहां तो 'पैसिव रेजिस्टेंस' का अर्थ शुद्ध सत्याग्रह ही मानना चाहिए। इस अर्थमें 'पैसिव रेजिस्टेंस' के अधिक उदाहरण इतिहासमें नहीं मिलते। टॉल्स्टॉयने रूसके दूखोबोर लोगोंकी मिसाल दी है। वह ऐसे ही 'पैसिव रेजिस्टेंस' यानी सत्याग्रहकी है। हजरत ईसाके बाद हजारों ईसाइयोंने जो जुल्म बर्दाश्त किये हैं उस वक्त 'पैसिव रेजिस्टेंस' शब्दका उपयोग होता ही नहीं था। अतः उनके समान निर्मल उदाहरण जो मिलते हैं उन्हें मैं तो सत्याग्रह ही कहूंगा और अगर आप उन्हें 'पैसिव रेजिस्टेंस'की मिसाल मानें तो 'पैसिव रेजिस्टेंस' और सत्याग्रहमें कोई भेद नहीं रहता। इस प्रकरणका उद्देश्य तो यह दिखाना है कि अंग्रेजीमें 'पैसिव रेजिस्टेंस' शब्दका व्यवहार आमतौरसे जिस अर्थमें होता है, सत्याग्रहकी कल्पना उससे बिल्कुल जुदी है।

जैसे 'पैसिव रेजिस्टेंस' के लक्षण गिनाते हुए, इस शक्तिका उपयोग करनेवालेके साथ किसी भी रीतिसे अन्याय न हो इस खयालसे मुझे ऊपर लिखी चेतावनी देनी पड़ी है, वैसे ही सत्याग्रहके गुण गिनाते हुए मुझे यह बता देना भी जरूरी है कि जो लोग अपने आपको सत्याग्रही कहते हैं उनकी ओरसे मैं इन सारे गुणोंका दावा नहीं करता। मैं इस बातसे अनभिज्ञ नहीं हूं कि सत्याग्रहके जो गुण मैंने ऊपर बताये हैं उनसे कितने ही सत्याग्रही निरे अनजान हैं। बहुतेरे यह मानते हैं कि सत्याग्रह निर्बलोंका हथियार है। कितनोंके मुंहसे मैंने यह भी सुना है कि सत्याग्रह शस्त्र-बलसे काम लेनेकी तैयारी है। पर मुझे फिरसे कह देना चाहिए कि सत्याग्रही जिन गुणोंसे युक्त देखनेमें आते हैं यह मैंने नहीं बताया है, बल्कि यह दिखानेका यत्न

किया है कि सत्याग्रहकी कल्पनामे कौन-कौनसी बाते है और उसके अनुसार सत्याग्रहीको कैसा होना चाहिए। जिस शक्तिसे काम लेना ट्रासवालमे भारतीयोने आरभ किया, पाठक उस शक्तिको स्पष्ट रूपसे समझ ले और वह शक्ति 'पैसिव रेजिस्टेस' के नामसे परिचित शक्तिके साथ मिला न दी जाय, इस विचारसे इस शक्तिके अर्थका सूचक शब्द ढूढना पडा और उस वक्त उसमे किन-किन वस्तुओका समावेश माना गया था, यही बता देना, थोडेमे, इस प्रकरणके लिखनेका उद्देश्य है।

: १४ :

विलायतको शिष्ट-मण्डल

ट्रासवालमे खूनी कानूनके खिलाफ अर्जिया आदि भेजनेके जो-जो काम करने थे सब कर दिये गए। धारा सभाने स्त्रियोसे सबध रखनेवाली दफा निकाल दी। बाकीका बिल लगभग उसी रूपमे पास हुआ जिस रूपमे प्रकाशित हुआ था। कौममे इस वक्त भरपूर हिम्मत थी और उतना ही एका और एकमतता भी। अत. कोई निराश नही हुआ। फिर भी कोई वैध उपाय उठा न रखनेका निश्चय भी कायम रहा। ट्रासवाल इस वक्त 'क्राउन कॉलोनी था। 'क्राउन कॉलोनी' का शब्दार्थ है बादशाही उपनिवेश, अर्थात् ऐसा उपनिवेश जिसके कानून, शासन-प्रबध आदिके लिए बडी सरकार जवाबदेह समझी जाती है। अत जो कानून शाही उपनिवेशकी धारा सभा पास करे उनपर बादशाहकी मजूरी महज रस्म और सौजन्यकी रक्षाके लिए नही लेनी होती, बल्कि जो कानून ब्रिटिश विधानके सिद्धातके विरुद्ध हो उस कानूनको बादशाह अपने मत्रिमडलकी सलाहसे स्वीकृति

देनेसे इन्कार कर सकता है, और ऐसा करनेके मौके भी काफी आते है। इसके विपरीत उत्तरदायी शासन-व्यवस्था (रस्पासिवल गवर्नमेट) वाले उपनिवेशकी धारा सभा जो कानून बनाये उसके लिए बादशाहकी मजूरी मुख्यत सौजन्य-की खातिर ही ली जाती है।

शिष्ट-मण्डल इगलैड जाय तो कौमको अपनी जिम्मेदारी और अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए। इसे बतानेका भार मेरे ही सिर रहा। इसलिए मैने अपने मडलके सामने तीन सुझाव रखे। एक तो यह कि यद्यपि यहूदी नाटकशाला (इम्पायर थियेटर) वाली सभामे हम प्रतिज्ञाए कर चुके है फिर भी प्रमुख भारतीयोसे फिरसे व्यक्तिगत प्रतिज्ञा करा लेनी चाहिए जिससे लोगोके मनमे कोई शका या कमजोरी आ गई हो तो मालूम हो जाय। यह सुझाव पेश करनेमे मेरी एक दलील यह थी कि शिष्ट-मण्डल सत्याग्रहके बलसे जाय तो निर्भय होकर जाय और कौमका निश्चय विलायतमे उपनिवेश मन्त्रि और भारत सचिवके सामने निर्भयताके साथ रख सके। दूसरा यह कि शिष्ट-मण्डलके खर्चका पूरा बदोवस्त पहलेसे ही हो जाना चाहिए। तीसरा यह कि शिष्ट-मडलमे कम-से-कम आदमी जाय। अक्सर लोगोका यह खयाल देखनेमे आता है कि ज्यादा आदमी जाय तो ज्यादा काम हो सकता है। इसीसे यह सूचना की गई। शिष्ट-मण्डलमे जानेवाले अपने सम्मानके लिए नही, बल्कि शुद्ध सेवाके उद्देश्य-से जाय इस विचारको सामने लाने और खर्च बचानेकी व्यावहारिक दृष्टि इस सुझावमे थी। तीनो सुझाव मजूर हुए। प्रतिज्ञा-पत्रपर लोगोसे हस्ताक्षर कराये गये। बहुतोने हस्ताक्षर किये। पर मैने देखा कि जो लोग सभामे प्रतिज्ञा कर चुके थे उनमे भी कुछ ऐसे थे जो दस्तखत करते हिचकते थे। एक बार कोई प्रतिज्ञा कर चुकनेके बाद उसे फिर पचास बार

दुहराना पड़े तो इसमे हिचक होनी ही नही चाहिए। फिर भी किसे यह अनुभव नही हुआ है कि लोगोने जो प्रतिज्ञा सोच-समझकर की हो उसमे भी पीछे ढीले पड जाते है या मुहसे की हुई प्रतिज्ञाको लिखते हुए घवराते है? पैसा भी हमारे अदाजके अनुसार इकट्ठा हो गया। सवसे अधिक कठिनाई प्रतिनिधियोके चुनावमे पड़ी। मेरा नाम तो था ही। पर मेरे साथ कौन जाय? इस विचारमे कमेटीने वहुत वक्त गुजारा, कितनी ही राते वीत गई और सभा-समितियोमे जो वुरी आदते देखनेमे आती है उनका अनुभव पूरे तौरपर हुआ। कोई कहता कि अकेले गाधी ही जाय, इससे सवका सतोष हो जायगा। पर मैंने ऐसा करनेसे साफ इन्कार कर दिया। मोटे हिसाबसे यह कह सकते है कि दक्षिण अफ्रीकामे हिंदू मुसलमानका सवाल नही था, पर यह दावा नही किया जा सकता कि दोनो कौमोके वीच जरा भी अतर नही था। और इस भेदने कभी जहरीली शक्ल नही अख्तियार की तो इसका कारण वहाकी विचित्र परिस्थिति किसी हदतक भले ही हो, पर इसका असल और पक्का कारण तो यही है कि नेताओने एकनिष्ठा और सच्चे दिलसे अपना काम किया और कौमको सही रास्ता दिखाया। मेरी सलाह यह थी कि मेरे साथ एक मुसलमान सज्जनको तो होना ही चाहिए और दोसे अधिक आदमियोकी जरूरत नही, पर हिंदुओकी ओरसे तुरत कहा गया कि आप तो सारी कौमके प्रतिनिधि माने जाते है, इसलिए हिंदुओका भी एक प्रतिनिधि होना ही चाहिए। कुछ यह भी कहते कि एक प्रतिनिधि कोकणी मुसलमानोका, एक मेमनोका और हिंदुओमे एक किसानोका और एक अनाविल लोगोका होना चाहिए। इस प्रकार अनेक जातियोके दावे पेश हुए। अतमे सव समझ गये और हाजी वजीर अली और मै यही दो आदमी एकमतसे चुने गये।

हाजी वजीर अली आधे मलायी कहे जा सकते है। उनके बाप हिंदी मुसलमान और मा मलायी थी। इनकी मादरी जवान डच कही जा सकती है, पर अंग्रेजी भी इतनी पढ ली थी कि डच और अंग्रेजी दोनो अच्छी तरह बोल सकते थे। अंग्रेजीमे भाषण करनेमे उन्हे कही अटकना नही पडता। अखबारोमे पत्र लिखनेका अभ्यास भी कर लिया था। ट्रासवाल ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशनके सदस्य थे और लबे अरसेसे सार्वजनिक कामोमे हिस्सा लेते आ रहे थे। हिंदुस्तानी भी अच्छी तरह बोल लेते थे। उनका व्याह एक मलायी स्त्रीसे हुआ था और इस स्त्रीसे उनके बहुतसे बाल-बच्चे थे। विलायत पहुचते ही हम दोनो काममे जुट गये। उपनिवेश सचिव और भारत सचिवके सामने जो आवेदनपत्र पेश करना था उसका मसविदा तो जहाजपर ही बना लिया था। उसको छपा डाला। लार्ड एल्गिन उपनिवेश मत्री थे, लार्ड मॉर्ले भारत-मत्री थे। हम हिंदके दादा (दादाभाई नवरोजी) से मिले। फिर उनके जरिये काग्रेसकी ब्रिटिश कमेटीसे मिले। हमने अपना पक्ष उसे सुनाया और बताया कि हम तो सब पक्षोको साथ लेकर काम करना चाहते है। दादाभाईको तो यह सलाह थी ही। कमेटीको भी यह ठीक जान पडा। इसी तरह हम सर मचेरजी भावनगरीसे मिले। उन्होने भी खूब मदद की। उनकी और दादाभाईकी भी सलाह थी कि लार्ड एल्गिनके पास जो शिष्ट-मण्डल जाय उसका नेता कोई तटस्थ और प्रसिद्ध एग्लो इंडियन बनाया जा सके तो अच्छा है। सर मचेरजीने कुछ नाम भी सुझाए। उनमे सर लेपल ग्रिफिनका भी नाम था। पाठकोको जान लेना चाहिए कि सर विलियम विल्सन हटर उस वक्त जीवित नही थे। वह होते तो दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोकी स्थितिसे उनका गहरा परिचय होनेके कारण वही शिष्ट-मण्डलके नेता हुए होते या उन्होने

उमराव (लार्ड) वर्गके किसी वडे नेताको इस कामके लिए ढूढ दिया होता।

हम सर लेपल ग्रिफिनसे मिले। उनकी राजनीति तो हिंदुस्तानमे चलते हुए सार्वजनिक आन्दोलनोकी विरोधी ही थी; पर इस मसलेसे उनको गहरी दिलचस्पी हो गई और सौजन्यकेलिए नही, वल्कि न्यायकी दृप्टिसे उन्होने हमारा अगुआ वनना मजूर कर लिया। उन्होने सारे कागज-पत्र पढ डाले और हमारे मसलेसे पूरी जानकारी कर ली। हम दूसरे एग्लो इडियन सज्जनोसे भी मिले। आम सभाके वहुतसे सदस्यो-से और जिनका कुछ भी प्रभाव था ऐसे जितने आदमियो तक हमारी पहुंच हो सकती थी उन सवसे मिले। लार्ड एल्गिनके पास शिप्ट-मण्डल गया। उन्होने सारी वाते ध्यानपूर्वक सुनली। अपनी हमदर्दी जाहिर की और साथ-ही-साथ अपनी कठिनाइया भी वताईं। फिर भी जितना हो सके उतना करनेका वचन दिया। यही शिप्ट-मडल लार्ड मॉर्लेसे भी मिला। उन्होने भी सहानुभूति प्रकट की। उनके उत्तरका सार पीछे दे चुका हू। सर विलियम वेडरवर्नकी कोशिशसे आम सभाके हिंदुस्तानके राज-काजसे लगाव रखनेवाले सदस्योकी सभा उसी भवनके एक दीवानखानेमे हुई और हमने उसके सामने भी अपना पक्ष जितना हमसे हो सका रखा। इस वक्त आइरिश पक्षके नेता मि० रेडमड थे। इसलिए हम उनसे भी खास तौरसे मिलने गये। खुलासा यह कि आम सभाके सव पक्षोके जिन-जिन सदस्योसे हम मिल सकते थे उन सवसे मिले। इगलैंडमे हमे काग्रेसकी व्रिटिश कमेटीकी भरपूर मदद तो थी ही। पर यहाके रीति-रिवाजके मुताविक उसमे तो पक्ष-विशेप और मतविशेपके आदमी ही आ सकते थे। ऐसे वहुतेरे थे जो उक्त कमेटीमे तो नही आते थे, पर हमारे काममे पूरी मदद देते थे। हमने सोचा कि इन सवको

इकट्ठा करके हम इस काममे लगा सके तो अधिक अच्छा काम हो सकता है और इस विचारसे एक स्थायी कमेटी बनानेका निश्चय किया। सब पक्षोके लोगोको यह विचार पसद आया।

हरएक सस्थाका आधार मुख्यत उसका मत्री होता है। मत्री ऐसा होना चाहिए, जिसे सस्थाके उद्देश्यपर पूरा-पूरा विश्वास हो, साथ-ही-साथ उसमे इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिए अपना अधिकाश समय देनेकी शक्ति और काम करनेकी योग्यता भी हो। मि० एल० डब्ल्यू० रिचमे ये सभी गुण थे। वह दक्षिण अफ्रीकाके ही थे। वहा मेरे दफ्तरमे गुमाश्तेका काम करते थे और इन दिनो लदनमे बैरिस्टरी पढ रहे थे। वह इगलैडमे मौजूद थे और यह काम करनेके इच्छुक भी थे। इससे कमेटी (साउथ अफ्रीका ब्रिटिश इडियन कमेटी) बनानेकी हिम्मत हम कर सके।

विलायतमे, बल्कि सारे पश्चिममे, मेरी दृष्टिसे एक असभ्य रिवाज यह है कि अच्छे-से-अच्छे कामका मुहूर्त भोजनके समय रखा जाता है। ब्रिटिश प्रधान मत्री हर साल ९ नवबरको लदनके लार्ड मेयरके सरकारी वासस्थान मैशन हॉउसमे जो भाषण दिया करते है उसमे वह अगले बरसके अपने कार्यक्रमका सकेत करते है और भविष्यके विषयमे अपना निजका अनुमान बताते है और इस कारण यह भाषण सारी दुनियाका ध्यान अपनी ओर खीचता है। लदनके लार्ड मेयरकी ओरसे मन्त्रिमडलके सदस्यो आदिको उसमे भोजनका निमत्रण दिया जाता है और वहा भी भोजनके बाद शराबकी बोतले खुलती है और मेजबान तथा मेहमानकी स्वास्थ्य-कामनाके लिए सुरापान किया जाता है। जब इस शुभ या अशुभ (सब अपनी-अपनी दृष्टिके अनुसार विशेषण चुनले) कार्यका दौर चल रहा हो उस वक्त भाषण भी दिये जाते है। इनमें बादशाहके मन्त्रिमडलका 'टोस्ट' (स्वास्थ्य-कामना) भी शामिल

होता है। इसी (टोस्ट) के जवाबमे प्रधान मत्रीका उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण भापण होता है। और जैसे सार्वजनिक रूपमे वैसे ही निजी तौरपर किसीके साथ खास मशविरा या बातचीत करनी हो तो उसे भोजनका न्यौता देनेका रिवाज है। कभी खाते-खाते तो कभी खाना खतम होनेपर वह विपय छिडता है। हमे भी एक नही, अनेक वार इस रिवाजके सामने नत मस्तक होना पडा था। पर कोई पाठक इसका अर्थ यह न करे कि हममेसे किसीने कभी अभक्ष्यका भक्षण या अपेयका पान किया। इस प्रकार हमने एक दिन दोपहरके भोजनके निमत्रण भेजे और उसमे अपने सभी मुख्य सहायकोको आमत्रित किया। लगभग सौ निमंत्रण भेजे गये थे। इस भोजका प्रयोजन सहायकोके प्रति कृतजता प्रकट करना और उनसे विदा लेना और साथ ही स्थायी समितिकी स्थापना भी था। उसमे भी प्रथाके अनुसार भोजनके उपरात भापण हुए और कमेटीकी स्थापना भी हुई। इस आयोजनसे हमारे आन्दोलनकी और अधिक प्रसिद्धि हुई।

इस प्रकार कोई ६ हफ्ते विताकर हम दक्षिण अफ्रीकाको वापस हुए। मदीरा पहुचनेपर हमे मि० रिचका तार मिला कि लार्ड एल्गिनने घोपणा की है कि मत्रिमडलने वादशाहसे ट्रासवालके एशियाटिक ऐक्टको नामजूर करनेकी सिफारिश की है। अव हमारे हर्पका क्या पूछना! मदीरासे केप टाउन पहुचनेमे १४-१५ दिन लगते है। यह वक्त तो हमने वडे चैनसे गुजारा और दूसरे कष्टोके निवारण के लिए शेखचिल्ली-केसे हवाई महल वनाते रहे। पर दैवगति विचित्र है! हमारे ये महल कैसे धराशायी हो गये, इसे हम अगले प्रकरणमे देखेगे।

पर इस प्रकरणको पूरा करनेके पहले एक-दो पवित्र सस्मरणोको दिये विना नही रहा जा सकता। मुझे यह तो कह ही देना होगा कि विलायतमे हमने एक क्षण भी

बेकार नही जाने दिया। बहुतसे सरक्यूलर (गश्ती चिट्ठिया) आदि भेजनेका सारा काम एक आदमीके किये नही हो सकता था। उसमे मददकी बडी जरूरत थी। पैसा खर्च करनेसे बहुत-कुछ मदद मिल सकती है, पर अपने ४० सालके अनुभवसे कह सकता हू कि यह मदद शुद्ध स्वयसेवककी सहायता जैसी फलदायिनी नही होती। सौभाग्यवश ऐसी मदद हमे मिल गई। बहुतसे भारतीय युवक जो वहा पढते थे हमारे आसपास बने रहते और उनमेसे अनेक सुबह-शाम, इनाम या नामकी आशा रखे बिना हमारी मदद करते। पते लिखना, नकले करना, टिकट चिपकाना, डाकघर जाकर चिट्ठिया आदि छोडना---किसी भी कामको उनमेसे किसीने अपनी शानके खिलाफ कहकर करनेसे इन्कार किया हो, यह मुझे याद नही आता। पर इन सबको एक ओर रखदे ऐसी मदद देनेवाला दक्षिण अफ्रीकामे मिला हुआ एक अग्रेज मित्र था। वह हिंदुस्तानमे रह चुका था। उसका नाम था सिमड्स। अग्रेजीमे कहावत है कि देवता जिसे प्यार करते है उसे जल्दी अपने पास ले जाते है। उस 'परदुखभजन' अग्रेजको भी यमदूत भरी जवानीमे उठा ले गये। 'परदुखभजन' विशेषणके व्यवहारका विशेष कारण है। यह भला भाई जब बबईमे था तब यानी १८९७ मे प्लेग-पीडित भारतीयोके बीच निर्भय होकर विचरता और उनकी मदद करता था। छूतके रोगियोकी सेवा करते हुए मौतसे तनिक भी नही डरना तो उसके खूनमे भर गया था। जाति या रगका द्वेष उसे छू तक नही गया था। उसका स्वभाव अतिशय स्वतत्र था। उसका एक सिद्धात यह था कि सत्य सदा अल्पसख्यक पक्ष यानी 'माइनारिटी'के साथ ही रहता है। इसी सिद्धातसे प्रेरित होकर वह जोहान्सबर्गमे मेरी ओर आकृष्ट हुआ और अनेक बार विनोदमे मुझे सुना देता था कि आपका

पक्ष बड़ा हो जाय तो आप पक्का जानिये कि मै हरगिज आपका साथ नही दूगा, क्योकि मै मानता हू कि 'मेजारिटी (बडे पक्ष) के हाथमे सत्य भी असत्यका रूप ले लेता है। उसका अध्ययन विस्तृत था। जोहान्सबर्गके एक करोड़पति सर जार्ज फेररका वह विश्वास-भाजन प्राइवेट सेक्रेटरी था। शार्ट हैंड (लघु-लेखन) लिखनेमे तो निष्णात था। जब हम विलायत पहुचे तो वह अनायास हमसे आ मिला। मुझे उसका पता-ठिकाना भी मालूम नही था। पर हम तो सार्वजनिक लोग थे, इसलिए अखबारकी चर्चाके विषय ठहरे। इससे इस भले अग्रेजने हमे ढूढ निकाला और कहा—"मुझसे जो कुछ सहायता हो सके वह करनेको तैयार हू। मुझे चपरासीका काम सौपिये तो वह भी करूगा और शार्ट हैंडकी आवश्यकता हो तो आप जानते ही है कि मुझसा कुशल स्टेनोग्राफर आपको दूसरा नही मिलनेका।" हमे तो दोनो सहायताए दरकार थी और यह कहनेमे मै तनिक भी अतिशयोक्ति नही कर रहा हू कि यह अग्रेज रात-दिन, बिना पैसा लिए, हमारी बेगार करता था। रातके बारह-बारह और एक-एक बजेतक वह सदा टाइपराइटरपर ही बैठा होता। सदेशे ले जाना, डाकखाने जाना, ये काम भी सिमंड्स करता और हंसते चेहरेसे। मुझे मालूम था कि उसकी माहवार आमदनी लगभग ४५ पौडके थी, पर यह सारी आय वह मित्रो आदिकी मदद करनेमे खर्च कर डालता। उसकी उम्र उस वक्त कोई तीस बरसकी रही होगी। पर वह अविवाहित था और योही जिदगी बिता देनेका विचार था। मैने उससे कुछ स्वीकार करनेके लिए बहुत आग्रह किया, पर उसने ऐसा करनेसे साफ इन्कार कर दिया। उसका उत्तर था—"मै इस सेवाके बदलेमे कुछ लू तो मै धर्म-भ्रष्ट हो जाऊगा।" मुझे याद है कि आखिरी रातको सामान वगैरह बाधते हमे तीन बज गये। तबतक वह भी जागता रहा।

अगले दिन हमे जहांजपर सवार कराके ही वह हमसे जुदा हुआ। यह वियोग हमारे लिए अति दु खद था। मुझे अनेक अवसरोपर इसका अनुभव हो चुका है कि परोपकार कुछ गेहुए रगवालोकी बपौती नही है।

सार्वजनिक काम करनेवाले युवकोकी जानकारीके लिए मै यह भी बता दूं कि शिष्ट-मण्डलके खर्चका हिसाब रखनेका काम हमने इतनी सावधानीसे किया कि जहाजपर सोडावाटर पीना हो तो उसकी जो रसीद मिलती वह भी उतने पैसेके खर्चके सबूतके तौरपर रखली जाती। तारोकी रसीदे भी इसी तरह रखी जाती। व्यौरेवार हिसाबमें फुटकर खर्चके नामसे एक भी रकम लिखी जानेकी बात मुझे याद नही है। यह मद तो हमारे हिसाबमें थी ही नहीं। 'याद नही' शब्द बढानेका कारण यही है कि कभी शामको हिसाब लिखते वक्त दो-चार पेनी या दो चार शिलिगका खर्च याद न रहा हो और फुटकरके नामसे लिख दिया गया हो तो नही कह सकता। इसीलिए अपवाद रूपमे 'याद नही' शब्दका व्यवहार किया है।

इस जीवनमे एक बात मुझे साफ तौरपर दिखाई दी है। वह यह कि जबसे हम होश सम्हालते है तभीसे ट्रस्टी या जवाबदेह बन जाते है। जबतक मा-बापके साथ होते है तबतक जो कोई काम या जो पैसा वे सौंपते है उसका हिसाब हमे उनको देना ही चाहिए। हमारा विश्वास करके वे हमसे हिसाब न मागे तो इससे हम अपनी जवाबदेहीसे मुक्त नही होते। जब हम स्वतत्र होते है तब स्त्री-पुत्र आदिके प्रति जवाबदेह हो जाते है। अपनी कमाईके मालिक अकेले हम ही नही है। वे भी उसमे हिस्सेदार है। उनकी खातिर हमें पाई-पाईका हिसाब रखना चाहिए। फिर जब हम सार्वजनिक जीवनमे आते है तब तो कहना ही क्या! मैने देखा है कि स्वयसेवकोमें यह मानने की आदत पड जाती है कि मानो अपने

हाथमे रहनेवाले काम या पैसेका हिसाब देना उनका फर्ज नही है, क्योकि वे अविश्वासके पात्र तो हो ही नही सकते। यह घोर अज्ञान ही माना जा सकता है। हिसाब रखनेका विश्वास या अविश्वासके साथ कुछ भी सबध नही। हिसाब रखना ही स्वतत्र धर्म है। उसके बिना हमे अपने कामको खुद ही मैला मानना होगा। और जिस सस्थामे हम स्वयसेवक हो उसका नेता अगर झूठी भलमनसीके डरसे हमसे हिसाब न मागे तो वह भी दोषभागी है। काम और पैसेका हिसाब रखना जितना तनख्वाह देनेवालेका फर्ज है, स्वयसेवकका उससे दूना फर्ज है। इसलिए कि उसने अपने कामको ही अपना वेतन मान लिया है। यह बात अति महत्त्वकी है और मैं जानता हू कि आमतौरसे बहुतेरी सस्थाओमे इसपर जितना चाहिए उतना ध्यान नही दिया जाता। इसीसे उसके लिए मैने इस प्रकरणमे इतना स्थान देनेका साहस किया है।

: १५ :

वक्र राजनीति अथवा क्षणिक हर्ष

केप टाउनमे उतरते ही और खास तौरसे जोहान्सबर्ग पहुचनेपर मैने देखा कि मदीरामे मिले हुए तारकी जो कीमत हमने आकी थी वह कीमत उसकी नही थी। इसमे भेजनेवाले मि० रिचका दोष नही था। उन्होने कानूनके नामजूर होनेके बारेमे जैसा सुना वैसा तार कर दिया। हम ऊपर देख चुके है कि इस वक्त यानी १९०६ मे ट्रासवाल शाही उपनिवेश था। ऐसे उपनिवेशोके राजदूत अपने उपनिवेशसे सम्बद्ध विषयोमे उपनिवेश सचिवको आवश्यक सलाह देनेकेलिए इगलैंड (लदन) मे रहा करते है। ट्रासवालके दूत दक्षिण अफ्रीका-

के प्रसिद्ध वकील सर रिचर्ड सॉलोमन थे। खूनी कानून-को नामजूर करनेका निश्चय लार्ड एलिगनने सर रिचर्डके साथ मशविरा करके किया था। १९०७ की पहली जनवरीसे ट्रासवालको उत्तरदायी शासनका अधिकार मिलने वाला था। अत लार्ड एलिगनने सर रिचर्डको यह आश्वासन दिया—"यही कानून ट्रासवालको उत्तरदायी शासन मिलनेके बाद वहाकी धारा सभा पास करे तो बडी सरकार उसे नामजूर नही करेगी। पर जबतक ट्रासवाल शाही उपनिवेश माना जाता है तबतक ऐसे भेदभाववाले कानूनके लिए बडी सरकार सीधी जिम्मेदार समझी जायगी और चूकि साम्राज्य सरकारके विधानमे भेदभाववाली राजनीति-को स्थान नही दिया जाता, इसलिए इस सिद्धातका सम्मान करनेके लिए फिलहाल तो मुझे बादशाहको यह कानून नामजूर करनेकी सलाह देनी ही होगी।"

इस प्रकार महज नामके लिए कानून रद हो जाय और साथ ही ट्रासवालके गोरोका काम भी बन जाय तो सर रिचर्डको उसमे कोई एतराज न था। होता क्यो ? इस राजनीतिको मैने 'वक्र' विशेषण लगाया है, पर मै मानता हू कि इससे अधिक तीखे विशेषणका व्यवहार किया जाय तो भी इस नीतिका सचालन करनेवालोके साथ वस्तुत कोई अन्याय नही होगा। शाही उपनिवेशके कानूनोके लिए बडी सरकार प्रत्यक्षत जिम्मेदार होती है। उसके विधानमे रगभेद और जातिभेदके लिए स्थान नही। ये दोनो बाते बहुत सुदर है। यह बात भी समझमे आ सकती है कि बडी सरकार उत्तरदायी शासन प्राप्त उपनिवेशोके बनाये हुए कानूनोको एकाएक रद नही कर सकती, पर उपनिवेशके राज-दूतोके साथ गुप्त मत्रणा करना, उन्हे पहलेसे साम्राज्यके विधानके विरुद्ध कानूनको नामजूर न करनेका वचन दे देना,

इसमे क्या उन लोगोके साथ दगा और अन्याय नही है जिनके हक छीने जा रहे हो ? सच पूछिये तो लार्ड एल्गिनने पहलेसे वचन देकर ट्रासवालके गोरोको भारतीयोके विरुद्ध अपना आन्दोलन जारी रखनेका बढावा दिया। उन्हे ऐसा करना था तो भारतीय प्रतिनिधियोको इसे साफ बता देना था। सच तो यह है कि उत्तरदायी शासन भोगनेवाले उपनिवेशोके कानूनोके लिए भी बडी सरकार जिम्मेदार होती ही है। ब्रिटिश विधानके मूल सिद्धात स्वराज्य-भोगी उपनिवेशोको भी मानने ही होते है। जैसे, कोई भी उत्तरदायित्व प्राप्त उपनिवेश कानूनन् जायज गुलामीकी प्रथाका पुनरुद्धार नही कर सकता। लार्ड एल्गिनने अगर खूनी कानूनको अनुचित मानकर नामंजूर किया हो—और ऐसा मानकर ही वह नामजूर किया जा सकता था—तो उनका स्पष्ट कर्तव्य था कि सर रिचर्ड सॉलोमनको अकेलेमे बुलाकर कह देते कि उत्तरदायी शासन मिलनेके बाद ट्रासवालकी सरकार ऐसा अन्यायकारी कानून न बनाये और उसका इरादा उसे बनानेका ही हो तो उसे जिम्मेदारी सौपी जाय या नही, इसपर बडी सरकारको फिरसे विचार करना होगा। या हिदुस्तानियोके हकोकी पूरी रक्षाकी शर्तपर ही ट्रासवालको जवाबदेह हुकूमत सौपनी चाहिए थी। यह करनेके बदले लार्ड एल्गिनने ऊपरसे तो हिदुस्तानियोकी हिमायत करनेका ढोग किया, पर भीतरसे उसी वक्त ट्रासवालकी सरकारकी सच्ची हिमायत की और जिस कानूनको खुद रद किया उसीको फिरसे पास करनेका बढावा दिया। ऐसी वक्र राज-नीतिका यह एक ही या पहला उदाहरण नही था। ब्रिटिश साम्राज्यके इतिहासका साधारण विद्यार्थी भी ऐसी दूसरी मिसाल याद कर सकता है।

इसलिए जोहान्सबर्गमे हमने एक ही बात सुनी कि लार्ड

एलगिन और बडी सरकारने हमे धोखा दिया। हमें तो मदीरामें जितनी खुशी हुई थी, दक्षिण अफ्रीकामें उतनी ही मायूसी हुई। फिर भी इस कुटिलताका तात्कालिक परिणाम तो यही हुआ कि कौममें और जोश फैला और सब कहने लगे—"अब हमे चिंता क्या है? हमे क्या बडी सरकारकी सहायताके भरोसे लडना है? हमे तो अपने बलपर और जिसका नाम लेकर हमने प्रतिज्ञा की है उस भगवान्‌के भरोसे लडना है। और हम सच्चे रहे तो टेढी राजनीति भी सीधी हो ही जायगी।"

ट्रासवालमे उत्तरदायी शासनकी स्थापना हुई। नई उत्तरदायी धारा सभाने जो पहला कानून पास किया वह था बजट और दूसरा कानून यही खूनी कानून (एशियाटिक रेजिस्ट्रेशन ऐक्ट) था। यह कानून ज्यो-का-त्यो उसी रूपमे पास हुआ जिस रूपमे पहले बना और पास हुआ था। उसकी एक दफामें तारीख दी हुई थी। उसे बदलना तो अधिक दिन बीत जानेसे जरूरी ही हो गया था। अत यह तारीख उसमे बदली गई। २१ मार्च १९०७ को एक ही बैठकमे इस कानूनकी सारी विधिया पूरी करके वह पास कर दिया गया। इस शाब्दिक परिवर्तनका कानूनकी सख्तीके साथ कोई सबध नही था। वह तो जैसी थी वैसी ही बनी रही। अत यह कानून रद हुआ था, इस बातको लोग सपनेकी तरह भूल गये। भारतीय जनताने अपनी रीतिके अनुसार आवेदन-पत्र आदि तो भेजे ही, पर इस तूतीकी आवाज उस नक्कारखानेमे कौन सुनता? उस कानूनके १ जुलाई १९०७ से जारी होनेकी घोषणा की गई थी और भारतीयोको ३१ जुलाईसे पहले परवानेके लिए दरख्वास्त देनेको हुक्म दिया गया था। इतनी मुद्दत देनेका कारण हिन्दुस्तानियोपर कोई मेहरबानी करना नही था। पद्धतिके अनुसार उस कानूनको बडी

सरकारकी मंजूरी मिलनी चाहिए थी। इसमे कुछ वक्त लगना ही था। फिर उसके परिशिष्टके अनुसार परचे, परवाने वगैरह तैयार कराने और भिन्न-भिन्न स्थानोमे परवाने-के दफ्तर (परमिट आफिस) खोलनेमे भी कुछ वक्त लगता। इससे यह पाच-छ महीनेकी मुहलत ट्रासवाल सरकारने अपने ही सुभीतेके लिए दी थी।

: १६ :

अहमद मुहम्मद काछलिया

शिप्ट-मण्डल जब विलायत जा रहा था तब एक अग्रेज मुसाफिरने जो दक्षिण अफ्रीकामे रह चुका था, ट्रासवालके कानून और हमारे विलायत जानेका कारण भी हमारे मुहसे सुना। वह तुरत बोल उठा—"आप कुत्तेका पट्टा (डॉग्स कॉलर) पहननेसे इन्कार करना चाहते है।" इस अग्रेजने ट्रासवालके परवानेको यह नाम दिया। उसने यह बात पट्टेपर अपना हर्ष और भारतीयोके प्रति तिरस्कार प्रकट करने या अपनी हमदर्दी दिखानेके लिए कही, इसे मै उस वक्त नही समझ सका था और आज इस घटनाका उल्लेख करते समय भी इस बारेमे कोई निश्चय नही कर सकता। किसी भी मनुष्यके कथनका ऐसा अर्थ हमे नही करना चाहिए जिससे उसके साथ अन्याय हो। इस सुनीतिका अनुसरण करते हुए मै यह मान लेता हू कि इस अग्रेजने अपनी हमदर्दी दिखानेके लिए ऊपरके जैसे, भावना-की तसवीर खीच देनेवाले शब्द कहे। एक ओर ट्रास-वाल सरकार हमे यह पट्टा पहनानेकी तैयारी कर रही थी, दूसरी ओर भारतीय जनता इसकी तैयारी कर रही थी कि यह पट्टा न पहननेके अपने निश्चयपर वह किस तरह

कायम रहे और ट्रान्सवालकी सरकारकी कुनीतिके विरोधमें किस तरह युद्ध किया जाय । विलायत और हिंदुस्तानके अपने सहायकोंको पत्र लिखने और चालू परिस्थितिसे उनको परिचित कराते रहनेका काम तो चल ही रहा था। पर सत्याग्रहकी लड़ाई बाह्योपचारपर बहुत कम अवलंबित होती है । भीतरी उपचार ही सत्याग्रहमें अकसीर उपचार होता है। अत कौमके सभी अंग ताजे और चुस्त रहें, इसके यत्नमें ही नेताओंका समय जा रहा था ।

कौमके सामने एक महत्त्वका प्रश्न उपस्थित हुआ सत्याग्रहका काम किस मंडलकी मारफत लिया जाय ? ट्रांसवाल ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशनमें तो बहुतसे सभासद थे । उसकी स्थापनाके समय सत्याग्रहका जन्म भी नहीं हुआ था । उस संस्थाको अनेक कानूनोंका विरोध करना पड़ा था और आज भी करना था । कानूनोंका विरोध करनेके अतिरिक्त उसे दूसरे राजनैतिक, सामाजिक आदि काम भी करने होते थे । फिर उस संस्थाके सभी सदस्योंने प्रतिज्ञा की थी, यह भी नहीं कहा जा सकता था । उसके साथ-साथ सत्याग्रहमें सम्मिलित होनेसे उस संस्थाको जो बाहरकी जोखिमें उठानी पड़ती उनका विचार करना भी जरूरी था । सत्याग्रहकी लड़ाईको ट्रान्सवालकी सरकार राजद्रोह मान ले और ऐसा मानकर यह युद्ध चलानेवाली संस्थाओंको गैरकानूनी घोषित कर दे तो ? उस संस्थाके जो सदस्य सत्याग्रही नहीं होंगे उनकी स्थिति क्या होगी ? सत्याग्रहके पूर्व जिसने पैसा दिया हो उनके पैसेका क्या होगा ? ये बातें भी सोचनेकी थीं । अन्तमें सत्याग्रहियोंका यह दृढ़ निश्चय था कि जो लोग अश्रद्धा, अशक्ति या दूसरे किसी भी कारणसे सत्याग्रहमें शामिल न हों उनके प्रति द्वेष न रखा जाय, इतना ही नहीं, उनके साथ बर्ताव करनेमें आजके स्नेह-भावमें कोई अंतर

न आने दिया जाय और सत्याग्रहको छोडकर और आन्दोलनोमे उनके साथ-साथ काम किया जाय।

इन विचारोसे अंतमे सारी कौमने यही निश्चय किया कि सत्याग्रहकी लडाई किसी वर्तमान सस्थाके जरिये न चलाई जाय। दूसरी संस्थाएं जितनी सहायता दे सकती हो दे और सत्याग्रहको छोडकर और जो उपाय खूनी कानूनके विरोधमे कर सकती हो करे। अत. 'पैसिव रेजिस्टेस एसोसियेशन' अथवा 'सत्याग्रह-मंडल' नामकी नई सस्था सत्याग्रहियोने स्थापित की। अग्रेजी नामसे पाठक यह समझ लेगे कि जिस वक्त इस नये मडलकी स्थापना हुई उस वक्ततक सत्याग्रह नामकी खोज नही हो सकी थी। ज्यो-ज्यो समय बीतता गया त्यो-त्यो हमे यह मालूम होता गया कि अलग सस्था स्थापित करनेसे जनताका हर तरह लाभ ही हुआ और अगर वैसा न हुआ होता तो सत्याग्रहके आन्दोलनको शायद हानि ही हुई होती। बहुतसे लोग इस नई सस्थाके सदस्य हुए और जनताने पैसा भी खुले हाथो दिया।

मेरे अनुभवने मुझे यह बताया है कि कोई भी आन्दोलन पैसेकी कमीसे टूटता, अटकता या निस्तेज नही होता। इसके मानी यह नही है कि कोई भी लौकिक आन्दोलन बिना पैसेके चल सकता है। पर इसका यह अर्थ अवश्य है कि जहा सच्चे सचालक है वहा पैसा अपने आप चला आता है। इसके विपरीत मुझे यह भी अनुभव हुआ है कि जिस आन्दोलनको पैसेका अतिरेक हो जाता है उसकी उसी समयसे अवनति आरभ हो जाती है। इससे कोई सार्वजनिक सस्था पूजी इकट्ठी करके उसके ब्याजसे अपना कारबार चलाये उसे पाप कहनेकी हिम्मत तो नही होती, उससे इतना ही कहना है कि यह अयोग्य है। सार्वजनिक सस्थाकी पूजी तो जनसमुदाय ही है। जबतक वह चाहता है तभी तक उसे जीवित

रहना चाहिए। पूजी इकट्ठी करके व्याजसे काम चलानेवाली सस्था सार्वजनिक नही रहती, बल्कि स्वतत्र और स्वच्छद हो जाती है। सार्वजनिक टीकाके अकुशके वश नही रहती। व्याजपर चलनेवाली अनेक धार्मिक और लौकिक सस्थाओमे कितनी बुराइया घुस गई है, इसे बतानेका यह स्थान नही। यह लगभग स्वयसिद्ध बात है।

अब हम फिर अपने मूल विषयपर आए। बालकी खाल निकालना और नुक्ताचीनी करना कुछ वकीलो और अग्रेजी पढे हुए लोगोका ही ठेका नही है। मैने देखा कि दक्षिण अफ्रीकाके अपढ हिंदुस्तानी भी बहुत ही बारीक दलीले कर सकते है। कितनोने यह दलील निकाली कि पहला खूनी कानून रद हो गया है, इसलिए नाटकशालामे की हुई प्रतिज्ञा पूरी हो गई। जो लोग ढीले पड रहे थे उन्होने इस दलीलकी छायामे आश्रय लिया। इस दलीलमे कुछ दम न था, यह तो नही कहा जा सकता। फिर भी जिन लोगोने उस कानूनका विरोध कानूनकी हैसियतमे नही, बल्कि उसके भीतर निहित तत्त्वके कारण किया था उनपर तो इस नुक्ताचीनीका कोई असर नही हो सकता था। पर यह होते हुए भी सलामतीकी खातिर, जन-जागरण बढानेके लिए और लोगोके भीतर जो कमजोरी आ गई है उसकी गहराई कितनी है यह देख लेनेके लिए लोगोसे फिरसे प्रतिज्ञा कराना जरूरी समझा गया। इसलिए जगह-जगह सभाए करके लोगोको परिस्थिति समझाई गई और उनसे फिरसे प्रतिज्ञाए भी कराई गई। लोगोका जोश कुछ ठडा हो गया हो, यह नही दिखाई दिया।

इस बीच जुलाईके महीनेका अत निकट आता जा रहा था। उसकी आखिरी तारीखको हमने ट्रान्सवालकी राजधानी प्रिटोरियामे विराट् सभा करनेका निश्चय किया था। दूसरे शहरोसे भी प्रतिनिधि बुलाये गये थे। सभा

प्रिटोरियाकी मस्जिदके मैदानमे हुई। सत्याग्रह आरभ होनेके वादसे लोग सभाओमे इतनी वडी तादादमे आने लगे थे कि किसी मकानमे सभा करना नामुमकिन हो गया था। सारे ट्रासवालमे हिंदुस्तानियोकी आवादी १३ हजारसे अधिक नही मानी जाती थी, जिसमेसे १० हजारसे कुछ ऊपर जोहान्सवर्ग और प्रिटोरियामे ही वसते थे। इस तादादमेसे पाच-छ हजार लोग सभामे उपस्थित हो, यह सख्या दुनियाके किसी भी भागमे वहुत वडी और अति सतोपजनक मानी जा सकती है। सार्वजनिक सत्याग्रहकी लडाई और किसी शर्तपर लडी भी नही जा सकती। जहा युद्धका आधार केवल अपना वल हो वहा उस विपयकी सार्वजनिक शिक्षा नही दी गई हो तो लडाई चल ही नही सकती। इससे यह उपस्थिति हम कार्यकर्ताओके लिए कोई अचंभेकी चीज नही थी। हमने शुरूसे ही निश्चय कर लिया था कि अपने आम जलसे खुले मैदानमे ही करेगे। इससे हमारा खर्च कुछ नही होता था और जगहकी तगीके कारण एक भी आदमीको वापस नही जाना पडता था। यही यह वात भी लिख देना चाहिए कि ये सारी सभाए अधिकाशमे वहुत शात होती। आनेवाले सारी वातोको वडे ध्यानसे सुनते। कोई वहुत दूरपर खडा होनेके कारण सुन न सकता तो वक्तासे ऊंची आवाजमे वोलनेका अनुरोध करता। पाठकोको यह वतानेकी जरूरत नही होनी चाहिए कि इन सभाओमे कुर्सियो वगैरहका इतजाम विलकुल ही न होता। मच इतना ही वडा वनाया जाता कि केवल सभापति, वक्ता और सभापतिके अगल-वगल दो-चार आदमी और वैठ ले। उनके ऊपर एक छोटीसी मेज और दो-चार कुर्सिया-तिपाइया रख दी जाती।

प्रिटोरियाकी इस सभाके सभापति ब्रिटिश इडियन एसोसियेशनके कार्यकारी अध्यक्ष यूसुफ इस्माइल मिया थे। खूनी कानूनके अनुसार परवाने निकालनेका वक्त

नजदीक आता जा रहा था। इससे जैसे हिंदुस्तानियोमे गहरा जोश होते हुए भी वे चितातुर थे वैसे ही जनरल बोथा और जनरल स्मट्स भी, उनकी सरकारके पास अमोघ बल होते हुए भी, चितातुर थे। एक सारी कौमको ताकतसे काम लेकर भुकाना किसीको रुच तो सकता ही नही। अत जनरल बोथाने मि० हॉस्किनको इस सभामे हमे समझानेके लिए भेजा। मि० हॉस्किनका परिचय मै ७ वे प्रकरणमे करा चुका हू। सभाने उनका स्वागत किया। अपने भाषणमे उन्होने कहा—"आप जानते है कि मै आप लोगोका मित्र हू। मेरी सहानुभूति आपके साथ है, यह कहने-की जरूरत नही होनी चाहिए। मेरे वसकी बात हो तो मै आपकी माग जरूर मजूर करा दू, पर यहाके सामान्य गोरोके विरोधके विषयमे मुझे आपको कुछ बताना तो है ही नही। आज मै आपके पास जनरल बोथाका भेजा हुआ आया हू। उन्होने इस सभामे आकर आपको उनका सदेसा सुना देनेको कहा है। भारतीय जनताके लिए उनके दिलमे इज्जत है। उसकी भावनाओको वह समझते है। पर वह कहते है— 'मै लाचार हू। ट्रासवालके सारे यूरोपियन ऐसा कानून मागते है। मै खुद भी इस कानूनकी जरूरत देखता हू। ट्रासवाल सरकारकी शक्तिको भारतीय जनता जानती है। इस कानूनको बडी सरकारकी सम्मति प्राप्त है। भारतीय जनताको जितना करना चाहिए था उतना उसने किया और अपने सम्मानकी रक्षा कर ली। पर जब उसका विरोध सफल नही हुआ और कानून पास हो गया तब उसको चाहिए कि इस कानूनको शिरोधार्य कर अपनी वफादारी और शान्ति-प्रियताका सबूत दे। इस कानूनके अनुसार जो नियम बने है उनमे कोई छोटा-मोटा हेर-फेर कराना हो तो इस विषयमे आपका कहना जनरल स्मट्स ध्यानपूर्वक

सुनेगे।' " यह सदेसा सुनाकर मि० हॉस्किनने कहा—"मै खुद भी आपको यह सलाह देता हू कि जनरल बोथाके सदेसेको आप मान ले। मै जानता हू कि ट्रासवालकी सरकार इस कानूनके बारेमे दृढ है। उसका विरोध करना दीवारसे सिर टकराना जैसा है। मै चाहता हू कि आपकी कौम विरोध करके बरबाद न हो या बेकार कष्ट न भोगे।" मैने इस भाषणके शब्द-शब्दका उलथा जनताको सुना दिया। खुद अपनी ओरसे भी चेतावनी दी। मि० हॉस्किन तालियोकी आवाजके बीच विदा हुए।

अब भारतीयोके भाषण शुरू हुए। इस प्रकरणके और सच पूछिये तो इस इतिहासके, नायकका परिचय मुझे अभी कराना बाकी है। जो लोग बोलनेको खडे हुए उनमे स्वर्गीय अहमद मुहम्मद काछलिया भी थे। मै तो उन्हे एक मवक्किल और दुभापियेके रूपमे ही जानता था। वह अबतक सार्वजनिक कामोमे आगे बढकर हिस्सा नही लेते थे। उनका अग्रेजीका ज्ञान कामचलाऊ था। पर अनुभवसे उसको इतना बढा लिया था कि अपने दोस्तोको अग्रेज वकीलोके पास ले जाते तो खुद ही दुभापियेका काम करते। दुभापियेका काम कुछ उनका पेशा नही था। यह काम तो वह मित्ररूपमे ही करते थे। धधा पहले कपडेकी फेरीका करते थे, फिर अपने भाईके साझेमे छोटे पैमानेपर व्यापार करने लगे। वह सूरती मेमन थे। उनका जन्म सूरत जिलेमे हुआ था और सूरती मुसलमानोमे उनकी अच्छी इज्जत थी। उनका गुजरातीका ज्ञान भी साधारण ही था और अनुभवसे उसे भी काफी बढा लिया था। पर उनकी बुद्धि इतनी तीक्ष्ण थी कि चाहे जो विषय हो उसे बहुत आसानीसे समझ लेते थे। मुकदमोकी गुत्थिया इस तरह सुलझा लेते थे कि अक्सर मै देखकर दग रह जाता। वकीलोके साथ कानूनकी

बहस करते भी नही हिचकते थे और अकसर उनकी दलीले वकीलोके लिए भी विचारणीय होती।

बहादुरी और एकनिष्ठामे उनसे बढ जानेवाला आदमी न मुझे दक्षिण अफ्रीकामे दिखाई दिया और न हिंदुस्तानमे। कौमके लिए उन्होने अपना सर्वस्व होम दिया था। जितनी बार उनसे मेरा सम्पर्क हुआ, मैने उन्हे एक बातवाला पाया। खुद पक्के मुसलमान थे। सूरतकी मेमन मस्जिदके मुतवल्लियो-मेसे भी थे। पर इसके साथ-साथ हिंदू-मुसलमान दोनोको एक निगाहसे देखते थे। मुझे एक भी ऐसा मौका याद नही जब उन्होने धर्मान्धताके भावसे और अनुचित रीतिसे हिंदूके मुकाबिले मुसलमानकी तरफदारी की हो। वह नितात निर्भय और पक्षपात-रहित थे। इसलिए जब जरूरी मालूम होता तब हिंदू-मुसलमान दोनोको उनके दोष बतानेमे तनिक भी सकोच न करते। उनकी सरलता और निरभिमानता अनुकरण करने योग्य थी। उनके साथ बरसोके गाढ परि-चयके बाद बनी हुई मेरी यह पक्की राय है कि स्वर्गीय अहमद मुहम्मद काछलिया जैसा मनुष्य कौमको मिलना मुश्किल है।

प्रिटोरियाकी सभामे बोलनेवालोमे यह नर-रत्न भी था। उन्होने बहुत ही छोटा भाषण दिया। वह बोले—"उस खूनी कानूनको हर हिंदुस्तानी जानता है। उसका अर्थ हम सभीको मालूम है। मि० हॉस्किनका भाषण मैने ध्यान-पूर्वक सुना है। आपने भी सुना है। मुझपर तो उसका एक ही असर हुआ है कि अपनी प्रतिज्ञापर मै और पक्का हो गया हू। ट्रान्सवालकी सरकारका बल हम जानते है। पर उस खूनी कानूनके डरसे बडा डर वह हमे कौन-सा दिखा सकती है? वह हमे जेल भेजेगी, हमारा माल नीलाम कर देगी, हमे देशसे निकाल देगी, फासीपर चढा देगी। ये सारी बाते सहन हो सकती है, पर वह कानून तो

सहन नही होगा।" मै देख रहा था कि ये वाक्य वोलते हुए अहमद मुहम्मद काछलिया वड़े उत्तेजित होते जा रहे थे। उनका चेहरा सुर्ख हो गया था, गर्दन और माथेकी रगे खूनके जोरसे दौरा करनेके कारण उभर आई थी। शरीर काप रहा था। अपने दाहिने हाथकी उगलियां गर्दनपर फेरते हुए वह गरज उठे—"मै खुदाकी कसम खाकर कहता हू कि मै कत्ल हो जाऊगा, पर इस कानूनके सामने सिर न झुकाऊगा। और मै चाहता हू कि यह सभा भी यही निश्चय करे।" यह कहकर वह वैठ गये। उन्होने जव गर्दनपर उगलिया फेरी तो मचपर वैठे हुए कुछ लोगोके चेहरोपर मुस्कराहट आगई। जहातक मुझे याद है, मैने भी उनका साथ दिया। सेठ काछलियाने अपने शव्दोमे जितना वल भरा था उतना वह अपने कामोमे दिखा सकेगे, इस विपयमे मेरे मनमे थोडी शका थी। जव-जव मै इस शंकाकी वात सोचता हू तव-तव और यहा इस वातका उल्लेख करते हुए भी मै लज्जित हो रहा हू। इस महान सग्राममे जिन वहुतोने अपनी प्रतिज्ञाका अक्षरश पालन किया उनमे सेठ काछलिया सदा आगे रहे। उनका रग वदलता हुआ मैने कभी देखा ही नही।

सभाने तो इस भापणका तालियोकी गडगडाहटसे स्वागत किया। उस वक्त मै उनको जितना जानता था उसकी वनिस्वत और सभाजन कही ज्यादा जानते थे, क्योकि उनमेसे अधिकाशको तो इस गुदडीके लालका निजी परिचय था। वे जानते थे कि काछलियाको जो करना होता है वही कहते है और जो कहते है वही करते है। जोशीले भापण और भी कई हुए। पर काछलिया सेठके भापणको उल्लेखके लिए इस कारण चुना है कि यह भापण उनकी भावी कार्यावलीकी भविष्य-वाणी सिद्ध हुआ। जोशीले भापण करनेवाले सभी नही टिक सके। इस पुरुषसिहकी मृत्यु अपने देश-भाइयोकी सेवा करते हु

ही १९१८ मे अर्थात् युद्ध समाप्तिके चार साल बाद हुई।

इनके एक ससमरणको और कही स्थान मिलना सभव नही। इसलिए उसे भी यही दिये देता हू। पाठक टालस्टाय फार्मकी बात आगे चलकर पढेगे। उसमे सत्याग्रहियोके कुटुब बसते थे। सेठ काछलियाने अपने बेटेको भी शिक्षा प्राप्तिके लिए इस फार्ममे भेजा था, केवल इस दृष्टिसे कि दूसरोके लिए उदाहरण उपस्थित करे और अपने बेटेको भी सरल जीवनका अभ्यासी और जनताका सेवक बनाए। और कह सकते है कि इसको देखकर ही दूसरे मुसलमान लडकोको भी उनके मा-बापने उस फार्ममे भेजा। बालक काछलियाका नाम अली था। उसकी उम्र उस वक्त १०-१२ सालकी होगी। वह नम्र, चपल, सरल और सत्यवादी बालक था। काछलिया सेठके पहले, पर लडाईके बाद, फरिश्ते उसे भी खुदाके दरबारमे उठा लाये। मै मानता हू कि वह जिदा रहता तो पिताकी कीर्तिको अवश्य चार चाद लगाता।

: १७ :

पहली फूट

१९०७की पहली जुलाई आई। परवाना जारी करनेके दफ्तर (परमिट आफिस) खुले। कौमका हुक्म था कि हरएक दफ्तरकी खुलेआम पिकेटिंग की जाय, यानी दफ्तरोको जानेवाले रास्तोपर स्वयसेवक रखे जाए और वे दफ्तरमे जानेवालोको सावधान करे। हरएक स्वयसेवकको एक खास बिल्ला दिया गया था और हरएकको खास तौरसे यह समझा दिया गया था कि परवाना लेनेवाले किसी भी

हिंदुस्तानीके साथ विनय-विरुद्ध व्यवहार न करे। उनका नाम पूछे, पर वह न बताए तो बलात्कार या अविनय न करे। कानूनको मान लेनेसे होनेवाली हानियोकी जो सूची छपा रखी गई थी उसे एशियाई दफ्तरमे जानेवाले हर हिंदुस्तानीको दे दे और उसमे क्या लिखा है यह समझा दे। पुलिसके साथ भी विनयका व्यवहार करे। वह गाली दे, मारे तो शान्तिसे सह ले। मार बर्दाश्त न हो तो वहासे हट जाय। पुलिस पकड़े तो खुशीसे गिरफ्तार हो जायं। जोहान्सबर्गमे ऐसी कोई बात हो तो मुझको ही खबर दे। और कही हो तो उन स्थानोमे नियुक्त मन्त्रियोको खबर दे और उनकी सलाहके अनुसार काम करे। स्वयसेवकोकी हरएक टुकडीका एक मुखिया या नायक था। उसकी आज्ञाका पालन करना दूसरे स्वयसेवको (पहरेदारो) का फर्ज था।

भारतीय जनताके लिए इस प्रकारका यह पहला ही अनुभव था। १२ बरससे ऊपरकी उम्रवाले सब लोग 'पिकेट' या पहरेदारका काम करनेके लिए चुन लिये गये थे। इससे १२ से १८ बरस तकके नवयुवक भी बडी संख्यामे स्वयसेवक बना लिए गये थे, पर स्थानीय कार्यकर्ता जिसे न जानते हो ऐसा कोई भी व्यक्ति स्वीकार नही किया जाता था। इतनी सावधानीके अतिरिक्त हर सभामे दूसरे तौरपर लोगोको जता दिया गया था कि नुकसानके डरसे या और किसी कारणसे जो कोई नया परवाना निकलवाना चाहे, नेता उसके साथ एक स्वयसेवक कर देगा जो साथ जाकर उसे एशियाटिक दफ्तरमे पहुचा देगा और काम हो जानेपर उसे फिर स्वयसेवकोके घेरके बाहर पहुचा आयेगा। बहुतोने इस सुरक्षाके प्रबंधका लाभ भी उठाया। स्वयसेवकोने हर जगह बडे उत्साहसे काम किया। वे सदा अपने काममे मुस्तैद और चौकन्ने रहते। मोटे हिसाबसे सब [illegible]

है कि पुलिसने उन्हे बहुत तग नही किया। कभी-कभी करती तो स्वयसेवक उसे सह लेते।

स्वयसेवकोने इस काममे हास्य रसका भी मिश्रण किया था जिसमे कभी-कभी पुलिस भी शामिल होती। अपना वक्त आनदमे बितानेके लिए वे अनेक चुटकुले ढूढ निकालते। एक बार रास्ता रोकनेके इलजामपर वे राहदारीके कानूनके अदर गिरफ्तार कर लिये गये। यहा सत्याग्रहमे असहयोग न था। इसलिए अदालतमे बचाव न करनेका नियम नही था, यद्यपि यह सामान्य नियम था कि जनताका पैसा खर्च करके वकील रखकर बचाव नही कराया जायगा। इन स्वयसेवकोको अदालतने निरपराध कहकर छोड दिया। इससे उनका उत्साह और बढा।

इस प्रकार जो हिंदुस्तानी परवाना लेना चाहते थे यद्यपि उनपर प्रकटमे स्वयसेवकोकी ओरसे कोई असभ्य व्यवहार या जोर-जबर्दस्ती नही होती थी, फिर भी मुझे यह तो स्वीकार करना ही होगा कि लडाईके सिलसिलेमे एक ऐसा भी दल खडा हो गया था जिसका काम बिना स्वयसेवक बने छिपे तौरपर परवाना लेनेवालोको मारपीटकी धमकी देना या दूसरे तौरपर नुकसान पहुचाना था। यह दुखद बात थी। ज्योही इसकी खबर मिली, इसे रोकनेके लिए खूब कडे उपाय किये गये। इसके फलस्वरूप धमकिया देना बद-सा हो गया, पर उसका जड-मूलसे नाश नही हुआ। धमकियोका असर रह ही गया और मै यह भी देख सका कि उतने अशमे लडाईको नुकसान पहुचा। जिन्हे डर लग रहा था उन्होने तुरत सरकारी सरक्षण ढूढा और वह उन्हे मिला। यो कौममे विषका प्रवेश हुआ और जो कमजोर थे वे और भी कमजोर हो गये। इससे विषको पोषण मिला, क्योकि दुर्बलताका स्वभाव बदला लेनेका होता ही है।

इन धमकियोका असर बहुत ही थोड़ा हुआ, पर लोकमत और स्वयसेवकोकी उपस्थितिसे परवाना लेनेवालोके नाम जनतापर प्रकट होगे, इन दोनो बातोका असर बहुत गहरा हुआ। मै एक भी हिदुस्तानीको नही जानता जो यह मानता हो कि खूनी कानूनके सामने सिर झुका देना अच्छा है। जो परवाने लेने गये वे महज इसलिए गये कि कष्ट सहने या हानि उठानेका दम उनमे नही था। इसीसे वे जाते हुए शरमाये भी।

एक ओर लोकलाज और दूसरी ओर अपने व्यापारको नुकसान पहुचनेका डर इस दुहरी कठिनाईसे निकलनेका रास्ता कुछ मुखिया हिदुस्तानियोने ढूढ निकाला। एशियाटिक दफ्तरके साथ बातचीत कर उन्होने यह प्रबंध किया कि दफ्तरका कोई अहलकार किसी निजी मकानमे और वह भी रातमे नौ-दस बजेके बाद जाकर उन्हे परवाने दे दे। उन्होने सोचा कि इस प्रबधसे कुछ वक्ततक तो उनके खूनी कानूनके सामने घुटने टेक देनेकी किसीको खबर ही नही होगी, और चूकि वे नेता थे, इसलिए उनको देखकर दूसरे भी उस कानूनको मान लेगे। इससे और कुछ न हो तो लज्जाका बोझ तो कुछ हल्का हो ही जायगा। पीछे बात लोगोपर प्रकट हो गई तो उसकी चिता नही।

पर स्वयसेवकोकी चौकसी इतनी कड़ी थी कि कौमको पल-पलकी खबर मिला करती थी। एशियाटिक दफ्तरमे भी ऐसा कोई होगा ही जो सत्याग्रहियोको इस तरहकी सूचनाए देता रहा हो। फिर कुछ ऐसे लोग भी थे जो खुद तो कमजोर थे, पर नेताओका खूनी कानूनके सामने सिर झुका देना बर्दाश्त नही कर सकते थे और जो इस सद्भावसे सत्याग्रहियोको खबर दे दिया करते थे कि वे दृढ रहे तो हम भी रह सकेगे। यो एक बार इस चौकसीके दरमियान कौमको

खबर मिली कि अमुक रातको अमुक दुकानमे फला-फला आदमी परवाना लेनेवाले है। इससे कौमने पहले तो यह इरादा रखनेवालोको समझानेका यत्न किया, फिर उस दुकानपर पहरा भी बैठवा दिया। पर मनुष्य अपनी कमजोरी-को कबतक दबा सकता है? रातके दस-ग्यारह बजे कुछ मुखियोने इस तरह परवाने लिये और एक सुरमे बजनेवाली बासरीमे विसवादी स्वर बज उठा। दूसरे ही दिन इनके नाम भी कौमने प्रकाशित कर दिये। पर शर्मकी भी एक हद होती है! स्वार्थ जब सामने आकर खडा होता है तब लाज-सकोच काम नही देता और मनुष्य सत्पथसे भ्रष्ट हो ही जाता है। इस पहली फूटके फलस्वरूप धीरे-धीरे कोई पाच सौ आदमियोने परवाने ले लिये। कुछ दिनोतक परवाने देनेका काम निजी मकानोमे ही होता रहा, पर ज्यो-ज्यो लाजका बल घटता गया त्यो-त्यो इन पाच सौ आदमियोमे कितने ही खुले आम भी अपने नाम दर्ज करानेके लिए एशियाटिक दफ्तरमे जाने लगे।

: १८ :

पहला सत्याग्रही कैदी

अथक प्रयत्न करनेपर भी जब एशियाटिक दफ्तरको ५०० से अधिक आदमी नाम दर्ज करानेवाले नही मिल सके तब उस महकमेके अफसरोने निश्चय किया कि अब हमे किसी-न-किसीको गिरफ्तार करना चाहिए। पाठक जर्मिस्टन नगरका नाम जानते है। वहा बहुतसे हिदुस्तानी बसते थे। उनमे पडित रामसुदर नामका एक आदमी था। वह देखनेमे बहादुर आदमी-सा लगता था और वाचाल था।

थोड़े-बहुत श्लोक भी याद थे। उत्तर भारतका रहनेवाला था, इसलिए रामायणके कुछ दोहे-चौपाइया तो उसे याद होने ही चाहिए। वह पडित कहलाता था, इससे लोगोमे उसकी प्रतिष्ठा भी थी। उसने जगह-जगह भाषण दिये। अपने भाषणोमे वह खूब जोश उडेल सकता था। अत वहाके कुछ विघ्नसतोषी भारतीयोने एशियाटिक दफ्तरको सुझाया कि रामसुदर पडितको गिरफ्तार करले तो जर्मिस्टनके बहुतसे हिदुस्तानी परवाने ले लेगे। उस विभागके अधिकारी रामसुदर पडितको पकडनेके लिए इस लोभके वश हुए बिना नही रह सके। रामसुदर पडित गिरफ्तार कर लिया गया। इस तरहका यह पहला ही मुकदमा था। इसलिए सरकार और भारतीय जनतामे भी इससे गहरी हलचल मची। जिस रामसुदर पडितको अबतक केवल जर्मिस्टन ही जानता था, उसको क्षणभरमे सारा दक्षिण अफ्रीका जानने लगा। जैसे किसी महान् पुरुषपर मुकदमा चल रहा हो और वह सबकी निगाह अपनी ओर खीच ले वैसे ही सबकी आखे राम-सुदर पडितपर लग गई। शाति-रक्षाके लिए किसी प्रकारके प्रबधकी आवश्यकता सरकारको नही थी, फिर भी उसने वैसा बदोबस्त भी कर लिया। अदालतमे भी यह मानकर राम-सुदरकी इज्जत की गई कि वह सामान्य अपराधी नही, बल्कि हिदुस्तानी कौमका एक प्रतिनिधि है। अदालतका कमरा उत्सुक भारतीय दर्शकोसे भर गया था। राम-सुदरको एक महीनेकी सादी कैदकी सजा मिली। वह जोहान्सबर्गकी जेलमे रखा गया। उसके लिए यूरोपियन वार्डमे अलग कोठरी दी गई। उससे मिलने-जुलनेमे तनिक भी कठिनाई नही होती थी। बाहरसे खाना भेजनेकी इजाजत थी और भारतीय जनता नित्य उसके लिए सुदर खाना बनाकर भेजा करती। वह जिस चीजकी इच्छा करता वह

हाजिर कर दी जाती। जनताने उसका जेल-दिवस बडी धूम-धामसे मनाया। कोई हताश नही हुआ, बल्कि लोगोका उत्साह और बढा। जेल जानेको सैकडो तैयार थे। एशियाटिक विभागवालोकी आशा फलीभूत नही हुई। जर्मिस्टनके भारतीय भी परवाना लेने नही गये। हिंदुस्तानी कौम ही नफेमे रही। महीना पूरा हुआ। रामसुदर छूटा और बाजे-गाजेके साथ जुलूस बनाकर उसको सभाके लिए नियत स्थानपर ले गये। वहा उत्साह बढानेवाले भाषण हुए। लोगोने फूल-मालाओसे राममुन्दरको ढक दिया। स्वयसेवकोने उसके सम्मानमे दावत दी और सैकडो भारतीय यह सोचकर राम-सुदर पडितसे मीठी ईर्ष्या करने लगे कि हम भी जेल गये होते तो कैसा अच्छा होता!

पर रामसुदर खोटा सिक्का निकला। उसका बल झूठी सतीका-सा था। एक महीनेके पहले तो जेलसे निकला ही नही जा सकता था, क्योकि उसकी गिरफ्तारी अचानक हुई थी। जेलमे तो उसने वह अमीरी की जो बाहर कभी मुयस्सर नही हुई थी। फिर भी स्वच्छद विचरनेवाला और व्यसनी मनुष्य जेलके एकान्त-वास और अनेक प्रकारके भोजन मिलते रहनेपर भी वहा रखे जानेवाले सयमको सहन नही कर सकता। यही बात रामसुदर पडितकी हुई। भार-तीय जनता और जेलके अमले उसकी इतनी खुशामद बजा रहे थे, फिर भी जेल उसको कडवी लगी और उसने ट्रान्सवाल और यह दोनोसे आखिरी सलाम कर अपना रास्ता लिया। कौमोमे कुछ चतुर दाव-पेच जाननेवाले लोग तो होते ही है। यही बात हमारे सग्रामके विषयमे भी कही जा सकती है। लोग कानूनके रग-रेशेसे वाकिफ थे। पर उसमे भी होशियारी [illegible] सकता है, यह सोचकर उन्होने [illegible] गुप्त [illegible], उनकी पोल खुलनेसे पहले, [illegible]

प्रकट नही होने दिया। पीछे मुझे मालूम हुआ कि रामसुदर गिरमिटिया था जो अपना गिरमिट पूरा किये विना भाग आया था। उसके गिरमिटिया होनेकी वात मै यहा घृणासे नही लिख रहा हू। गिरमिटिया होना कोई ऐव नही। पाठक अतमे देखेगे कि जिनसे इस युद्धको अतिशय शोभा मिली वे गिरमिटिए ही थे। लडाई जीतनेमे भी उनका हिस्सा वडे-से-वडा था। हा, गिरमिटसे भाग निकलना अवश्य दोष था।

पर रामसुदरका सारा इतिहास मैने उसके दोष दिखानेके लिए नही लिखा है, वल्कि उसमे जो तत्त्व छिपा है उसे प्रकट करनेके लिए ही उसका समावेश किया है। हरएक शुद्ध सग्रामके नेताओका फर्ज होता है कि केवल शुद्ध जनोको ही लडाईमे ले, पर कितनी ही सावधानी क्यो न रखी जाय, अशुद्ध मनुष्योका प्रवेश रोका नही जा सकता। फिर भी नेता निडर और सच्चे हो तो अशुद्ध जनोके अनजानमे घुस आनेसे अतमे लडाईको नुकसान नही पहुचता। रामसुदर पडितका सच्चा रूप प्रकट हो गया तो उसकी कोई कीमत नही रही। वह वेचारा पडित न रहकर केवल रामसुदर रह गया। कौम उसको भूल गई, पर युद्धको तो उससे वल ही मिला। युद्धके निमित्त भोगी हुई कैद वट्टेखाते नही गई। उसके जेल जानेसे जो शक्ति जगी वह कायम रही और उसके उदाहरणसे दूसरे कमजोर दिलवाले अपने आप लडाईके मैदानसे खिसक गये। ऐसी कमजोरीकी कुछ और मिसाले भी सामने आई, पर उनका इतिहास मै नाम-धाम-सहित नही देना चाहता। उसे देनेसे कोई अर्थ नही सध सकता। पर हा, कौमकी सबलता-निर्बलता पाठकोकी निगाहसे वाहर न रहे, इस दृष्टिसे इतना कह देना जरूरी है कि रामसुदर अकेला ही रामसुदर नही था, पर मैने देखा कि सभी रामसुदरोने सग्रामकी सेवा ही की।

पाठक रामसुदरके दोष न देखे। इस जगत्मे मनुष्य-मात्र अपूर्ण है। किसीकी अपूर्णता अधिक देखनेमे आती है तो हम उसकी ओर उगली उठाते है। वस्तुत यह भूल है। रामसुदर कुछ जान-बूझकर निर्बल नही बना। मनुष्य अपने स्वभावकी दशा बदल सकता है, उसपर अकुश रख सकता है, पर उसे जडमूलसे कौन मेट सकता है? जगत्-कर्ताने इतनी स्वतत्रता उसको दी ही नही। बाघ अपनी खालकी विचित्रताको बदल सकता है तो मनुष्य भी अपने स्वभावकी विचित्रता बदल सकता है। भाग जानेपर भी रामसुदरको अपनी कमजोरीपर कितना पश्चाताप हुआ होगा, यह हम कैसे जान सकते है? अथवा उसका भाग जाना ही क्या उसके पश्चातापका एक सबल प्रमाण नही माना जा सकता? वह बेशर्म होता तो उसे भागनेकी क्या जरूरत थी? परवाना निकलवाकर खूनी कानूनके अनुसार वह सदा जेल-मुक्त रह सकता था। यही नही, वह चाहता तो एशियाटिक दफ्तरका दलाल बनकर दूसरोको बहका सकता था और सरकारका प्रिय भी बन सकता था। हम यह उदार अर्थ क्यो न करे कि वह करनेके बदले अपनी कमजोरी कौमको दिखानेमे उसको शर्म लगी और उसने मुह छिपा लिया, और यह करके भी उसने कौमकी सेवा ही की?

: १९ :

'इंडियन ओपीनियन'

सत्याग्रहकी लडाईमे बाहरके और भीतरके जितने भी साधन अपने पास थे, उन सबको मुझे पाठकोके सामने रखना है। इसलिए 'इडियन ओपीनियन' नामका जो साप्ताहिक पत्र

दक्षिण अफ्रीकामे आज भी निकल रहा है उसका परिचय भी उन्हे करा देना जरूरी है। दक्षिण अफ्रीकामे पहला हिदुस्तानी छापाखाना खोलनेका यश मदनजीत व्यावहारिक नामके गुजराती सज्जनको है। यह छापाखाना कुछ बरसोतक कठिनाइयोके बीच चलाते रहनेके बाद उन्होने अखबार निकालनेका भी इरादा किया। इसमे उन्होने स्व० मनसुखलाल नाजरकी और मेरी सलाह ली। अखबार डर्बनसे निकला, मनसुखलाल नाजर उसके अवैतनिक सपादक हुए। अखबारमे शुरूसे ही घाटा रहने लगा। अतमे यह निश्चय हुआ कि उसमे काम करनेवालोको हिस्सेदार या हिस्सेदार सरीखा बना ले, एक खेत खरीदकर उसमे उन लोगोको आबाद करे और वहीसे अखबार निकाले। यह खेत डर्बनसे १३ मीलके फासलेपर एक सुदर पहाडीपर अवस्थित है। उसके पासका रेलवे स्टेशन खेतसे ३ मील दूर है। उसका नाम फिनिक्स है। अखबारका नाम शुरूसे ही 'इडियन ओपीनियन' है। एक समय वह अग्रेजी, गुजराती, तामिल और हिदी इन चार भाषाओमे निकलता था। तामिल और हिदीका बोझ हर तरह भारी लगता था। ऐसे तामिल और हिदी लेखक नही मिलते थे जो खेतपर रहनेको तैयार हो और उनके लेखोपर नियत्रण भी नही रखा जा सकता था। इससे ये विभाग बद कर दिये गये और अग्रेजी तथा गुजराती विभाग चालू रखे गये। सत्याग्रहकी लडाई जब शुरू हुई उस वक्त वह इसी रूपमे निकल रहा था। उस सस्थामे बसनेवालोमे गुजराती, हिदुस्तानी, तामिल, अग्रेज सभी थे। मनसुखलाल नाजरकी अकाल मृत्युके बाद एक अग्रेज मित्र हर्बर्ट किचन सपादक हुए। अनन्तर हेनरी एस० एल० पोलक सपादक रहे और अनेक वर्षोतक यह भार उठाते रहे। मेरे और इनके कारा-वास-कालमे मेरे प्यारे स्वर्गीय जोसफ डोकने भी [illegible]

सपादकका काम सम्हाला । इस अखबारके जरिये हर हफ्ते कौमको हफ्तेकी सारी खबरे देनेका काम भलीभाति हो सकता था । अग्रेजी विभागके द्वारा गुजराती न जाननेवाले हिन्दुस्तानियोको लडाईकी थोडी-बहुत जानकारी होती रहती और हिदुस्तान, इग्लैड और दक्षिण अफ्रीकाके अग्रेजोके लिए तो 'इडियन ओपीनियन' साप्ताहिक समाचारपत्रका काम देता । मै मानता हू कि जिस युद्धका मुख्य आधार आतरिक बल हो वह अखबारके बिना लडा जा सकता है । पर इसके साथ-साथ मेरा यह भी अनुभव है कि 'इडियन-ओपीनियन' के कारण हमे जो सुभीते मिले थे, जो शिक्षा कौमको सहज ही मिल सकती थी, जो खबरे दुनियामे जहा-जहा हिदुस्तानी बसते थे वहा-वहा फैलाई जा सकती थी, वह शायद दूसरी तरहसे नही हो सकता था । इसलिए इतना तो पक्के तौरपर कहा जा सकता है कि लडाई लडनेके साधनोमे 'इडियन ओपीनियन' भी एक बडा उपयोगी और प्रबल साधन था ।

युद्धकी प्रगतिके साथ-साथ और अनुभव प्राप्त करते-करते जैसे-जैसे कौममे अनेक परिवर्तन हुए, वैसे ही 'इडियन ओपीनियन' मे भी हुए । इस अखबारमे पहले विज्ञापन और बाहरकी फुटकर छपाईके काम भी लिये जाते थे । मैने देखा कि इन दोनो कामोमे अपने अच्छे-से-अच्छे आदमियोको लगाना पडता था । विज्ञापन लेने ही हो तो कौन-से लिये जाय और कौन-से न लिये जाय इसको तै करनेमे सदा धर्म-सकट उपस्थित होता था । फिर कोई विशेष विज्ञापन न लेनेका विचार हो फिर भी उसे भेजनेवाला जातिका कोई मुखिया हो तो उसका दिल दुखनेके डरसे भी न लेने योग्य विज्ञापन लेनेके लोभमे फसना पडता । विज्ञापन प्राप्त करने और उसके पैसे वसूल करनेमे हमारे अच्छे-से-अच्छे आदमियोका वक्त जाता, खुशामद

करनी होती वह अलग। इसके साथ-साथ यह बात भी सोची गई कि अगर यह अखबार पैसा कमानेकी गरजसे नही, बल्कि कौमकी सेवाके उद्देश्यसे ही चलाया जा रहा हो तो यह सेवा जबर्दस्ती नही होनी चाहिए। कौम चाहे तभी होनी चाहिए। और कौमकी इच्छाका पक्का प्रमाण तो यही माना जा सकता था कि वह आवश्यक सख्यामे ग्राहक होकर उसका खर्च उठा ले। फिर हमने यह भी सोचा कि अखबार चलानेके लिए महीनेका खर्च निकालनेमे थोडेसे व्यापारियोको सेवाभावके नामपर अपने विज्ञापन देनेको समझानेसे कौमके आम लोगोको अखबार खरीदनेका कर्त्तव्य समझाना लुभानेवाले और लुब्ध होनेवाले दोनोकेलिए कैसी सुदर शिक्षा होगी। यह निश्चय हुआ और तुरत काममे लाया गया। फल यह हुआ कि जो लोग अबतक विज्ञापन आदिके झमेलेमे उलझे हुए थे वे अब अखबारको सुदर बनानेकी कोशिशमे लगे। कौम तुरत समझ गई कि 'इडियन ओपीनियन'की मालिकी और उसे चलानेकी जिम्मेदारी दोनो उसी की है। हम सब काम करनेवाले निश्चित हो गये। हमे बस इतनी चिता करनी रही कि कौम अखबार मागे तो पूरी-पूरी मेहनत करे और छुट्टी पाए। और अब हर हिंदुस्तानीकी बाह पकडकर उससे 'इडियन ओपीनियन' लेनेको कहनेमे शर्म नही रही, बल्कि यह कहना हम अपना धर्म समझने लगे। 'इडियन ओपीनियन'का आतरिक बल और स्वरूप भी बदला और वह एक महाशक्ति बन गया। उसकी साधारण ग्राहक-सख्या १२००-१५०० तक थी। वह दिन-दिन बढने लगी। उसका चदा भी बढाना पडा था, फिर भी जब लडाई उग्र रूप ग्रहण किया तब ग्राहक इतने बढ गये कि ३५०० प्रतियाँ छापनी पडीं। 'इडियन ओपीनियन'का पाठक-वर्ग अधिक-से-अधिक २० [illegible] माना जा सकता है। उसमें [illegible] [illegible] प्रतियोंका

अपना आश्चर्यजनक विस्तार कहा जा सकता है। कौमने इस वक्ततो इस अखबारको इतना अपना लिया था कि वक्ते वक्तपर उसकी प्रतिया जोहान्सबर्ग न पहुच जाती तो मुझपर शिकायतोकी झडी लग जाती। आमतौरसे वह इतवारको सवेरे जोहान्सबर्ग पहुच जाता। मै जानता हू कि अखबार आनेपर बहुतसे लोगोका पहला काम उसका गुजराती भाग आदिसे अततक वाच जाना होता था। एक आदमी पढता और उसके इर्द-गिर्द बैठे हुए दस-बीस लोग सुनते। हम लोग गरीब ठहरे। इसलिए कितने ही लोग साझेमे भी अखबार मगाते।

छापेखानेमे बाहरका काम न लेनेके बारेमे भी मै लिख आया हू। उसे बद करनेके कारण भी प्राय वही थे जो विज्ञापन बद कर देनेके थे। और उसे बद कर देनेसे कपोज करनेवालोका जो वक्त बचा उसका उपयोग हमने छापेखानेसे पुस्तके प्रकाशित करनेमे किया। कौमको मालूम था कि इस काममे भी हमारा उद्देश्य पैसा कमाना नही था और पुस्तकें चूकि लड़ाईमे सहायता देनेके उद्देश्यसे ही छापी जाती थी, इसलिए उनकी खपत भी अच्छी होने लगी। इस प्रकार अखबार और छापाखाना दोनोने युद्धमे अपना भाग अर्पण किया और सत्याग्रहकी जड ज्यो-ज्यो कौममे गहरी होती गई त्यो-त्यो अखबार और छापेखानेकी सत्याग्रहकी दृष्टिसे नैतिक प्रगति भी होती गई, यह बात साफ तौरसे दिखाई दे सकती थी।

: २० :

पकड़-धकड़

हम यह देख चुके कि [illegible] सरकारने

लिए मददगार नही साबित हुई। दूसरी ओर अधिकारियोने यह भी देखा कि कौम बडे जोशके साथ एकदिल होकर आगे बढ रही है। 'इडियन ओपीनियन' के लेख तो एशियाटिक महकमेके अधिकारी ध्यानपूर्वक पढते ही थे। लडाईसे सबध रखनेवाली कोई भी बात छिपाई तो जाती ही नही थी। कौमकी निर्बलता-सबलता सभी शत्रु-मित्र-उदासीन जो कोई भी देखना चाहे इस अखबारमे देख सकता था। काम करने-वाले शुरूसे ही यह सीख गये थे कि जिस लडाईमे बुरा करनेको कुछ है ही नही, जिसमे फरेब और चालाकीके लिए जगह ही नही और जिसमे बल हो तभी विजय हो सकती है, उसमे छिपा रखनेको कुछ हो ही नही सकेगा। कौमके स्वार्थका ही यह आदेश था कि निर्बलता रूपी रोगको निर्मूल करना हो तो निर्बलताकी परीक्षा करके उसे समुचित रूपमे प्रकट करना चाहिए। अधिकारियोने जब देखा कि 'इडियन ओपीनियन' इसी नीतिसे चल रहा है तब उनके लिए वह हिंदुस्तानी कौमके वर्त्तमान इतिहासका दर्पण रूप हो गया और इससे उन्होने सोचा कि जबतक हम कुछ खास नेताओको न पकडे, लडाईका बल टूटनेका नही। अत १९०७ के दिसबर, बडे दिनके हफ्तेमे, कुछ नेताओको अदालतमे हाजिर होनेका नोटिस मिला। मुझे यह स्वीकार करना होगा कि यह नोटिस तामील करानेमे अधिकारियोने सभ्यताका व्यवहार किया। वे चाहते तो नेताओको वारटमे गिरफ्तार कर सकते थे। उसके बदले उन्होने हाजिर होनेका नोटिस देकर सभ्यताके साथ-साथ अपना यह विश्वास भी प्रकट किया कि नेता आप आपको गिरफ्तार करानेको तैयार है। जिन लोगोको नोटिस मिला था वे नियत तिथि अर्थात् शनिवार २८ दिसबरको अदालतमे हाजिर हुए। नोटिसमे लिखा था कि कानूनके अनुसार तुम्हे परवाना लेना चाहिए था, पर तुमने नही लिया।

अब कारण बताओ कि तुम्हे एक विशेष अवधिके अदर ट्रासवाल छोड देनेका हुक्म क्यो न दिया जाय?

इन लोगोमे क्विन नामका चीनी भी था जो जोहान्सबर्गमे बसनेवाले चीनियोका मुखिया था। जोहान्सबर्गमे उनकी आबादी ३-४ सौ व्यक्तियोकी होगी। वे सभी व्यापार या छोटी-मोटी खेतीका धधा करते थे। हिंदुस्तान खेतीके लिए मशहूर मुल्क है। पर मै मानता हू कि चीनके लोग इस धधेमे जितना आगे बढ गये है वहातक हम नही पहुच पाये है। अमरीका आदि देशोमे खेतीकी जो आधुनिक प्रगति हुई है उसका वर्णन नही हो सकता। पर पश्चिमकी खेतीको मै अभी प्रयोग रूप ही मानता हू। परतु चीन तो हमारे देश जैसा ही प्राचीन देश है और वहा पुराने जमानेसे ही इस कलाका विकास किया गया है। इससे चीन और हिंदुस्तानकी तुलना करके हम कुछ सीख सकते है। जोहान्सबर्गके चीनियोकी खेती देखकर और उनकी बाते सुनकर मुझे तो यही जान पडा कि चीनियोका ज्ञान और उद्यम हमसे बहुत बढा-चढा है। जिस जमीनको हम पडती मानकर उसका कोई उपयोग नही करते, चीनी उसमे भिन्न-भिन्न प्रकारकी जमीनके अपने सूक्ष्म ज्ञानकी बदौलत अच्छी फसल उपजा सकते है।

यह उद्योगी और चतुर जाति भी खूनी कानूनकी श्रेणीमे आती थी। इससे उसने सत्याग्रहकी लडाईमे भारतीयोका साथ देना मुनासिब समझा। पर यह होते हुए भी दोनोके सारे काम-काज आदिसे अततक बिलकुल अलग रहे। दोनो अपनी-अपनी सस्थाओके जरिये लड रहे थे। इसका शुभ फल यह होता है कि जबतक दोनो कौमे अपने निश्चयपर अटल रहती है तबतक दोनोका लाभ होता है, पर अगर एक गिर भी जाय तो दूसरेका कोई नुकसान पहुचनेका

कारण नही रहता। गिरनेका तो रहता ही नही। अतमे बहुत-से चीनी फिसल गये, क्योकि उनके नेताने उन्हे दगा दिया। उसने खूनी कानूनके सामने घुटने तो नही टेके, पर एक दिन किसीने मुझे खबर दी कि वह बिना हिसाब-किताब दिये भाग गया। सरदारके चल देनेपर अनुयायियोका टिका रहना सदा ही कठिन होता है। फिर उसमे कोई मलिनता देखनेमे आये तब तो दूना वैराग्य उत्पन्न होता है। पर जब पकड-धकड शुरू हुई उस वक्त तो चीनियोका जोश खूब बढा हुआ था। उनमेसे शायद ही किसीने परवाना लिया हो। इससे जैसे भारतीय नेता गिरफ्तार किये गये वैसे ही चीनियोके कर्ता-धर्ता श्री क्विन भी पकडे गये। कुछ दिनोतक तो कह सकते है कि उन्होने बहुत अच्छा काम किया।

गिरफ्तार किये गये लोगोमे जिस दूसरे नेताका परिचय यहा देना चाहता हू वह है थम्बी नायडू। थबी नायडू तामिल थे। उनका जन्म मोरीशसमे हुआ था। पर मा-बाप मद्रास इलाकेसे आजीविकाके लिए वहा गये थे। थबी नायडू सामान्य व्यापारी थे, स्कूलकी पढाई एक तरहसे कुछ भी न थी, पर अनुभव-ज्ञान ऊचे प्रकारका था। अंग्रेजी बहुत अच्छी बोल-लिख सकते थे, यद्यपि भाषाशास्त्रकी दृष्टिसे उसमे दोष दिखाई देते थे। तामिलका ज्ञान भी अनुभवसे ही प्राप्त किया था। हिदुस्तानी भी अच्छी तरह समझ और बोल लेते थे। तेलगू भी काफी जानते थे पर हिंदी या तेलगू लिपि बिलकुल नही जानते थे। मोरीशसकी भाषाका भी, जिसे क्रीओल कहते है और जो फ्रेंचका अपभ्रंश कही जा सकती है, थबी नायडूको बहुत अच्छा ज्ञान था। दक्षिणके भारतीयोमे इतनी भाषाओका कामचलाऊ ज्ञान होना असाधारण नही था। [illegible] सैकडो [illegible] मिलेगे जिन्हे इन सभी भाषाओका सामान्य [illegible]

है। इन सबके साथ हबशी भाषाका ज्ञान तो उन्हे होता ही है। इन सारी भाषाओका ज्ञान उन्हे अनायास हो जाता है और हो सकता है। इसका कारण मुझे तो यही दिखाई दिया कि पर-भाषाके द्वारा शिक्षा प्राप्त करके उनका दिमाग थक नही गया था। उनकी स्मरण-शक्ति तीव्र होती है और उन भाषाओके बोलनेवालोके साथ बात-चीत और अवलोकन करके ही वे विविध भाषाओका ज्ञान प्राप्त कर लेते है। इसमे उनके दिमागको बहुत श्रम नही करना पडता, पर दिमागकी इस हलकी कसरतसे उनकी बुद्धि स्वाभाविक रीतिसे खिल उठती है। यही बात थबी नायडूकी भी थी। उनकी बुद्धि बहुत तीक्ष्ण थी। नये-नये मसलोको झट समझ लेते थे। उनकी हाजिर-जवाबी देखकर तो लोग दग रह जाते थे। हिंदुस्तानके उन्होने दर्शन नही किये थे, फिर भी उसपर उनका अगाध प्रेम था। स्वदेशाभिमान उनकी नस-नसमे भर रहा था। उनकी दृढता उनके चेहरेपर चित्रित थी। उनके शरीरकी गठन बडी मजबूत और कसी हुई थी। मेहनत करते थकना जानते ही नही थे। कुरसीपर बैठकर नेतृत्व करना हो तो उस पदको भी सुशोभित कर सकते थे और इतनी ही स्वाभाविक रीतिसे मोटियेका काम भी कर सकते थे। सरेआम बोझ उठाकर चलने वह तनिक भी नही शरमाते थे। मेहनत करनी हो तो रात-दिनका भेद नही जानते थे और कौमके लिये सर्वस्व होमनेमें हरएकके साथ प्रतिस्पर्द्धा कर सकते थे। अगर थबी नायडू हदसे ज्यादा साहसी न होते और उनमें क्रोध न होता तो आज यह वीर पुरुष काछलियाकी अनुपस्थितिमे ट्रासवालमे कौमके सेनानी जगह सहज ही ले सकता था। जबतक ट्रासवालकी लडाई चलती रही, उनके क्रोधका विपरीत परिणाम नही हो सका और उनमे जो अमूल्य गुण थे वे रत्नकी भाति चमकते रहे थे। पर पीछे मुझे मालूम हुआ कि

उनका क्रोध और साहसिकता (rashness) उनके प्रबल शत्रु सिद्ध हुए और उन्होंने उनके गुणोंको ढक दिया। कुछ भी हो, दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रह-संग्राममें थंबी नायडूका नाम सदा प्रथम वर्गमें रहेगा।

हम सबको अदालतमें साथ ही हाजिर होना था, पर सबके मुकदमे अलग-अलग चलाये गये। मजिस्ट्रेटने कुछ अभियुक्तोंको ७ या १४ दिनके अंदर और बाकी सबको ४८ घंटेके अंदर ट्रांसवाल छोड़ देनेका हुक्म दिया। आज्ञा-की अवधि १९०८की १० वीं जनवरीको पूरी होती थी। उसी दिन सजा सुनानेकेलिए हमें अदालतमें हाजिर होनेका हुक्म मिला। हममेंसे किसीको कोई बचाव तो करना नहीं था। सबको यह स्वीकार करना था कि हमने कानूनके अनुसार परवाने नहीं लिये हैं और इस कारण मजिस्ट्रेटने जो हमें निर्दिष्ट अवधिके भीतर ट्रांसवाल छोड़ देनेका हुक्म दिया है उसका सविनय अनादर करनेका अपराध हमने किया है।

मैंने अदालतसे छोटा-सा बयान देनेकी इजाजत मांगी और वह मिल गई। मैंने इस आशयका बयान दिया—"मेरे और मेरे बाद सुने जाने वाले मुकदमोंमें भेद किया जाना चाहिए। मुझे अभी-अभी प्रिटोरियासे खबर मिली है कि वहां मेरे देश-बंधुओंको तीन महीनेकी कड़ी कैदकी सजा मिली है और भारी जुर्माना भी किया गया है, जो अदा न किया गया तो तीन महीनेकी कड़ी कैद और भुगतनी होगी। इन लोगोंने अगर अपराध किया है तो मैंने और बड़ा अपराध किया है। अब मजिस्ट्रेटसे मेरी प्रार्थना है कि वह मुझे ज्यादा-से-ज्यादा सजा दे।' पर मजिस्ट्रेटने मेरी प्रार्थना स्वीकार नहीं की और मुझे दो महीनेकी सादी कैदकी सजा दी। जिस अदालतमें मैं [illegible] वकीलकी हैसियतसे खड़ा [illegible] [illegible] बैठा था उसके [illegible] [illegible]

विचार कुछ विचित्र अवश्य लगा, पर इतना तो मुझे अच्छी तरह याद है कि वकील-मंडलकी बैठकमें बैठनेमें जो कुछ सम्मान मैंने माना होगा, अभियुक्तके पीजड़ेमें खड़े होनेमें उससे कहीं अधिक सम्मान समझा। उसमें प्रवेश करनेमें लेशमात्र भी क्षोभ मेरे मनमें हुआ, यह मुझे याद नहीं आता। अदालतमें तो सैकड़ों हिंदुस्तानी भाइयों, वकीलों, मित्रों आदिके सामने मैं खड़ा था। ज्योंही सजा सुनाई गई, सिपाही मुझे, कैदियोंको बाहर ले जानेके दरवाजेसे उस जगह ले गया, जहां कैदी पहले रखे जाते हैं।

उस वक्त मुझे अपने आस-पास सब कुछ शून्य, निस्तब्ध दिखाई दिया। कैदियोंके बैठनेके लिए एक बेंच पड़ी थी। उसपर बैठनेको कहकर और दरवाजा बंद करके पुलिस कर्मचारी चलता बना। यहां मुझे क्षोभ अवश्य हुआ। मैं गहरे विचारमें डूब गया। कहां है घर-बार! कहां है वकालत! कहां हैं सभाएं! यह सब क्या स्वप्नवत् था और आज मैं कैदी हूं! दो महीनेमें क्या होगा? दो महीने पूरे काटनेही होंगे? लोग अपने वचनके अनुसार जेल चले जाएं तो दो महीने क्यों बिताने पड़ेंगे? पर वे न आएं तो दो महीने कैसे पहाड़से हो जाएंगे? इन विचारोंको लिखनेमें जितना समय लग रहा है उसका सौवां हिस्सा भी दिमागमें इन और ऐसे अन्य विचारोंके आनेमें नहीं लगा। ये विचार ज्योंही मनमें आये मैं लज्जित हुआ। यह कितना बड़ा मिथ्याभिमान है! मैं तो जेलको महल मनवानेवाला हूं! खूनी कानूनका सामना करते हुए जो कुछ सहन करना पड़े उसे दुःख नहीं, बल्कि सुख मानना चाहिए। उसका सामना करते हुए जान-माल सब अर्पण कर देना पड़े तो उसे तो सत्याग्रहमें बड़ा आनंद मानना चाहिए। यह सारा ज्ञान आज कहां चला गया? ये विचार मनमें आते ही मैं फिर होशमें आया

और अपनी मूर्खतापर हसने लगा। दूसरे भाइयोको कैसी कैद मिलेगी ? क्या उन्हे भी मेरे साथ ही रखेगे ? इन व्यावहारिक विचारोमे अब मै उलझ गया। मै इस उधेड-बुनमे पडा था कि इतनेमे दरवाजा खुला और एक पुलिस कर्मचारीने मुझे अपने पीछे आनेका हुक्म दिया। मै चला तो उसने मुझे आगे कर दिया और खुद पीछे हो लिया। वह मुझे जेलकी जगलेदार गाड़ीके सामने ले गया और उसमे बैठ जानेको कहा। मुझे जोहान्सबर्गके जेलखानेकी ओर ले गये।

जेलमे ले जानेके बाद मेरे कपड़े उतरवाये गये। मुझे मालूम था कि जेलमे कैदियोको नगा कर दिया जाता है। हम सबने निश्चय कर लिया था कि जेलके कायदे जहातक व्यक्तिगत अपमान करनेवाले या धर्म विरुद्ध न हो वहातक उनका इच्छा-पूर्वक पालन करेगे। इसे हमने सत्याग्रहीका धर्म माना था। जो कपड़े मुझे पहननेको मिले वे बहुत मैले थे। उन्हे पहनना तनिक भी नही रुचा। उन्हे पहनते और मनको इसके लिए झुकाते दुख हुआ। पर यह सोचकर मनको दबाया कि थोडा मैल बर्दाश्त करना ही होगा। नाम-धाम लिखकर मुझे एक बड़े कमरेमे ले गये। वहा कुछ ही देर रहा हूगा कि मेरे साथी भी हसते-बोलते आ पहुचे और उनका मुकदमा कैसे चला और क्या हुआ यह सब कह सुनाया। मै इतना जान सका कि मेरा मुकदमा हो जानेके बाद लोगोने काले झडे हाथमे लेकर जुलूस निकाला। कुछ लोग उत्तेजित भी हो गये। पुलिसने दखल दिया और कुछ लोगोपर मार भी पडी। हम सब एक ही जेलमे और एक ही बडी कोठरीमे रखे गये, इससे हम बहुत प्रसन्न हुए।

कोई छ बजे हमारा दरवाजा बद कर दिया गया। वहाकी जेलोकी कोठरियोके दरवाजोमे छडे वगैरह नही होती। बहुत ऊचाईपर दीवारमे एक छोटा झरोखा हवाके लिए रखा जाता है।

अत हमे जान पडा, जैसे हमें सदूकमे बद कर दिये गये हो। पाठक देखेगे कि जो आदर-सत्कार जेल-अधिकारियोने राम-सुदरका किया था वैसा कुछ हमारा नही किया। इसमे कोई अचरजकी बात नही। रामसुदर पहला सत्याग्रही कैदी था। इसलिए उसके साथ किस तरह बर्ताव किया जाय, अधिकारी इसे पूरी तरह समझ भी नही पाये थे। हमारी तादाद तो शुरूमे ही खासी थी और दूसरोको भी गिरफ्तार करनेका इरादा तो था ही। इसलिए हम हवशी वार्डमे रखे गये। दक्षिण अफ्रीकामे कैदियोके दो ही विभाग होते है—गोरे और काले। और हम हिंदुस्तानी कैदियोकी गिनती भी हवशी विभागमें ही होती है। मेरे साथियोको भी मेरी जितनी ही और सादी कैदकी सजा हुई थी।

सवेरा होनेपर हमे मालूम हुआ कि सादी कैदवालोको अपने निजके कपडे पहननेका अधिकार होता है और वे उसे न पहनना चाहे तो सादी कैद वालोके लिए जो खास पोशाक होती है वह दी जाती है। हमने तै कर लिया था कि घरके कपडे पहनना अयोग्य है और जेलके ही कपडे पहनना हमे मुनासिब होगा। हमने अधिकारियोको यह बता दिया। इससे हमे सादी कैदवाले हवशी कैदियोका पहनावा दिया गया। पर सादी कैदवाले सैकडो हवशी कैदी दक्षिण अफ्रीकाकी जेलमे होते ही नही। अत जब दूसरे सादी कैदवाले हिंदुस्तानी पहुचने लगे तो सादी कैदवाले कपडे जेलमे चुक गये। हमे इस बारेमे तो कोई तकरार करनी थी ही नही, इसलिए हमने सख्त कैदवाले कैदियोके कपडे पहननेमे आनाकानी नही की। कुछ लोग जो पीछे आये उन्होने ये कपडे पहननेके बदले अपने ही कपडे पहने रहना पसद किया। यह मुझे ठीक तो नही लगा, पर इस विषयमे आग्रह करना मुनासिब नही मालूम हुआ।

दूसरे या तीसरे दिनसे ही सत्याग्रही कैदी जेलमे भरने लगे। वे जानबूझकर गिरफ्तार होते थे। उनमे अधिकाश फेरी करनेवाले ही थे। दक्षिण अफ्रीकामे हरएक फेरी करनेवालेको, वह गोरा हो या काला, फेरी करनेका परवाना लेना पडता है। उसे हर वक्त अपने पास रखना होता है और पुलिस जब मागे तब दिखाना होता है। बहुत करके रोज ही कोई-न-कोई पुलिस कर्मचारी परवाना मागा ही करता है और जो न दिखाये उसे गिरफ्तार कर लेता है। हमारी गिरफ्तारीके बाद कौमने जेलको भर देनेका निश्चय किया था। फेरीवाले इसमे आगे बढे। उनके लिए गिरफ्तार होना आसान भी था। फेरीका परवाना नही दिखाया और गिरफ्तार हुए। यो गिरफ्तार होकर एक हफ्तेके अदर १०० से ऊपर सत्याग्रही कैदी हो गये। और थोडे बहुत तो आते ही रहते, इसलिए हमे तो एक तरहसे बिना अखबारके ही अखबार मिल जाता। रोजकी खबरे ये भाई लाया करते। जब सत्याग्रही बड़ी तादादमे गिरफ्तार होने लगे तब मजिस्ट्रेट या तो थक गया या, जैसा कि हम मानते थे, सरकारसे उसे आदेश मिला कि सत्याग्रहियोको आगेसे सादी कैद दी ही न जाय, मशक्कतवाली कैदकी ही सजा दी जाय। कारण कुछ भी हो, पर अब सत्याग्रहियोको कड़ी कैदकी ही सजा मिलने लगी। मुझे तो आज भी जान पड़ता है कि कौमका अनुमान सही था, क्योकि शुरूके मुकदमोमे जो सादी कैदकी सजाए दी गई उसके बाद इसी वक्तकी लडाईमे और पीछे समय-समयपर जो और लडाइया लडी गई उनमे कभी पुरुष क्या, स्त्रियोको भी सादी कैदकी सजा ट्रासवाल या नेटालकी एक भी अदालतमे नही सुनाई गई। जबतक सबको एक ही तरहकी हिदायत या हुक्म न मिला हो तबतक हरएक मजिस्ट्रेटका हर बार हर पुरुष और स्त्रीको मशक्कतवाली ही सजा देना

अगर आकस्मिक सयोग मात्र हो तो यह चमत्कार-सा माना जायगा।

इस जेलमे सादी कैदवाले कैदियोको भोजनमे सवेरे मकई-की लपसी मिलती थी। उसमे नमक नही होता था, पर हर कैदीको अलगसे थोडा नमक दिया जाता था। दोपहरको बारह बजे पाव भर भात, थोडा नमक और आधी छटाक घी और पाव भर डबल रोटी दी जाती थी। शामको फिर मकईके आटेकी लपसी और उसके साथ थोडी तरकारी, मुख्यत आलू दिया जाता था। आलू छोटे हो तो दो और बडे हो तो एक दिया जाता था। इस खुराकसे किसीका पेट नही भरता। चावल गीला पकाया जाता था। वहाके डाक्टरसे हमने कुछ मसाला मागा। उन्हे बताया कि हिंदुस्तानकी जेलोमे भी मसाला मिलता है। "यह हिंदुस्तान नही है और कैदीके लिए स्वाद होता ही नही। इसलिए मसाला भी नही हो सकता।" यह दोटूक जवाब मिला। हमने दालकी माग की, क्योकि उपर्युक्त आहारमे मासपेशी या पट्ठे बनानेका गुण नही था। डाक्टरने जवाब दिया—"कैदियोको डाक्टरी दलील नही देनी चाहिए। पट्ठे बनानेवाली खुराक आप लोगोको दी जाती है, क्योकि हफ्तेमे दो बार मकईके बदलेमे उबली हुई मटर दी जाती है।" मनुष्यका जठर दो हफ्तेमे या पखवाडेमे भिन्न-भिन्न गुणोवाला आहार भिन्न-भिन्न समयपर लेकर उसके सत्वको खीच ले सके तो डाक्टरकी दलील सही थी। बात यह थी कि डाक्टरका इरादा किसी तरह हमारे अनुकूल होनेका था ही नही। सुपरिटेंडेंटने हमारी यह माग मजूर कर दी कि अपना खाना हम खुद पकाया करे। थबी नायडूको हमने अपना पाक-शास्त्री चुना। [illegible] उसको बहुत झगडा करना पडता। साग-भाजी तौलमे कम मिले तो वह पूरी मागता। यही बात दूसरी चीजोके बारेमे भी थी। केवल दोपहरका खाना

पकाना ही हमारे जिम्मे किया गया था। वह हमारे हाथमे आनेके वाद हम अपना भोजन कुछ सतोपपूर्वक करने लगे।

पर ये सुभीते मिले, या न मिले, हर हालमे प्रसन्नतापूर्वक जेलकी सजा भोगनी है, इस निश्चयसे इस मडलीमेसे कोई भी नही डिगा। सत्याग्रही कैदियोकी सख्या वढते-वढते १५० से ऊपर हो गई थी। हम सव सादी कैदवाले थे, इसलिए अपनी कोठरी वगैरह साफ करनेके सिवा हमारे लिये और कोई काम नही था। हमने काम मागा। सुपरिटेडेटने जवाव दिया—"मै आप लोगोको काम दू तो माना जायगा कि मैने अपराध किया। इससे मै लाचार हू। सफाई आदि करनेमे आप जितना पसद करे उतना वक्त लगा सकते है।" हमने ड्रिल (कवायद) आदि किसी तरहकी कसरतकी माग की, क्योकि मशक्कतवाले हवशी कैदियोसे भी ड्रिल कराई जाती थी। जवाब मिला—"आपके रखवाले (वार्डर) के पास वक्त हो और वह आपको कसरत कराये तो मै एतराज नही करूंगा। पर उसे कराना मै उसका फर्ज नही बना सकता।" रखवाला वडा भलामानस था। उसे तो इतनी इजाजत भरकी दरकार थी। उसने वडी दिलचस्पीके साथ हमे रोज सवेरेकी ड्रिल कराना शुरू किया। यह हम अपनी कोठरीके छोटे-से आगनमे ही कर सकते थे। इसलिए हमे तो चक्कर-सा काटना होता था। यह भला रखवाला जिस तरह सिखा जाता उसी तरह नवावखा नामके एक पठान भाई उसे जारी रखते और कवायदके अग्रेजी शब्दोका उर्दू उच्चारण करके हमे हसा देते। 'स्टेड ऐट ईज' का वह 'सडलीज' कहते। कुछ दिनोतक तो हम समझ ही न सके कि यह कौनसा हिंदुस्तानी शब्द है। वादमे सूझा कि यह तो नवावखानी अग्रेजी है।

: २१ :

पहला समझौता

इस तरह जेलमे एक पखवाडा बीता होगा कि नये आनेवाले यह खबर लाने लगे कि सरकारके साथ समझौतेकी कुछ बातचीत चल रही है। दो-तीन दिन बाद जोहान्सबर्गके 'ट्रासवाल लीडर' नामक अग्रेजी दैनिकके सपादक अलबर्ट कार्टराइट मुझसे मिलने आये। जोहान्सबर्गमे उन दिनो जितने दैनिक निकलते थे, सबका स्वामित्व सोनेकी खानवाले किसी-न-किसी गोरेके हाथमे था, पर जो उनके विशेष स्वार्थके विषय न हो उन सभी प्रश्नोपर सपादक अपने स्वतत्र-विचार प्रकट कर सकता था। इन अखबारोके सपादक विद्वान् और विख्यात पुरुष ही चुने जाते थे। जैसे 'स्टार' नामके दैनिकके सपादक किसी वक्त लार्ड मिलनरके प्राइवेट सेक्रेटरी थे और 'स्टार'से 'टाइम्स'के सपादक मि० बकलकी जगह लेने विलायत गये। मि० अलबर्ट कार्टराइट बुद्धिमान होनेके साथ-साथ अतिशय उदार हृदयके थे। आमतौरसे वह सदा अपने अग्र लेखोमे भी भारतीयोके पक्षका समर्थन करते थे। उनके और मेरे बीच गहरा स्नेह हो गया था। मेरे जेल जानेके बाद वह जनरल स्मट्ससे मिल आये थे। जनरल स्मट्सने उन्हे मध्यस्थ मजूर कर लिया था। भारतीय नेताओसे भी वह मिले। नेताओने उन्हे एक ही जवाब दिया—"कानूनी बातोको हम नही समझ पाते। गाधी जेलमे है और हम समझौतेकी बातचीत करे, यह नही हो सकता। हम समझौता चाहते है, पर सरकार चाहती हो कि हमारे आदमी जेलमे बद रहे और समझौता हो जाय तो आपको गाधीसे मिलना चाहिए। वह जो करेगे वह हमे मजूर होगा।"

इसपर अलबर्ट कार्टराइट मुझसे मिलने आये और अपने साथ जनरल स्मट्सका बनाया हुआ या पसद किया हुआ समझौतेका मसविदा भी ले आये। उसकी भाषा गोल-मटोल थी। वह मुझे नही रुची। फिर भी एक परिवर्तनके साथ उस मसविदेपर दस्तखत करनेको मै खुद तैयार था। पर मैने उन्हे बताया कि बाहरवालोकी इजाजत होनेपर भी जेलके अपने साथियोकी राय लिये बिना मै हस्ताक्षर नही कर सकता। इस मसविदेका मतलब यह था कि हिंदुस्तानी अपने परवाने स्वेच्छासे बदलवा ले। उनपर किसी कानूनका प्रयोग नही हो सके, नये परवानेका रूप सरकार भारतीयोके साथ मशविरा करके तै करे और भारतीय जनताका बड़ा भाग स्वेच्छासे परवाना ले ले तो सरकार खूनी कानूनको रद कर देगी और अपनी खुशीसे लिए हुए परवानेको बाकायदा मान लेनेके लिए एक नया कानून पास करेगी। खूनी कानून रद करनेकी बात इस मसविदेमे स्पष्ट नही थी। मेरी दृष्टिसे उसे स्पष्ट करनेके लिए जो सुधार आवश्यक था वह मैने सुझाया। पर अलबर्ट कार्टराइटको इतना परिवर्तन भी पसद नही आया। उन्होने कहा—"जनरल स्मट्स इस मसविदेको अतिम मानते है। मैने खुद भी इसे पसद किया है और इस बातका तो मै आपको इतमीनान दिलाता हू कि अगर आप सबने परवाने ले लिये तो खूनी कानूनको रद हुआ ही समझिये।" मैने जवाब दिया—"समझौता हो या न हो, पर आपकी सहानुभूति और सहायताके लिए हम सदा आपके अहसानमद रहेगे। मै एक भी गैरजरूरी फेरफार नही कराना चाहता। जिस भाषासे सरकारकी प्रतिष्ठाकी रक्षा होती हो मै उसका विरोध नही करूगा। पर जहा मुझे खुद ही अर्थके विषयमे शका हो वहा तो मुझे हेर-फेर सुझाना ही होगा और अंतको अगर समझौता होना ही है तो दोनो पक्षोको मसविदेमे

अदल-बदल करनेका अधिकार होना ही चाहिए। यह अंतिम है, कहकर जनरल स्मट्सको पिस्तौल हमारे सामने नहीं कर देना चाहिए। खूनी कानून रूपी पिस्तौल तो हमारे सामने धरा ही है, अब इस दूसरे पिस्तौलका असर हमारे ऊपर क्या हो सकता है?" मि० कार्टराइट इस दलीलके खिलाफ कुछ कह नहीं सके और सुझाया हुआ परिवर्तन जनरल स्मट्सके सामने रखना स्वीकार किया। मैंने साथियोंसे मशविरा किया। उन्हें भी भाषा नहीं भाई, पर जनरल स्मट्स इस सुझाये सुधारके साथ मसविदेको मंजूर कर ले तो समझौता कर लेना चाहिए, यह उन्हें भी पसंद आया। जो लोग बाहरसे आये थे उन्होंने मुझे नेताओंका यह संदेसा दिया था कि मुनासिब समझौता होता हो तो उनकी मंजूरीकी राह न देखकर मैं उसे कर लूं। इस मसविदे पर मैंने मि० क्विन और थंबी नायडूकी सही ली और तीनोंके हस्ताक्षरके साथ मसविदा कार्टराइटके हवाले किया।

दूसरे या तीसरे दिन १९०८ की ३० वीं जनवरीको जोहान्सबर्गके पुलिस सुपरिंटेंडेंट मुझे जनरल स्मट्सके पास प्रिटोरिया ले गये। हममें बहुतसी बातें हुईं। मि० कार्टराइटके साथ उनकी जो बातचीत हुई थी वह उन्होंने मुझे बताई। हिंदुस्तानी कौम मेरे जेल जानेके बाद भी दृढ़ रही, इसके लिये भी उन्होंने मुझे मुबारकबाद दी और कहा—"मुझे आपके देशवासियोंसे नफरत हो ही नहीं सकती। आप जानते ही हैं कि मैं भी बैरिस्टर हूं। मेरे वक्तमें कुछ हिंदुस्तानी विद्यार्थी भी मेरे साथ पढ़ रहे थे। मुझे तो अपने कर्तव्यका पालन भर कर देना है। गोरे यह कानून मांगते हैं और आप स्वीकार करेंगे कि वे मुख्यतः बोअर नहीं, बल्कि अंग्रेज हैं। आपका सुधार मैं स्वीकार करता हूं। जनरल बोथाके साथ भी मैंने बातचीत कर ली है और मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि आप लोगोंमेंसे अधिकांश परवाना ले लेंगे तो मैं एशिया-

टिक ऐक्टको रद कर दूगा। अपनी मर्जीसे लिये जानेवाले परवानेको जायज बनानेवाले कानूनका मसविदा जब बनाने लगूगा तब उसकी एक नकल आपकी आलोचनाके लिए भेज दूगा। मै यह नही चाहता कि यह लडाई पीछे फिर शुरू हो और आपके देशवासियोकी भावनाओका आदर करना चाहता हू।" यह कहकर जनरल स्मट्स उठकर खडे हो गये। मैने पूछा—"अब मुझे कहा जाना है? और मेरे साथके दूसरे कैदियोका क्या होगा?" उन्होने हसकर जवाब दिया—"आप तो अभीसे आजाद है। आपके साथियोको कल सवेरे छोड देनेके लिए टेलीफोन करता हू। पर मेरी यह सलाह है कि आपके लोग बहुत जलसा-तमाशा न करे। करेगे तो सरकारकी स्थिति कुछ कठिन हो जा सकती है।" मैने जवाब दिया—"आप इतमीनान रखे, जलसेकी खातिर मै एक भी जलसा नही होने दूगा। पर समझौता कैसे हुआ, उसका स्वरूप क्या है और अब हिदुस्तानियोकी जिम्मेदारी कितनी बढ गई है, यह समझानेके लिए तो मुझे सभाए करनी ही होगी।" जनरल स्मटसने कहा—"ऐसी सभाए आप जितनी भी करनी चाहे करे। मै क्या चाहता हू यह आपने समझ लिया, इतना ही काफी है।"

इस वक्त शामके कोई सात बजे होगे। मेरे पास तो एक धेला भी नही था। जनरल स्मट्सके सेक्रेटरीने मुझे जोहान्सबर्ग जानेका भाडा दिया। यह बातचीत प्रिटोरियामे हुई थी। प्रिटोरियाके भारतीयोके पास रुकना और वहा समझौता प्रकट करना जरूरी नही था। मुख्य लोग जोहान्सबर्गमे ही थे। हमारा केद्र भी वही था। वहा जानेवाली आखिरी ट्रेन बाकी थी। वह मुझे मिल भी गई।

: २२ :

समझौतेका विरोध : मुझपर हमला

रातके कोई नौ बजे जोहान्सबर्ग पहुचा। तुरत अध्यक्ष सेठ ईसप मियाके यहा गया। मुझे प्रिटोरिया ले जानेकी खबर उन्हे मिल गई थी। इससे कुछ मेरी राह भी देखते रहे होगे। फिर भी मुझे अकेला पहुचा हुआ देखकर सबको अचभा हुआ और हर्ष भी। मैने कहा कि जितने आदमी इकट्ठे किये जा सके उतने ही को इकट्ठाकर हमे इसी वक्त सभा करनी होगी। ईसप मिया आदि मित्रोको भी यह सलाह पसद आई। अधिकाश भारतीय एक ही मुहल्लेमे रहते थे, इसलिए सूचना देना कठिन नही था। अध्यक्षका मकान मस्जिदके पास ही था, और सभाए तो मस्जिदके मैदानमे ही हुआ करती थी। इसमे कोई भारी प्रबध करना था ही नही। मचपर एक बत्ती लगवा लेना, बस यही प्रबध करना था। रातके ११ या १२ बजेके लगभग सभा हुई। सूचनाके लिए समय बहुत कम मिला था, फिर भी कोई एक हजार आदमी इकट्ठे हो गये थे।

सभा होनेके पहले जो खास-खास लोग मौजूद थे उन्हे मैने समझौतेकी शर्तें समझा दी थी। कुछ उनका विरोध करते थे। फिर भी उन सज्जनोंमे सभी लोग मेरी दलीले सुन लेनेके बाद समझौतेका औचित्य समझ गये। पर एक शका तो सबके मनमे थी—"अगर जनरल स्मट्सने विश्वासघात किया तो? खूनी कानून भले ही अमलमे न लाया जाय, पर हमारे सिरपर सूलीकी तरह लटका तो रहेगा ही। इस बीच हमने अपनी मर्जीसे परवाने लेकर अपना हाथ कटा दिया तो इस कानूनसे लड़नेके लिए हमारे पास जो एक बड़ा हथियार है उसे हाथसे

छोड देगे। यह तो जानबूझकर अपने आपको दुश्मनके पजेमे फसा देना-सा होगा। सच्चा समझौता तो यह कहा जायगा कि पहले खूनी कानून रद करदे और फिर हम स्वेच्छासे परवाने निकलवा ले।"

मुझे यह दलील पसद आई। दलील करनेवालोकी तीक्ष्ण बुद्धि और हिम्मतपर मुझे गर्व हुआ और मैने देखा कि सत्याग्रही ऐसे ही होने चाहिए। इस दलीलके जवाबमे मैने कहा—"आपकी दलील बहुत अच्छी है और विचारने योग्य है। खूनी कानून रद हो जानेके वाद ही हम अपनी इच्छासे परवाने ले, इससे अच्छी तो दूसरी कोई बात हो ही नही सकती, पर इसको मै समझौतेका लक्षण नही मानता। समझौतेका अर्थ ही यह होता है कि जहा सिद्धान्तका भेद न हो वहा दोनो पक्ष खुद बहुत-कुछ करे और झगडा निबटाले। हमारा सिद्धान्त यह है कि हम खूनी कानूनके डरसे तो, उसके अनुसार जो कुछ करनेमे कोई वाधा न हो वह काम भी न करे। इस सिद्धान्तपर हमे अटल रहना है। सरकारका सिद्धान्त यह है कि हिदुस्तानी नाजायज तौरपर ट्रासवालमे दाखिल न हो। इसके लिए वहुतसे भारतीय ऐसे परवाने निकलवा ले जिनपर वह पहचानके निशान हो और जिनकी अदल-बदल न हो सके, और यो गोरोका शक दूर कर उन्हे निर्भय कर दे। सरकार इस सिद्धान्तको नही छोडने की। आजतक अपने व्यवहारसे हमने इस सिद्धान्तको स्वीकार भी कर रखा है। अत उसका विरोध करनेकी बात सोचे तो भी जबतक नये कारण उत्पन्न न हो तबतक उसके विरुद्ध नही लडा जा सकता। हमारी लडाई इस सिद्धान्तको काटनेके लिए नही, बल्कि कानूनका काला दाग दूर करनेके लिए है। अत कौममे जो नया और प्रचड बल प्रकट हुआ है उसका उपयोग करनेके लिए अब हम एक नई बातको सामने रखे तो सत्याग्रहीके सत्यको लाछन

लगेगा। अतः सच पूछिये तो इस समझौतेका विरोध किया ही नहीं जा सकता।

"अब इस दलीलपर विचार करें कि खूनी कानून रद किये जानेके पहले हम अपना हाथ कैसे कटा दें? क्यों अपने शस्त्र छोड़ दें? इसका जवाब तो बहुत आसान है। सत्याग्रही भयको तो कोसों दूर रखता है। इसलिए विश्वास करते वह कभी डरता ही नहीं। बीस बार विश्वासका घात हो तो भी इक्कीसवीं बार विश्वास करनेको तैयार रहता है। कारण यह है कि सत्याग्रही अपनी नाव विश्वासके सहारे ही चलाता है और विश्वास रखनेमें हम अपने हाथ कटा देते हैं यह कहना यह प्रकट करना है कि हम सत्याग्रहको नहीं समझते।

"मान लीजिये, हमने अपनी इच्छासे नये परवाने ले लिये। पीछे सरकार विश्वासघात करती है और कानूनको रद नहीं करती। तो क्या उस वक्त हम सत्याग्रह नहीं कर सकते? यह परवाना ले लेनेपर भी हम मुनासिब वक्तपर उसे दिखानेसे इनकार कर दें तो उसकी क्या कीमत होगी? तब जो हजारों हिंदुस्तानी छिपे तौरपर ट्रान्सवालमें दाखिल हो जाएं। सरकार उनमें और हममें किस तरह अन्तर कर सकेगी? अतः कानून हो या न हो, किसी भी दशामें सरकार हमारी सहायताके बिना हमपर प्रतिबंध नहीं लगा सकती। कानूनका अर्थ इतना ही है कि जो रोक सरकार लगाना चाहती है उसे हम स्वीकार न करें तो हम दण्डके पात्र होते हैं। और आमतौरसे ऐसा होता है कि मनुष्य सजाके डरसे अंकुशके अधीन होते हैं, पर सत्याग्रही इस सामान्य नियमका उल्लंघन करता है। वह अंकुशके अधीन होता है तो सजाके डरसे नहीं, बल्कि उसके माननेमें लोक-कल्याण है, यह मानकर अपनी इच्छासे ऐसा करता है। ठीक यही स्थिति हमारी इस वक्त इन परवानोंके बारेमें है। इस स्थितिको सरकार कैसा ही विश्वास-

घात करके भी वदल नही सकती। इस स्थितिको उत्पन्न करनेवाले हम है और उसे वदल भी हमही सकते है। जवतक सत्याग्रहका हथियार हमारे हाथमे है तबतक हम स्वतत्र और निर्भय है।

"और अगर कोई मुझसे यह कहे कि कौममे जो वल आज आ गया है वह फिर आनेवाला नही तो मै यह जवाव दूगा कि यह कहनेवाला सत्याग्रही नही, वह सत्याग्रहको समझता ही नही। यह कहनेका अर्थ तो यह होता है कि आज जो वल प्रकट हुआ है वह सच्चा नही है, वल्कि नशेके जैसा झूठा और क्षणिक है। यह वात सही हो तो हम विजयके अधिकारी नही। और जीत जाए तो जीती हुई वाजी भी हार जायगे। मान लीजिये, सरकारने खूनी कानूनको रद कर दिया। पीछे हमने ऐच्छिक परवाने ले लिये। इसके वाद सरकारने यही खूनी कानून फिर पास कर दिया और हमे परवाने लेनेको मजवूर करने लगे, तो उस वक्त उसे कौन इससे रोक सकता है? और अगर इस वक्त अपने वलके विषयमे हमे शका हो तो उस वक्त भी हमारी ऐसी ही दुर्दशा होगी। अत चाहे जिस दृष्टिसे हम इस समझौतेको देखे, हम यह कह सकते है कि उसे करनेमे कौम कुछ खोयेगी नही, वल्कि कुछ नफेमे ही रहेगी। और मै तो यह भी मानता हू कि हमारे विरोधी भी हमारी नम्रता और न्याय-वुद्धिको पहचान लेनेपर विरोध त्याग देगे या उसे नरम कर देगे।"

इस प्रकार जिन एक-दो आदमियोने उस छोटी-सी मडलीमे विरोध प्रकट किया था उनके मनका मै पूरा समाधान कर सका। पर आधी रातवाली वडी सभामे जो ववडर उठनेवाला था उसका तो मुझे स्वप्नमे भी ख्याल नही था। मैने सभाको पूरा समझौता समझाया और कहा—"इस समझौतेसे कौमकी जिम्मे-दारी वहुत वढ गई है। हमे यह दिखानेके लिए अपनी खुशीसे

परवाना ले लेना है कि हम धोखा देकर या नाजायज तरीकेसे एक भी हिंदुस्तानीको ट्रासवालमे घुसाना नही चाहते। कोई परवाना न ले तो इस वक्त तो उसे कोई सजा भी नही दी जायगी, पर न लेनेका अर्थ यही होगा कि कौम समझौतेको मजूर नही करती। अत यह जरूरी है कि आप लोग हाथ ऊचा करके समझौतेका स्वागत करे। यह मै चाहता भी हू। पर इसका अर्थ यही होगा और मै यही करूगा कि आप हाथ उठानेवाले लोग, ज्योही नये परवाने निकालनेका प्रबध हो जाय, परवाने लेनेमे लग जाएगे और आजतक जैसे परवाना न लेनेको समझानेके लिये आपमेसे बहुतेरे स्वयसेवक बने थे वैसे अब लोगोको परवाने लेनेको समझानेके लिए स्वयसेवक बनेगे। जो काम हमे करना है वह कर देगे तभी इस जीतका सच्चा फल हम पा सकेगे।"

ज्योही मेरा भाषण पूरा हुआ, एक पठान भाई खडे हुए और मुझपर सवालोकी झडी लगादी

"इस समझौतेके अदर हमे दसो उगलियोकी छाप देनी होगी न ?"

"हा और नही भी। मेरी अपनी सलाह तो यही होगी कि सब लोग दसो उगलियोकी छाप देदे, पर जिन्हे धर्मकी बाधा हो या जो निशानी देनेमे अपने आत्मसम्मानकी हानि मानते हो वे न दे तो भी चल सकता है।"

"आप खुद क्या करेगे ?"

"मैने तो दसो उगलियोकी छाप देनेका निश्चय कर रखा है। मै खुद न दू और दूसरोको देनेकी सलाह दू, यह मुझसे तो हो ही नही सकता।"

"दसो उगलियोकी निशानीके बारेमे आप बहुत लिखा करते थे। यह तो अपराधियोसे ही ली जाती है, इत्यादि सिखानेवाले आप ही थे। यह लडाई दस उगलियोकी छापकी

लडाई है, यह कहनेवाले भी आप ही है। ये सारी बाते आज कहाँ गई ?"

"दसो उगलियोकी निशानीके बारेमे जो कुछ मैंने लिखा है उसपर आज भी कायम हू। मै आज भी कहता हू कि उगलियोकी छाप हिदुस्तानमे जरायम पेशा या अपराधी जातियोसे ली जाती है। मैने कहा है और आज भी कहता हू कि खूनी कानूनके अनुसार दसो उगलियोकी निशानी देना तो क्या, दस्तखत करना भी पाप है। यह बात भी सच है कि उगलियोकी निशानीपर मैने वहुत जोर दिया है और मै मानता हू कि वैसा करनेमे मैने समझदारीसे काम लिया। खूनी कानूनकी बारीक बातोपर, जिन्हे अबतक करते आ रहे थे, जोर देकर कौमको समझानेके बदले दसो उगलियोकी निशानी जैसी बडी और नई बातपर जोर देना आसान था और मैने देखा कि कौम इस बातको तुरंत समझ गई।

"पर आजकी स्थिति भिन्न है। मै जोर देकर कहना चाहता हू कि जो बात कल अपराध थी वह आजकी नई स्थितिमे भलमनसी और शराफतका निशान है। आप मुझसे जबर्दस्ती सलाम कराना चाहे और मै करू तो मै आपकी, दुनियाकी और खुद अपनी निगाहमे भी गिर जाऊगा। पर मै आपको अपना भाई या इसान समझकर अपनी मर्जीसे सलाम करू तो यह मेरी नम्रता और सज्जनताका सबूत होगा और खुदाके दरबारमे भी यह बात मेरी नेकीके खातेमे लिखी जायगी। इसी दलीलसे मै कौमसे उगलियोकी निशानी देनेकी सलाह देता हू।"

"हमने सुना है कि आपने कौमके साथ दगा की है और १५ हजार पौड लेकर उसे जनरल स्मट्सके हाथ बेच दिया है। हम कभी दसो उगलियोकी निशानी देनेवाले नही और किसीको देने देगे भी नही। मै खुदाकी कसम खाकर कहता हू

कि जो आदमी एशियाटिक दफ्तरमे जानेमे अगुआई करेगा उसे जानसे मार डालूगा।"

"पठान भाइयोकी भावना मै समझ सकता हू। मुझे विश्वास है कि मैने घूस खाकर कौमको बेच दिया है इसपर कोई भी विश्वास नही करेगा। यह बात मैने पहले ही समझा दी है कि जिन लोगोने उगलियोकी निशानी न देनेकी कसम खाई है उन्हे कोई निशानी देनेके लिए मजबूर नही कर सकता और जो कोई पठान या दूसरे भाई उगलियोके निशान दिये बिना परवाना लेना चाहे उन्हे परवाना दिलानेमे मै पूरी-पूरी मदद करूगा। मै आपको इतमीनान दिलाता हू कि बिना उगलियोकी निशानी दिये वे ऐच्छिक परवाना ले सकेगे।

"मुझे यह बात कबूल करनी होगी कि मार डालनेकी धमकी मुझे पसद नही आती। मै यह भी मानता हू कि किसी-को मार डालनेकी कसम खुदाके नामपर नही खाई जा सकती। इसलिए मै यही मान लेता हू कि क्रोधके आवेशमे आकर ही इन भाईने मार डालनेकी कसम खाई है, पर इस कसमपर अमल करना हो या न करना हो, समझौता करनेमें मुख्य आदमी होनेकी हैसियतसे और कौमके सेवकके रूपमे मेरा स्पष्ट कर्तव्य है कि उगलियोकी निशानी देनेमे मै ही अगुआ बनू। और मै तो ईश्वरसे प्रार्थना करूगा कि वह मुझको ही इसका श्रेय दे। मरना तो एक दिन सभीको है। रोग या इस तरहके दूसरे कारण-से मरनेके बजाय मै अपने किसी भाईके हाथसे मरू तो इससे मुझे तनिक भी दुःख नही होगा। और अगर उस वक्त भी मै तनिक भी क्रोध या मारनेवालेके प्रति द्वेष न करू तो मै जानता हू कि मेरा तो भविष्य बनेगा ही और मारनेवाला भी पीछे तो समझ ही जायगा कि मै सर्वथा निर्दोष था।"

ऐसे सवाल क्यो किये गये, इसका खुलासा देना जरूरी है। जिन लोगोने खूनी कानूनके आगे सिर झुका दिया था उनके

प्रति यद्यपि कोई वैर-भाव नही रखा जाता था, फिर भी उस कार्यके विषयमे तो खुले और कडे शब्दोमे बहुत-कुछ कहा और 'इडियन ओपीनियन'मे लिखा गया था। इससे कानूनको मान लेनेवालोका जीवन अप्रिय अवश्य हो गया था। उन्होने कभी सोचा ही न था कि कौमका वडा भाग अपने निश्चयपर अटल रहेगा और इतना जोर दिखायेगा कि समझौता होनेकी नौवत आ जाय। पर जव १५० से ऊपर सत्याग्रही जेलमे पहुच गये और समझौतेकी वातचीत चलने लगी तव कानूनकी शरण जानेवालोको और भी नागवार लगा और कुछ ऐसे भी निकले जो चाहते थे कि समझौता न हो और हो जाय तो उसको तुडवा देना भी चाहते थे।

ट्रासवालमे रहनेवाले पठानोकी सख्या वहुत थोडी थी। मेरा ख्याल है कि कुल मिलाकर ५० से अधिक नही होगे। उनमे वहुतेरे वोअर-युद्धके समय आये हुए सिपाही थे। जैसे युद्ध-कालमे आये हुए बहुतसे गोरे दक्षिण अफ्रीकामे आवाद हो गये, वैसे ही लडाईके सिलसिलेमे आये हुए पठान और दूसरे हिदुस्तानी भी वस गये थे। उनमेसे कुछ मेरे मवक्किल भी थे और दूसरे तौरपर भी उनके साथ मेरा खासा परिचय हो गया था। वे स्वभावसे वडे भोले होते है। शूरवीर तो होते ही है। मारना और मरना उनकी निगाहमे वहुत मामूली वाते है। उनको किसी पर गुस्सा आये तो उसको पकडकर पीटते अथवा उनकी भाषामे कहना चाहे तो उसकी पीठ गरम करते है और कभी-कभी जानसे भी मार डालते है। इसमे वे नितात निष्पक्ष होते है। सगा भाई हो तो उसके साथ भी यही वर्ताव करेगे। पठानोकी तादाद यहा इतनी कम है, फिर भी उनमे आपसमे तकरार होनेपर मार-पीटकी नौवत आ ही जाती है। ऐसे झगडोमे मुझे अकसर वीच-वचाव करना पडता। इसमे भी जव विश्वासघातकी वात हो तव तो वे

अपना गुस्सा रोक ही नही सकते। न्याय पानेके लिए उनके पास सबसे बढिया कानून मारपीट ही है।

पठानोने इस लडाईमे पूरा हिस्सा लिया था। उनमेसे एक आदमीने भी खूनी कानूनके सामने घुटने नही टेके थे। उनको बहकाना आसान है। उगलियोकी निशानी देनेके बारेमे गलतफहमी होना समझमे आ सकनेवाली बात है और इसको लेकर उनको भडकाना तनिक भी कठिन नही था। घूस न खाई होती तो उगलियोकी निशानी देनेकी बात मैं क्यो कहता, इतना कहना पठानोको भ्रममे डालनेके लिए काफी था।

इसके सिवा ट्रासवालमे एक और पक्ष भी था। यह था उन लोगोका जो बिना परवाना लिये छिपे तौरपर ट्रासवालमे आये थे या जो दूसरे हिंदुस्तानियोको गुप्तरीतिसे बिना परवाना लिये या जाली परवानोके जरिये ट्रासवालमे प्रविष्ट कराया करते थे। इस पक्षका स्वार्थ समझौता न होनेमे ही था। जबतक लडाई चल रही हो तबतक किसीको परवाना दिखाना होता ही नही। इसलिए ये लोग निर्भय होकर अपना रोजगार चलाते रहते। लडाई चलती रहनेके दरमियान ये लोग जेल जानेसे आसानीसे बच सकते थे। अत लडाई लबे अरसेतक चले तो यह पक्ष इसे अपने लिए अच्छा ही मानता। इस प्रकार ये लोग भी पठानोको समझौतेके खिलाफ भडका सकते थे। अब पाठक समझ सकते है कि पठान यकायक क्यो उत्तेजित हो गये थे।

पर इस मध्यरात्रिके उद्गारोका असर सभाके ऊपर कुछ भी नही हुआ। मैंने सभाका मत मागा था। सभापति और दूसरे नेता दृढ थे। इस सवादके बाद सभापतिने भाषण दिया, जिसमे समझौतेका स्वरूप समझाया और उसको मजूर कर लेनेकी आवश्यकता बताई। अनन्तर उन्होने सभाका मत लिया। दो-चार पठान जो उस वक्त वहा मौजूद

थे उनके सिवा और सबने समझौतेको स्वीकार किया और मैं रातके दो या तीन बजे घर पहुचा। सोना तो कहासे मिलता, क्योकि मुझे तड़के ही उठकर दूसरोको छुडानेके लिए जेल जाना था। ७ बजे मै जेलपर पहुंच गया। सुपरिटेंडेटको टेलीफोनसे हुक्म मिल गया था और वह मेरी राह देख रहे थे। एक घटेके अंदर सभी सत्याग्रही कैदी छोड दिये गये। अध्यक्ष और दूसरे भारतीय उन्हे लेनेके लिए आये थे। जेलसे हमारा जुलूस पैदल सभा-स्थानको गया। वहा सभा हुई। यह दिन और दूसरे दो-चार दिन यो ही दावतो आदिमे तथा लोगोको समझानेमे लग गये।

ज्यो-ज्यो दिन वीतते गये त्यो-त्यो एक ओर तो लोग समझौतेका अर्थ अधिकाधिक समझने लगे और दूसरी ओर गलतफहमी भी वढने लगी। उत्तेजनाके कारण तो ऊपर हम देख ही चुके है। उनके अतिरिक्त जनरल स्मट्सको लिखे हुए पत्रमे भी भ्रमका सवल कारण था। इसलिए जो अनेक प्रकारकी दलीले पेश की जा रही थी उनका जवाव देनेमे मुझे जो तकलीफ हुई वह उन कष्टोसे कही अधिक थी जो लडाई चलती रहनेके दिनोमे मुझे उठाने पडे थे। लडाईके दिनोमे जिसे हम अपना दुश्मन मानते हो उसके साथ व्यवहार करनेमे कठिनाई पड़ती है; पर मेरा अनुभव यह है कि इन कठिनाइयोको हम आसानीसे दूर कर सकते है। उस वक्त आपसके झगड़े, अविश्वास आदि होते ही नही या वहुत कम होते है। पर युद्ध समाप्त होनेके वाद आपसके विरोध आदि जो सामने आई हुई आपत्तिको देखकर दवे रहते है, वाहर आ जाते है और लडाईका अत समझौतेसे हुआ हो तो उसमे दोप निकालनेका काम सदा सहल होता है। इससे वहुतेरे उसे उठा लेते है और जहा व्यवस्था राष्ट्रीय या लोकतत्रीय हो वहा छोटे-वडे सवको जवाव देना और उनका समा-

धान करना पडता है। यह ठीक ही है। जितना अनुभव आदमी ऐसे समय, यानी दोस्तोके दरमियान होनेवाले झगडे या गलतफहमीके समय प्राप्त कर सकता है उतना विरोधीके सामने लडते हुए नही प्राप्त किया जा सकता। विरोधीके साथ की जानेवाली लडाईमे एक तरहका नशा रहता है और इससे उसमे उल्लास होता है। पर जब मित्रोके बीच गलतफहमी या विरोध उत्पन्न हो जाता है तब वह असाधारण घटना माना जाता है और सदा दुखद ही होता है। फिर भी आदमीकी परख तो ऐसे ही वक्त होती है। मेरा तो यह अपवाद-रहित अनुभव है और मुझे जान पडता है कि ऐसे ही समयमे मै अपनी सारी आतरिक सम्पत्ति प्राप्त कर सका हू? युद्धका शुद्धस्वरूप जो लोग लडते-लडते नही समझ सके थे वे समझौतेकी बातचीतके दरमियान और उसके बाद उसे पूरी तरह समझ गये। सच्चा विरोध तो पठानोसे आगे नही बढा।

यो करते-कराते दो-तीन महीनेमे एशियाटिक दफ्तर अपनी इच्छासे लिया जानेवाला नया परवाना निकालनेको तैयार हो गया। परवानेका रूप बिलकुल बदल गया था। उसे बनानेमे सत्याग्रही मडलके साथ मशविरा कर लिया गया था।

१९०८ की १० वी फरवरीको सवेरे हम कुछ आदमी परवाने लेनेके लिए जानेको तैयार हुए। लोगोको खूब समझा दिया गया था कि परवाने लेनेका काम कौमको झटपट कर डालना है। यह भी तै कर लिया गया था कि पहले दिन नेतागण ही सबसे पहले परवाने ले। इसमे उद्देश्य यह था कि लोगोकी हिचक दूर हो जाय, एशियाटिक दफ्तरके अफसर-अहलकार अपना काम सौजन्यके साथ करते है या नही, इसको देख ले और कामकी और तरह पर निगरानी भी रखे।

मेरा दफ्तर ही सत्याग्रह-मडलका भी दफ्तर था। वहा पहुचा तो दफ्तरकी दीवारके बाहर मीर आलम और उसके साथियोको खडा पाया। मीर आलम मेरा पुराना मवक्किल था और अपने सभी कामोमे मेरी सलाह लिया करता था। बहुतसे पठान ट्रासवालमे घास या नारियलके रेशेके गद्दे बनानेका काम करते है। इसमे वे अच्छा नफा करते है। ये गद्दे वे मजदूरोके जरिये बनवाते और पीछे अच्छे नफेपर बेचते है। मीर आलम भी यही काम करता था। वह छ. फुटसे अधिक ऊचा होगा। लबे-चौड़े कद और दुहरे बदनका था। आज पहली ही बार मैने मीर आलमको दफ्तरके भीतरके बजाय बाहर खडा देखा और हमारी आखे मिलनेपर भी उसने सलामके लिए हाथ नही उठाया तो यह भी पहली ही बार हुआ। पर मैने सलाम किया तो उसने भी जवाब दिया। अपने अभ्यासके अनुसार मैने पूछा, "कैसे हो ?" मुझे ऐसा खयाल है कि उसने जवाबमे "अच्छा हू" कहा। पर आज उसका चेहरा रोजकी तरह हसता हुआ नही था। मैने उसकी आखोमे क्रोधकी झलक देख ली और अपने मनमे इसे नोट कर लिया। यह भी सोचा कि आज कुछ होनेवाला है। मै दफ्तरके अदर गया। अध्यक्ष ईसप मिया और दूसरे मित्र भी आ पहुचे और हम एशियाटिक दफ्तरकी ओर रवाना हुए। मीर आलम और उसके साथी भी साथ हो लिये।

एशियाटिक आफिसके लिए लिया हुआ मकान फॉन ब्राडिस स्क्वायरमे था और मेरे दफ्तरसे एक मीलके अदर ही होगा। वहां पहुचनेके लिए आम सडकोसे होकर जाना था। फॉन ब्राडिस स्ट्रीटसे जाते हुए हम मेसर्स आर्नाट एड गिब्सनकी कोठीसे आगे पहुचे थे, जहासे एशियाटिक दफ्तरका तीन मिनिटसे अधिकका रास्ता न था कि मीर आलम

मेरी बगलमे आ गया और पूछा, "कहा जाते हो ?" मैने जवाब दिया—"मै दस उगलियोकी निशानी देकर रजिस्ट्रीका सार्टी-फिकेट लेना चाहता हू । अगर तुम भी चलो तो तुम्हे दसो उगलियोकी निशानी देनेकी जरूरत नही है । केवल दोनो अगूठोकी निशानी दिलाकर मै पहले तुम्हे सार्टीफिकेट दिला दूगा, फिर अपनी उगलियोकी छाप देकर अपना सार्टीफिकेट निकलवाऊगा ।" मै यह कहही रहा था कि इतनेमे मेरी खोप-डीपर लाठी गिरी और मै 'हे राम' कहते हुए वेहोश होकर मुहके बल गिरा । इसके वाद जो कुछ हुआ उसकी मुझे खवर नही । पर मीर आलम और उसके साथियोने और लाठिया मारी और लाते भी जडी । उनमेसे कुछको ईसप मिया और थबी नायडूने अपने ऊपर ले लिया । इससे वे भी थोडी मार खा गये । इतनेमे शोर मचा । आते-जाते गोरे इकट्ठा हो गये । मीर आलम और उसके साथी भागे, पर गोरोने उन्हे पकड लिया । इस बीच पुलिस भी आ पहुची और वे पुलिसके हवाले कर दिये गये ।

बगलमे ही एक यूरोपियन मि० गिब्सनका दफ्तर था । लोग मुझे वहा उठा ले गये । थोडी देरमे मुझे होश आया तो मैने रेवरेड डोकको अपने ऊपर झुका हुआ पाया । उन्होने मुझसे पूछा—"कैसे हो ?" मैने हसकर जवाब दिया—"मै तो अच्छा हू, पर मेरे दात और पसलिया दुख रही है ।" मैने पूछा—"मीर आलम कहा है ?" उन्होने जवाब दिया—"वह तो पकड लिया गया है और उसके साथ दूसरे लोग भी ।" मैने कहा—"उन्हे छूटना चाहिए ।" मि० डोकने जवाब दिया—"यह सब तो होता रहेगा । यहा तो तुम एक पराये दफ्तरमे पडे हो । तुम्हारा होट फट गया है । पुलिस तुम्हे अस्पताल ले जानेको तैयार है । पर तुम मेरे यहा चलो तो मिसेज डोक और मै जितनी तुम्हारी सेवा हमसे

हो सकती है करेंगे।" मैंने कहा—"मुझे तो अपने ही यहा ले चलिये। पुलिस जो सहायता करना चाहती है उसके लिए उसको धन्यवाद दीजिए, पर उन लोगोसे कह दीजिये कि मै आपके यहा जाना पसद करता हूं।"

इतनेमे एशियाटिक आफिसर (रजिस्ट्रार आव एशियाटिक्स) मि० चमनी भी आ पहुचे। एक गाडीमे लिटाकर मुझे इस भले पादरीके मकानपर ले गये, जो स्मिट स्ट्रीटमे था। डाक्टर बुलाया गया। इस बीच मैंने मि० चमनीसे कहा—"मेरी आशा तो यह थी कि आपके दफ्तरमे आकर और दसो उगलियोकी निशानी देकर पहला परवाना अपने नाम निकलवाऊगा। यह ईश्वर को मजूर नही था। पर अब मेरी प्रार्थना है कि आप अभी जाकर कागज ले आए और मेरी रजिस्ट्री कर ले। मै आशा करता हू कि आप मुझसे पहले और किसीकी रजिस्ट्री नही करेंगे। उन्होने जवाब दिया—"ऐसी क्या उतावली है? अभी-अभी डाक्टर आते है। आप आराम करे। पीछे सब होता रहेगा। दूसरोको परवाने दूगा तो भी आपका नाम पहला रहेगा।" मैंने कहा—"ऐसे नही हो सकता। मेरी भी प्रतिज्ञा है कि मै जीवित रहा और ईश्वरको मजूर हुआ तो सबसे पहले खुद मै ही परवाना लूगा। इसीसे मेरा आग्रह है कि आप कागज ले आए।" इसपर वह कागज लाने गये।

मेरा दूसरा काम था एटर्नी जनरल अर्थात् बडे सरकारी वकीलको इस आशयका तार भेजना—"मीरआलम और उसके साथियोने मेरे ऊपर जो हमला किया उसके लिए मै उन्हे दोषी नही मानता। जो हो, उनपर फौजदारी मुकदमा चले यह मै नही चाहता। मुझे आशा है कि मेरी खातिर आप उन्हे छोड देंगे।" इस तारके जवाबमे मीर आलम और उसके साथी छोड दिये गये।

पर जोहान्सवर्गके गोरोने एटर्नी जनरलको इस तरहका कडा पत्र लिखा—"अपराधियोको सजा मिलनेके बारेमे गाधीके विचार कुछ भी हो, वह इस देशमे नही चल सकते। उनपर जो मार पडी है उसके विषयमे वह भले ही कुछ न करे, पर अपराधियोने उन्हे घरके कोनेमे नही मारा, सरेआम बीच रास्तेमे मारा है। यह सार्वजनिक अपराध माना जायगा। कितने ही अग्रेज भी इस अपराधकी शहादत दे सकते हैं। अपराधियोको पकडना ही होगा।" इस आन्दोलनके कारण सरकारी वकीलने मीर आलम और उसके एक साथीको फिर गिरफ्तार कराया और उन्हे तीन-तीन महीनेकी कडी कैदकी सजा मिली। हा, मै गवाहकी हैसियतसे तलब नही किया गया।

अब हम फिर बीमारके कमरेकी ओर निगाह फेरे। मि० चमनी कागजात लेने गये, इतनेमे डाक्टर थ्वेट्स आ पहुचे। उन्होने मुझे देखा। मेरा ऊपरका होट फट गया था। उसके और गालके जख्ममे भी टाका लगाया। पसलियो आदिको देखकर उनमे लगानेके लिए दवा लिखी और जबतक टाका न खुले तबतक बोलनेको मना किया। खानेमे भी पतली चीजोको छोडकर और कुछ खानेको मना किया। उन्होने यह निदान किया कि मुझे कही भी बहुत गहरी चोट नही आई है। हफ्तेके अदर अपना मामूली काम-काज करने लायक हो जाऊगा। हा, एक-दो महीने इसका ध्यान रखना होगा कि शरीरपर अधिक श्रम न पडे। यह कहकर वह विदा हुए। यो मेरा बोलना बद हुआ, पर मेरा हाथ तो चल ही सकता था। मैने कौमके लिए अध्यक्षकी मारफत एक छोटा गुजराती सदेश लिखकर प्रकाशित करनेके लिए दे दिया। वह इस प्रकार है

"मेरी तबीयत अच्छी है। मिस्टर और मिसेज डोक

मेरे लिए जान दे रहे है। मै थोडे ही दिनोमे अपनी ड्यूटीपर फिर हाजिर हो जाऊगा। जिन्होने मुझे मारा है उनपर मुझे गुस्सा नही है। उन्होने नासमझीवश यह काम किया। उनपर कोई मुकदमा चलानेकी जरूरत नही। दूसरे लोग शात रहेगे तो इस घटनासे भी हमे लाभ ही होगा।

"हिंदू भाई अपने मनमे तनिक भी रोप न रखे। मै चाहता हू कि इस घटनासे हिंदू-मुसलमानके बीच कटुता पैदा न होकर मिठास उत्पन्न हो, ईश्वरसे ऐसी प्रार्थना करता हू।

"मुझपर मार पडी और उससे ज्यादा पडे तो भी मै तो एक ही सलाह दूगा। और वह यह कि आमतौरसे सभी दस उगलियोकी निशानी दे दे। जिनके लिए सच्ची धार्मिक अडचन हो उन्हे सरकार छूट देगी। इसमे ही कौमका और गरीबोका भला है और इसीसे उनकी रक्षा होगी।

"अगर हम सच्चे सत्याग्रही होगे तो मार या भविष्यमे किये जानेवाल विश्वासघातके डरसे तनिक भी नही डरेगे।

"जो लोग दसो उगलियोकी निशानीकी बातको लेकर अडे हुए है उन्हे मै अज्ञानी समझता हू।

"मै परमात्मासे प्रार्थना करता हू कि कौमका भला करे, उसे सही रास्तेपर लगाये और हिंदू-मुसलमानोको मेरे रक्तके एक करे।"

मि० चमनी आये। बड़ी मुश्किलसे मैने उगलियोकी निशानी दे दी। मैने देखा कि इस वक्त उनकी आखे गीली हो रही थी। इनके खिलाफ तो मुझे कडे लेख भी लिखने पडे थे। पर अवसर आनेपर मनुष्यका हृदय कितना कोमल हो जाता है, इसका चित्र मेरी आखोके सामने खड़ा हो गया।

पाठक यह अनुमान तो कर ही लेगे कि यह सारी विधि पूरी होनेमे कुछ मिनटसे अधिक न लगे होगे। मि० डोक

और उनकी भली पत्नी इसके लिए चिंतित हो रहे थे कि मै विलकुल शात और स्वस्थ हो जाऊ। घायल होनेके वाद भी मुझे मानसिक श्रम करते देख उन्हे दु ख हो रहा था। उन्हे डर था कि शायद मेरी तवियतपर इसका वुरा असर पडे। इसलिए इशारा करके और दूसरी युक्तियोसे मेरी खाटके पाससे सवको हटा ले गये और मुझे लिखने या कोई भी काम करनेसे मना कर दिया। मैने प्रार्थना की और उसे लिखकर जताया कि मै विलकुल शात होकर सो जाऊ, इसके पहले और इसके लिए उनकी वेटी आलिव, जो उस वक्त निरी वालिका थी, मेरा प्रिय अग्रेजी भजन "लीड काइडली लाइट" (प्रेमल ज्योति) मुझे सुना दे। मि० डोकको मेरी यह प्रार्थना वहुत रुची। अपने मधुर हास्यसे उन्होने मुझे इसकी सूचना दी और आलिवको इशारेसे वुलाकर आज्ञा की कि दरवाजेके वाहर खडी रहकर धीमे स्वरसे उक्त भजन गाये। ये पक्तिया लिखते समय यह सारा दृश्य मेरी आखोके सामने फिर रहा है और आलिवका दिव्य स्वर आज भी मेरे कानोमे गूज रहा है।

इस प्रकरणमे मै ऐसी वहुतसी वाते लिख गया हू जिन्हे मै इस प्रकरणके लिए अप्रस्तुत मानता हू और पाठक भी मानेगे। फिर भी उनमे एक सस्मरण और वढाये विना मै इस प्रकरणको पूरा नही कर सकता। इस समयके सभी सस्मरण मेरे लिये इतने पवित्र है कि उन्हे मै छोड नही सकता। डोक कुटुव-की सेवाका वर्णन मै किस तरह कर सकता हू?

जोसफ डोक वैपटिस्ट सप्रदायके पादरी थे। उनकी उम्र उस वक्त ४६ वरसकी थी। दक्षिण अफ्रीका आनेके पहले न्यूजीलैडमे थे। इस हमलेसे कोई छ महीने पहलेकी वात है। वह मेरे दफ्तरमे आये और अपने नामका कार्ड मेरे पास भेजा। उसमे नामके साथ रेवरेड विशेषण लगा था। इससे

मैने यह गलत अनुमान कर लिया कि जैसे कितने पादरी मुझे ईसाई बनानेके इरादेसे या लडाई बद करनेके लिए समझाने आते है, वैसे ही ये भी आये होगे या बुजुर्ग बनकर लड़ाईमें हमदर्दी दिखाने आये होगे। पर मि० डोक अदर आये और हममे बात-चीत होते दो-चार मिनटसे अधिक न हुए होगे कि मैने अपनी भूल देख ली और दिल-ही-दिलमे उनसे क्षमा मागी। उस दिनसे हम गहरे दोस्त हो गये। अखबारोमे लड़ाईके जो समाचार छपते थे उन सबसे उन्होने अपनी जानकारी प्रकट की। उन्होने कहा—"इस लडाईमे आप मुझे मित्र ही मानियेगा। मुझसे जो कुछ सेवा बन पडे उसे मै अपना धर्म समझकर करना चाहता हू। ईसाके जीवनका चितन करके जो कुछ मैने सीखा है वह यही है कि दुखियोका दुख बटाना चाहिए। यो हमारा परिचय हुआ और दिन-दिन हमारा स्नेह-सबध बढता ही गया।

डोकका नाम इस इतिहासमे इसके बाद अनेक प्रसगोमे मिलेगा, पर डोक-कुटुबने मेरी जो सेवा की उसका वर्णन करते हुए इतना परिचय पाठकोको दे देना जरूरी था। रात और दिन कोई-न-कोई तो मेरे पास मौजूद रहता ही। जितने दिन मै वहा रहा उतने दिन उनका घर धर्मशाला बन गया था। हिदुस्तानियोमे फेरी करनेवाले भी थे। उनके कपड़े मजदूरो जैसे होते, मैले भी होते, जूतोंपर सेर भर धूल होती। फिर उनकी गठरी या टोकरी भी साथ होती। इन लोगोसे लगाकर अध्यक्ष जैसो या सभी श्रेणियोके हिदुस्तानियोका मि० डोकके घर मेला लग रहा था। सब मेरा हाल पूछने और जब डाक्टरकी अनुमति मिल गई तब मुझसे मिलनेके लिए आते। मि० डोक सबको समान आदर-भावसे अपने दीवानखानेमे बैठाते और जबतक मेरा रहना डोक-परिवारके साथ हुआ तबतक

मेरी सेवा-शुश्रूषा और मुझे देखने आनेवाले सैकडो लोगोके आदर-सत्कारमे उनका सारा वक्त जाता। रातमे भी दो-तीन बार आकर चुपचाप मेरे कमरेमे झाक जाते। उनके घरमे मै कभी यह सोच ही नही सका कि यह मेरा घर नही है और मेरा प्रिय-से-प्रिय आत्मीय भी होता तो इससे अधिक मेरी सेवा करता।

पाठक यह भी न सोचे कि हिंदुस्तानी कौमकी लडाईकी इतनी खुले तौरपर तरफदारी करने या मुझे अपने घरमे आश्रय देनेके कारण मि० डोकको कुछ नुकसान नही उठाना पडा। अपने पथके गोरोके लिए वह एक गिरजाघर चलाते थे। उनकी आजीविका इन पथवालोसे ही चलती थी। इन लोगोमे सभी उदार हृदयके होते हो, सो बात तो है नही। हिंदुस्तानियोके लिए गोरोमे जो आम नफरत है वह इनमे भी थी ही। डोकने इस बातकी परवा ही नही की। हमारे परिचयके प्रारभमे ही मैने इस नाजुक विषयकी उनके साथ चर्चा की। उनका जवाब लिखने लायक है। उन्होने कहा—"मेरे प्यारे दोस्त, ईसाके धर्मको तुम कैसा मानते हो? जो आदमी अपने धर्मकी खातिर सूलीपर चढा और जिसका प्रेम जगत्के जितना ही विशाल था, उसका मै अनुयायी हू। जिन गोरोके द्वारा मेरे त्यागका तुमको भय है अगर मै चाहता हूँ कि उनके सामने ईसाके अनुयायीकी हैसियतमे खडे होकर तनिक भी शोभा पाऊ तो इस युद्धमे मुझे खुले तौरपर योग देना ही चाहिए और यह करते हुए मुझे मेरा मडल छोड दे तो मुझे इसमे रत्तीभर भी दु ख नही मानना चाहिए। मेरी रोजी उनमे मिलती है यह सही है, पर तुम्हे यह तो नही ही मानना चाहिए कि मै आजीविकाकी खातिर उनके साथ सबध रखता हू, या वे मेरी रोजी देनेवाले है। मेरी रोजी तो खुदा देता है। वे तो निमित्त मात्र है। उनके साथ सबध रखनेकी मेरी यह

बिना कहे मानी हुई शर्त है कि मेरी धार्मिक स्वतत्रतामे उनमेसे कोई दखल नही देगा। इसलिए मेरे बारेमे तो तुम बेफिक्र रहो। मै कुछ हिदुस्तानियोपर मेहरबानी करनेके लिए इस लडाईमे शामिल नही हुआ हू। मेरा तो यह धर्म है और यह समझकर ही इसमे भाग दे रहा हू। पर सच यह है कि अपने डीन (चर्चके मुखिया) के साथ मैने इस बारेमे सफाई कर ली है। उन्हे मैने विनय-पूर्वक जता दिया है कि अगर हिदुस्तानी कौमके साथ मेरा सबध आपको न रुचता हो तो आप मुझे खुशीसे विदा दे सकते है और दूसरा पादरी नियुक्त कर सकते है। पर उन्होने मुझे इस विषयमे बिलकुल निश्चित कर दिया है, मुझे बढावा भी दिया है। फिर तुम यह भी न समझो कि सभी यूरोपियन तुम लोगोको एकसी नफरतकी निगाहसे देखते है। बहुतोकी परोक्ष रीतिसे तुम्हारे साथ कितनी हमदर्दी है, इसका अदाजा तुम्हे नही हो सकता; पर मुझे इसका पता होना चाहिए, यह तो तुम मानोगे ही।"

इतनी स्पष्ट बातचीत हो जानेके बाद मैने इस विषयको फिर कभी छेडा ही नही और पीछे जब मि० डोक अपना धर्मकार्य करते-करते देवलोक सिधारे, हमारी लडाई उस वक्त चल ही रही थी, तब उनके पथवालो—बप्टिस्ट लोगो—ने गिरजेमे सभा की और उसमे स्व० काछलिया और दूसरे हिदुस्तानियो तथा मुझको भी बुलाया था। उसमे मुझसे बोलनेका अनुरोध किया गया था।

मेरे अच्छी तरह चलने-फिरने लायक होनेमे कोई दस दिन लगे होगे। ऐसी दशा हो जानेपर मैने इस स्नेही कुटुबसे विदा ली। हम दोनोके लिए यह वियोग बहुत दुखदाई हो गया था।

: २३ :

गोरे सहायक

इस लड़ाईमे इतने अधिक और प्रतिष्ठित यूरोपियनोने हिदुस्तानी कौमकी ओरसे आगे बढकर हिस्सा लिया कि इस स्थानपर उनका एक साथ परिचय करा देना अनुचित नही समझा जायगा। इससे आगे चलकर जब जगह-जगह उनके नाम आयगे तो उस वक्त पाठकोको वे अपरिचित नही लगेगे और लडाईके चलते वर्णनमे उनका परिचय देनेके लिए मुझको रुकना भी नही पडेगा। जिस क्रमसे मै उनके नाम दे रहा हू उस क्रमको पाठक उनकी प्रतिष्ठा या सहायताके मूल्यका क्रम न माने। उसको कुछ तो उनसे परिचय होनेके कारण और कुछ लडाईके जिस-जिस उपविभागमे उनकी मदद मिली उसके क्रमसे रखा हुआ समझना होगा।

इनमे पहला नाम अल्बर्ट वेस्टका आता है। भारतीय जनताके साथ उनका सबध तो लडाईके पहले ही जुड गया। मेरा उनका वास्ता तो और भी पहलेका था। मैने जब जोहान्सबर्गमे दफ्तर खोला तब मेरा कुटुब मेरे साथ नही था। पाठकोको याद होगा कि दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोका तार पाकर १९०३ ई० मे मै यकायक रवाना हो गया था और वह भी एक बरसके अदर लौट आनेके इरादेसे। जोहान्सबर्गमे एक निरामिष भोजन-गृह था। उसमे मै नियमसे दोपहर और शामको खाना खाने जाया करता था। वहा वेस्ट भी आते और वही हमारी जान-पहचान हुई। वह एक और यूरोपियनके साझेमे छापाखाना चलाते थे।

१९०४मे जोहान्सबर्गके हिदुस्तानियोमे भयानक प्लेग फैला। मै पीडितोकी सेवामे लग गया और उक्त भोजन-

गृहमे मेरा जाना अनियमित हो गया। जब जाता भी तब मेरी छूत दूसरोको लगनेका डर न रहे इस ख्यालसे और भोजन करनेवालोके आनेके पहले ही वहां हो आता। जब दो दिन लगातार मुझे नही देखा तब वेस्ट घबराये। उन्होने अखबारोमे देखा कि मै प्लेग पीड़ितोकी सेवामे लगा हू। तीसरे दिन सवेरे ६ बजे मै हाथ-मुह धो रहा था कि वेस्टने मेरे कमरेका दरवाजा खटखटाया। मैने दरवाजा खोला तो वेस्टका हसता चेहरा दिखाई दिया।

वह तुरंत ही प्रसन्न होकर बोल उठे--"तुम्हे देखकर इतमीनान हुआ। तुम्हे भोजन-गृहमे न देखा तो मै घबराया। मुझसे तुम्हारी कोई मदद हो सकती हो तो जरूर कहना।"

मैने हसकर जवाब दिया--"रोगियोकी सेवा?"

"क्यो नही? मै जरूर तैयार हू।"

इस विनोदके बीच मैने अपनी बात सोच ली। मैने कहा--"आपसे मुझे दूसरे उत्तरकी आशा ही नही थी। पर इस काममे तो मेरे बहुतसे मददगार है। आपसे तो मै इससे अधिक कठिन काम लेना चाहता हू। मदनजीत यही है। 'इडियन ओपीनियन' के प्रेसको कोई देखने-सम्हालनेवाला नही। मदनजीतको तो मैने प्लेगके काममे लगा लिया है। आप डर्बन जाय और उस कामको सम्हाले तो यह सच्ची सहायता होगी। इसमे कोई ललचानेवाली चीज तो है ही नही। मै तो आपको एक बहुत छोटी रकम ही नजर कर सकता हू--१० पौड प्रति मास और जो प्रेसमे नफा हो तो उसमे आधा आपका होगा।"

"यह काम है तो जरा अटपटा। मुझे अपने साझीदारसे इजाजत लेनी होगी। कुछ उगाही भी वसूल करना है। पर कोई चिता नही। आज शामतककी मुहलत मुझे दे सकते है?"

"हां, छ बजे हम पार्कमे मिले।"

"मै जरूर पहुचूगा ।"

इस निश्चयके अनुसार हम मिले। वेस्टने अपने साझीदारकी अनुमति भी प्राप्त कर ली। उगाहीकी वसूली मुझे सौप दी और अगले दिन शामकी ट्रेनसे रवाना हो गये। एक महीनेके अदर उनकी रिपोर्ट मिली—"इस छापेखानेमे नफा तो है ही नही, घाटा बहुत है। उगाही बहुत पडी है, पर हिसाब ठीक-ठिकानेसे नही रखा गया है। ग्राहकोके पूरे नाम नही लिखे है, ठिकाना नही लिखा है। दूसरी अव्यवस्था भी बहुत है। यह सब मै शिकायतके तौरपर नही लिख रहा हू। मै यहा नफेके लिए नही आया हू। इसलिए यह ऊपर लिया हुआ काम छोडनेका नही, इसे पक्का समझिये। पर यह नोटिस मै अभीसे दिये देता हू कि आपको लबे अरसेतक घाटा तो भरते ही जाना होगा।"

मदनजीत जोहान्सबर्ग आये थे ग्राहक बनाने और छापेखानेके प्रबधके बारेमे मुझसे बातचीत करने। मै हर महीने प्रेसका थोडा-बहुत घाटा पूरा किया ही करता था। इससे यह जान लेना चाहता था कि इस गड्ढेमे और कितना पैसा झोकना होगा। पाठकोको मै बता चुका हू कि मदनजीतको शुरूके दिनोमे भी छापेखानेके कामका बिलकुल अनुभव नही था। इसलिए यह तो मै शुरूसे ही सोचा करता था कि छापेखानेका काम जाननेवाले किसी आदमीको उनके साथ कर सकू तो अच्छा हो। इस बीच प्लेग फैला और मदनजीत ऐसे कामोमे तो बहुत कुशल और निर्भय थे। इसलिए उन्हे रोक लिया। इससे वेस्ट जब हमारी सहायता करनेको तैयार हो गये तो मैने इस अनपेक्षित प्रस्तावको सहर्ष स्वीकार कर लिया और उन्हे यह समझा दिया कि उन्हे केवल प्लेगके दिनोके लिए नही, बल्कि सदाके लिए जाना होगा। इसीसे उनकी उपर्युक्त प्रकारकी रिपोर्ट मिली।

पाठक जानते है कि अखबार और छापाखाना अतमे फिनिक्स गये। वहा वेस्टको माहवार १० पौडके बदले ३ ही पौड दिये जाने लगे। इन सारे परिवर्तनोमे उनकी पूरी सम्मति थी। मैने एक दिन भी उनको इसकी चिता करते नही देखा कि उनकी आजीविका कैसे चलेगी। उन्होने धर्मशास्त्र नही पढा था, फिर भी मै उन्हे अत्यन्त धार्मिक मनुष्यके रूपमे जानता हू। वह अतिशय स्वतत्र स्वभावके मनुष्य थे। जिस चीजको जैसी मानते थे वैसी ही कहते थे। कालेको कृष्णवर्ण न कहकर काला ही कहते। उनकी रहन-सहन अत्यन्त सादी थी। मुझसे परिचय होनेके समय ब्रह्मचारी थे और मै जानता हू कि वह ब्रह्मचर्यका पालन करते थे। कुछ बरस बाद वह मा-बापके दर्शन करने विलायत गये और वहासे ब्याह करके लौटे। मेरी सलाहसे अपनी स्त्री, सास और कुवारी बहनको साथ लाये। ये सभी फिनिक्समे निहायत सादगीसे और हर तरह हिंदुस्तानियोसे घुल-मिलकर रहते।

कुमारी एडा वेस्ट (या 'देवी बहन'—हम उन्हे इसी नामसे पुकारते थे) इस वक्त ३५ बरसकी रही होगी, पर अब भी कुमारी थी और बहुत ही पवित्र जीवन बिताती थी। फिनिक्समे रहनेवाले बच्चोको रखना, उन्हे अग्रेजी पढाना, सार्वजनिक रसोईमे खाना पकाना, घर साफ करना, हिसाब-किताब रखना, कपोज करना और छापेखानेके दूसरे काम करना—इन सारे कामोमे उन्होने कभी आना-कानी नही की। इस वक्त वे लोग फिनिक्समे नही है तो इसका कारण इतना ही है कि उनका छोटा-सा खर्च भी मेरे हिंदुस्तान लौट आनेके बाद छापेखानेके उठाये नही उठ सका। वेस्टकी सासकी उम्र ८० के ऊपर होगी। वह सिलाईका काम बहुत अच्छा जानती है। अत इस काममे यह वृद्धा
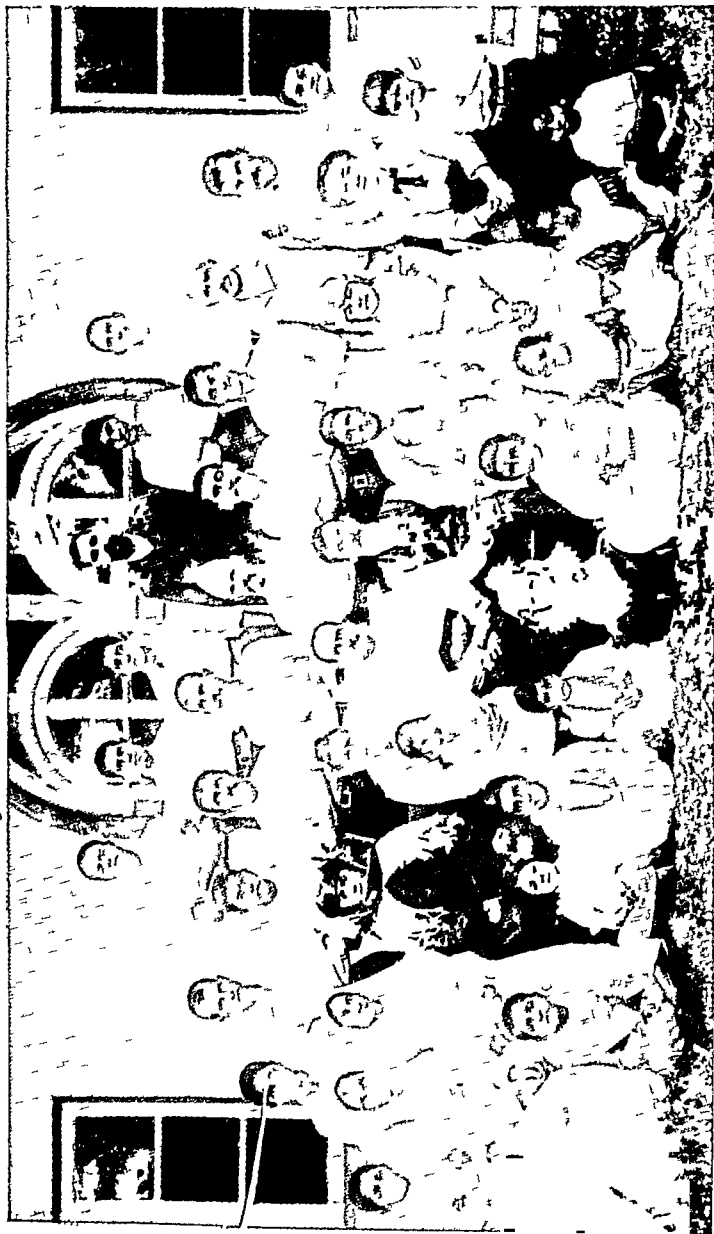
फिनिक्स-ग्राश्रम-वासी

भी पूरी सहायता करती। फिनिक्समे उनको सब 'दादी' कहते और मानते। मिसेज वेस्टके बारेमे तो कुछ कहनेकी जरूरत ही नही। जब फिनिक्स आश्रमके बहुतसे लोग जेल चले गये तब वेस्ट-कुटुबने मगनलाल गाधीके साथ मिलकर फिनिक्सका काम-काज सम्हाला। अखबार और छापेखानेके बहुतसे काम वेस्ट करते। मेरी और दूसरोकी अनुपस्थितिमे डर्बनसे गोखलेके पास भेजे जानेवाले तार वही भेजते। अतमे जब वेस्ट भी पकड लिये गये (यद्यपि वह तुरत छोड दिये गये) तब गोखले घबराये और ऐड्रूज तथा पियर्सनको भेजा।

दूसरे है मि० रिच। इनके बारेमे लिख चुका हू। ये भी लडाईके पहले ही मेरे दफ्तरमे दाखिल हो गये थे। मेरे पीछे मेरा काम सम्हाल सकनेकी आशासे वह बैरिस्टरी पास करने विलायत गये, वहाकी कमेटी (साउथ अफ्रिकन ब्रिटिश इडियन कमेटी) के कामकी सारी जिम्मेदारी उन्हीपर थी।

तीसरे है मि० पोलक। वेस्टकी तरह उनसे जान-पहचान भी अनायास भोजन-गृहमे हुई। वह भी क्षणभरमे 'ट्रासवाल क्रिटिक'के उपसपादककी जगह छोडकर 'इडियन ओपीनियन' मे आये। उन्होने लडाईके सिलसिलेमे इगलैंड और पूरे हिंदुस्तानमे भ्रमण किया, यह तो सभी जानते है। रिच विलायत गये तो मैने उन्हे फिनिक्ससे अपने दफ्तरमे बुला लिया। वहा आर्टिकिल्स दिये और फिर खुद भी वकील (एटर्नी) हो गये। पीछे ब्याह भी किया। मिसेज पोलकको भी हिंदुस्तान जानता है। इन बहनने लडाईके काममे अपने पतिका पूरा-पूरा हाथ बटाया। उसमे विघ्न कभी नही डाला। इस वक्त भी ये दपती असहयोगकी लडाईमे हमारे सहयोगी न होते हुए भी हिंदुस्तानकी यथाशक्ति सेवा कर रहे है।

इनके बाद हर्मन केलेनबेकका नबर आता है। इनका परिचय

भी लडाईके पहले ही हुआ। ये जातिके जर्मन है और अग्रेज-जर्मनोकी लडाई न छिड गई होती तो आज हिंदुस्तानमे होते। इनका हृदय विशाल है। इनके भोलेपनकी हद नही। इनकी भावनाए अति तीव्र है। इनका धधा शिल्पीका है। ऐसा एक भी काम नही जिसे करनेमे इन्होने कभी आनाकानी की हो। जब मैने जोहान्सबर्गकी अपनी गृहस्थी तोड दी तब हम दोनो साथ ही रहते थे। अत मेरा खर्च वही उठाते। घर तो इनका अपना ही था। खानेके खर्चमे मै अपना हिस्सा देनेको कहता तो नाराज होते और यह कहकर चुप कर देते कि मुझको फिजूल खर्चीसे बचानेवाले तो तुम्ही हो। उनके इस कथनमे सचाई थी, पर यूरोपियनोके साथ अपने निजी सबधोके वर्णनका यह स्थान नही। गोखले जब जोहान्सबर्ग आये तब भारतीय जनताने उन्हे केलनबेकके बगलेमे ही उतारा। यह स्थान गोखलेको बहुत पसद आया। गोखलेको विदा करनेके लिए वह मेरे साथ जजीबारतक गये। पोलकके साथ वह भी पकडे गये। जेल गये और अतमे जब दक्षिण अफ्रीकासे विदा होकर और इगलैडमे गोखलेसे मिलकर मै हिंदुस्तान लौट रहा था तब केलनबेक मेरे साथ थे और लडाईके कारण ही उन्हे हिंदुस्तान आनेकी इजाजत नही मिली और नब जर्मनोके साथ वह भी इगलैडमे नजरबद रखे गये थे। युद्ध समाप्त होनेपर वह जोहान्सबर्गको वापस गये और अपना धधा फिर शुरू किया। जोहान्सबर्गमे जब सत्याग्रही कैदियोके कुटुबोका एक साथ रखनेका विचार हुआ तब केलनबेकने अपना ११०० बीघेका खेत भारतीय जनताको बिना किसी लगानके सौप दिया। उसका विवरण पाठक आगे पढेगे।

अब एक पवित्र बालिकाका परिचय दू। गोखलेने जो उसे प्रमाणपत्र दिया उसे पाठकोके सामने रखे बिना मुझसे

नही रहा जाता। इस बालिकाका नाम है मिस सोजा श्लेजीन। गोखलेकी आदमियोको पहचाननेकी शक्ति अद्भुत थी। डेलागोआ बेसे जजीबारतक हमे बाते करनेको सुदर और शाति-भरा अवसर मिल गया था। दक्षिण अफ्रीकाके हिंदुस्तानी और गोरे नेताओका भी उन्हे अच्छा परिचय हो गया था। इन सभी मुख्य पात्रोके चरित्रका उन्होने सूक्ष्म विश्लेषण कर दिया और मुझे अच्छी तरह याद है कि मिस श्लेजीनको उन्होने भारतीय और गोरे सबमे प्रथम स्थान दिया था। "इसके जैसा निर्मल अत करण और काममे एकाग्रता, दृढता मैने बहुत ही थोडे लोगोमे पाई है और भारतीयोके सग्राममे, किसी भी लाभकी आशाके बिना इतना सर्वार्पण देखकर मै तो दग रह गया। फिर इन सारे गुणोके साथ उसकी होशियारी और चुस्तीने तो तुम्हारी इस लडाईमे उसे एक अमूल्य सेविका बना दिया है। मेरे कहनेकी जरूरत तो नही, फिर भी कह देता हू कि उसको तुम अवश्य अपनाना।"

एक स्काच कुमारिका मेरे यहा शार्टहैड और टाइपका काम करती थी। उसकी वफादारी और नीतिमत्ता सीमारहित थी। इस जिदगीमे मुझे कडवे अनुभव तो बहुतेरे हुए है, पर सुदर चरित्र वाले इतने अधिक यूरोपियनो और भारतीयोसे मेरा सम्पर्क हुआ है कि मै इसको सदा अपना सौभाग्य ही मानता आया हू। इस स्काच कुमारिका मिस डिकके विवाहका अवसर आया तो मुझसे उसका वियोग हुआ। तब मि० केलनबेक मिस श्लेजीनको लाये और मुझसे कहा—"इस लडकीको इसकी माने मुझे सौपा है। यह चतुर है, ईमानदार है, पर इसमे नटखटपन और स्वतत्रता बहुत अधिक है। शायद कुछ उद्धत भी कही जाय। तुमसे चल सके तो इसे रखो। मै इसे तनख्वाहकी खातिर तुम्हारे पास नही रखता।" मै तो अच्छे स्टेनो-टाइपिस्टको

२० पौंड माहवार देनेको तैयार था। मिस श्लेजीनकी योग्यताका मुझे पता नहीं था। मि० केलनबेकने कहा—"फिलहाल तो इसे ६ पौंड प्रति मास देना।" मुझे तो यह मंजूर होना ही चाहिए था।

मिस श्लेजीनके नटखटपनका अनुभव तो मुझे तुरंत ही हुआ, पर एक महीनेके अंदर ही उसने मुझे अपने वसमें कर लिया। रात और दिन चाहे जिस वक्त आप उसे काम दे सकते थे। उसके लिये न हो सकनेवाला या कठिन तो कुछ था ही नहीं। इस वक्त वह १६ वरसकी थी। मवक्किलो और सत्याग्रहियोका मन भी उसने अपनी सरलता और सेवाकी तत्परतासे हर लिया। दफ्तर और आन्दोलनकी नीतिकी यह कुमारिका चौकीदार और रखवाली करनेवाली हो गई। किसी भी कामके नीतियुक्त होनेके विषयमे उसको तनिक भी शंका हो जाय तो पूरी आजादीके साथ मुझसे वहस करती और जबतक मैं उस वस्तुके नीतियुक्त होनेका उसे इतमीनान न करा देता तबतक उसको संतोष नहीं होता था।

जब लगभग सभी नेता पकड लिये गये और अकेले सेठ काछलिया ही वाहर रह गये तब इस वालिकाने लाखो रुपयेका हिसाब रखा और भिन्न-भिन्न प्रकृतिके मनुष्योंसे काम लिया। सेठ काछलिया भी उसका सहारा, उसकी सलाह लेते। हम सबके जेल चले जानेके वाद 'इंडियन ओपीनियन'की कमान मि० डोकने सम्हाली। पर यह धवलकेश अनुभवी वुजुर्ग भी 'इंडियन ओपीनियन' के लिए लिखे हुए लेखोको मिस श्लेजीनसे पास कराता। मुझसे उन्होंने कहा—"मिस श्लेजीन न होती तो नहीं जानता कि किस तरह अपने कामसे मैं अपने आपको भी संतोष दे पाता। उसकी सहायता और सुझावोका मूल्य मैं आंक ही नहीं सकता। अक्सर उसके सुझाये हुए सुधारोको ठीक मानकर मैंने स्वीकार किया है।"

पठान, पटेल, गिरमिटिया हर वर्ग और हर उम्रके भारतीय उसे घेरे रहते, उसकी सलाह लेते और जैसा वह कहती वैसा करते।

दक्षिण अफ्रीकामे गोरे आमतौरसे रेलमे हिंदुस्तानियोके साथ एक ही डब्बेमे नही बैठते। ट्रासवालमे तो बैठनेको मना भी करते है। सत्याग्रहियोका नियम तो तीसरे दरजेमे ही यात्रा करनका था। यह होते हुए भी मिस श्लेजीन जान-बूझकर हिंदुस्तानियोके ही डब्बेमे बैठती और रोकटोक करने-वाले गार्डोके साथ लड भी पडती। मिस श्लेजीनको खुद भी गिरफ्तार होनेका हौसला था और मुझे डर था कि किसी दिन वह पकड न ली जाय, पर उसकी शक्ति, युद्धके विषयमे उसका पूरा ज्ञान और सत्याग्रहियोके हृदयपर उसने जो साम्राज्य स्थापित कर लिया था, ट्रासवाल सरकारको इन तीनो बातोका पता होते हुए भी मिस श्लेजीनको गिरफ्तार न करनेकी अपनी नीति और अपनी भलमनसीका उसने त्याग नही किया।

मिस श्लेजीनने अपनी ६ पौड मासिककी वृत्तिको बढाने-की न कभी माग की और न कभी चाही। उसकी कितनी ही जरूरतोका जब मुझे पता लगा तब मैने उसको १० पौड देना शुरु किया। इसे भी उसने बडी हिचकिचाइटसे स्वीकार किया। इससे अधिक लेनेसे तो उसने साफ इन्कार कर दिया—"मेरी जरूरत इससे ज्यादा है ही नही। फिर भी मै अधिक लू तो जिस निष्ठासे आपके पास आई हू वह झूठी ठहरेगी।" इस जवाबसे उसने मुझे चुप कर दिया। पाठक शायद यह जानना चाहते हो कि मिस श्लेजीनकी पढाई क्या थी। केप यूनीवर्सिटीकी इटरमीडियेट परीक्षा उसने पास की थी और शार्टहैड इत्यादि-मे अव्वल दरजेका प्रमाणपत्र प्राप्त किया था। लडाईके कामसे छुट्टी पानेके बाद वह उसी यूनीवर्सिटीकी ग्रेजुएट हुई और इस वक्त ट्रासवालके किसी सरकारी बालिका विद्यालयमे प्रधानाध्यापिका है।

हर्बर्ट किचन एक शुद्ध हृदयके और बिजलीका काम जाननेवाले अग्रेज थे। बोअर-युद्धमे उन्होने हमारे साथ काम किया था। थोडे दिनोतक वह 'इडियन ओपीनियन' के सपादक भी रहे। उन्होने आजीवन ब्रह्मचर्यका पालन किया।

ऊपर जिन लोगोके नाम गिनाये गये है वे तो ऐसे लोग है जिनसे मेरा निजी और निकटका सबध रहा। उनकी गिनती ट्रासवालके अग्रगी यूरोपियनोमे नही की जा सकती। फिर भी कह सकता हू कि उनसे हमे मदद भरपूर मिली। प्रतिष्ठाकी दृष्टिसे मि० हास्किनका स्थान पहला है। वह दक्षिण अफ्रीकाके एसोसियेशन आव चेबर्स आव कामर्सके भूतपूर्व अध्यक्ष और ट्रासवालकी धारा सभाके सदस्य थे। उनका परिचय पहले करा चुका हू। उनकी अध्यक्षतामे सत्याग्रह-सग्राममे सहायक गोरोका स्थायी मडल भी स्थापित किया गया था। इस मडलने उससे जितनी हो सकी उतनी हमारी मदद की थी। लडाईका सच्चा रग जमनेके बाद स्थानीय सरकारके साथ बातचीतका व्यवहार कैसे रह सकता? वह इसलिए नही कि हमने असहयोगका सिद्धान्त स्वीकार किया था, बल्कि सरकार ही अपने कानून तोडनेवालोके साथ बातचीतकी रस्म रखना पसद नही करती थी। इसलिए इस वक्त गोरोकी यह कमेटी सरकार और सत्याग्रहियोको जोडनेवाली कडी बन रही थी।

अल्बर्ट कार्टराइटका परिचय भी पहले करा चुका हू। एक और भले पादरी थे जिनका हमारे साथ डोक जैसा ही सबध रहा और जिन्होने हमारी बहुत मदद की। उनका नाम है रेवरेड चार्ल्स फिलिप। ये ट्रासवालमे अरसेतक 'कांग्रिगेशनल मिनिस्टर' थे। उनकी भली पत्नी भी हमारी सहायता करती। एक तीसरे प्रसिद्ध पादरी थे रेवरेड ड्यूड्नी

ड्रयू, जिन्होने पादरीका काम छोडकर पत्रका सपादकत्व स्वीकार किया था। वह ब्लोम फोटीनसे प्रकाशित होनेवाले 'फ्रेड' नामक दैनिक पत्रके सपादक थे। उन्होने गोरोकी अवगणना और विरोध मोल लेकर भी अपने पत्रमे हिंदुस्तानियोकी हिमायत की थी। दक्षिण अफ्रीकाके प्रसिद्ध वक्ताओमे उनकी गिनती होती थी।

'प्रिटोरिया न्यूज' के सपादक मि० वेर स्टेट भी इसी तरह स्वतत्रतापूर्वक सहायता करनेवालोमे से थे। एक वार प्रिटोरियाके टाउनहालमे गोरोने वहाके मेयरके सभापतित्वमे विराट सभाका आयोजन किया था। उसका उद्देश्य एशियावासियोको कोसना और ख़ूनी कानूनको सराहना था। वेर स्टेटने अकेले ही इस सभामे इसके विरोधमे आवाज उठाई। सभापतिने उन्हे वैठ जानेको कहा, पर उन्होने ऐसा करनेसे साफ इन्कार कर दिया। गोरोने उनके शरीरको हाथ लगानेकी भी धमकी दी, पर यह पुरुप सिहके समान गर्जता हुआ उस सभामे अडिग रहा। अतमे प्रस्ताव पास किये विना ही सभा भग कर देनी पडी।

मै ऐसे दूसरे गोरोके नाम भी गिना सकता हू जो किसी भी सस्थामे सम्मिलित नही हुए, मगर हमारी मदद करनेका एक भी अवसर नही चूके। पर अधिक न लिखकर केवल तीन वहनोका परिचय देकर ही इस प्रकरणको पूरा कर देना चाहता हू। उनमेसे एक है मिस हॉवहाउस। वह लार्ड हॉवहाउसकी वेटी थी। यह वहन वोअर-युद्धमे लार्ड मिल्नरका विरोध करके भी दक्षिण अफ्रीका पहुची थी। जव लार्ड किचनरने दुनियाभरमे ख्यात या कहिए कि निदित अपना 'कॉन्सेट्रेशन कैम्प'* ट्रासवाल और फ्री स्टेटमे कायम

*लडनेवाले वोअरोकी स्त्रियोको इकट्ठा करके कैदमे रखनेकी छावनी।

किया उस वक्त यह वीर महिला बोअर स्त्रियोमे अकेली फिरती और उन्हे दृढ रहनेको समझाती और बढावा देती। वह मानती थी कि बोअर-युद्धके विषयमे अंग्रेजोकी राजनीति सोलह आने अन्यायकी है । इसलिए स्व० स्टेडकी तरह वह उनकी हार मनाती और ईश्वरसे इसके लिए प्रार्थना करती। बोअरोकी इतनी बडी सेवा करनेके बाद जब उसे मालूम हुआ कि जिस अन्यायके विरुद्ध बोअरोने तलवार उठाई थी वही अन्याय वह अज्ञानवश भारतीयोके साथ करनेको तैयार है तब उससे सहन न हो सका । बोअर जनता उसके प्रति बहुत सम्मान और प्रेम रखती थी । जनरल बोथाके साथ उसका अति निकटका सबध था । उन्हीके यहा वह ठहरा करती थी । खूनी कानूनको रद करानेके लिए बोअर लोगोसे कहनेमे उसने कुछ उठा नही रखा था ।

दूसरी बहन थी ऑलिव श्राइनर। इनके बारेमे मैं पाचवे प्रकरणमे लिख चुका हू । ये दक्षिण अफ्रीकाके प्रख्यात श्राइनर परिवारमे जन्मी हुई विदुषी महिला थी। श्राइनर नाम इतना प्रसिद्ध है कि जब उनका ब्याह हुआ तब उनके पतिको यही नाम ग्रहण करना पडा जिसमे श्राइनर-परिवारके साथ उनका सबध दक्षिण अफ्रीकाके गोरोमे लुप्त न हो जाय। यह उनका कुछ मिथ्या स्वाभिमान न था। मैं मानता हू कि उनके साथ मेरा अच्छा परिचय था। इस बहनकी सादगी और नम्रता भी वैसे ही उनका आभूषण थी जैसे उनकी विद्वत्ता। उनके हबशी नौकरो और खुद उनके बीच कोई अतर है, यह उन्होने कभी नही माना । अंग्रेजी भाषा जहा-जहा बोली जाती है वहा-वहा उनकी 'ड्रीम्स' नामक पुस्तक आदरके साथ पढी जाती है । यह है तो गद्य, पर काव्य-की पंक्तिमे रखी जाती है। उन्होने और भी बहुतसी चीजे लिखी है । लेखनीपर इतना अधिकार होते हुए भी वह अपने

हाथ खाना पकाते, घरकी सफाई करते, बरतन माजते शर्माती नही थी, न उससे परहेज करती थी। वह मानती थी कि यह उपयोगी शरीर-श्रम उनकी लेखन-शक्तिको मद करनेके बदल उसे उत्तेजित करता है और भाषा तथा विचारोको एक प्रकारका आभिजात्य और गाभीर्य प्रदान करता है। यह बहन भी दक्षिण अफ्रीकाके गोरोपर जो कुछ असर डाल सकती थी उस सबका उपयोग भारतीय पक्षका समर्थन करनेमे किया था।

तीसरी बहन थी मिस माल्टीनो । यह भी दक्षिण अफ्रीकाके पुराने घरानेकी वयोवृद्ध महिला थी। इन्होने भी भारतीयोकी अपनी शक्तिभर सहायता की।

पाठक पूछ सकते है कि इन सारे यूरोपियनोकी सहायता-का फल क्या रहा ? इसका जवाब मै यह दूगा कि फल बताने-के लिए यह प्रकरण नही लिखा गया है। उनमेसे कुछका काम ही, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है, उसके फलका साक्षी रूप है ? पर इन हितेच्छु गोरोकी सारी सहायता-सहानुभूतिका नतीजा क्या निकला, यह सवाल पैदा हो सकता है। यह लडाई ही ऐसी थी कि उसका फल उसमे ही समाया हुआ था। यह लडाई थी स्वावलबन, आत्म-बलि और भग-वानपर भरोसा रखनेकी।

गोरे सहायकोके नाम गिना जानेका एक हेतु तो यह है कि दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहके इतिहासमे उनसे मिली हुई सहायताका उल्लेख न हो तो वह इस इतिहासकी कमी मानी जायगी। मैने सभी गोरे सहायकोके नाम नही दिये है। पर जितने दिये है उतनेसे सहायक मात्रके प्रति हम अपनी कृतज्ञता इस प्रकरणमे प्रकट कर देते है। दूसरा कारण है इस सिद्धान्तमे सत्याग्रही रूपसे अपनी श्रद्धा प्रकट करना कि यद्यपि कर्मविशेषका परिणाम हम स्पष्ट रीतिसे नही देख सकते हो, फिर भी शुद्ध चित्तसे किये हुए कर्मका फल शुभ ही होता

है, फिर वह दृश्य हो या अदृश्य। इसका तीसरा सबल कारण है यह दिखाना कि सदुद्योग ऐसी अनेक प्रकारकी शुद्ध और निस्स्वार्थ सहायताए अपनी ओर अनायास खीच लेते है। इस प्रकरणमे यह वात अवतक समझा नही दी गई हो तो मै यह स्पष्ट कर देना चाहता हू कि सत्याग्रहकी लडाईमे सत्यके पालनको ही अगर हम प्रयास माने तो इसे छोडकर और कोई भी प्रयास इन यूरोपीय सज्जनोकी सहायता पानेके लिए नही किया गया। युद्धके अतर्निहित वलसे ही वे आकृष्ट हुए थे।

: २४ :

और भीतरी कठिनाइयां

२१ वे प्रकरणमे हमे कुछ भीतरी कठिनाइयोका अदाजा हो गया है। मुझपर हमला होनेके समय मेरे वाल-वच्चे फिनिक्समे रहते थे। हमलेकी खवरसे उनका उद्विग्न होना स्वाभाविक था; पर मुझे देखनेके लिए पैसा खर्च करके फिनिक्ससे जोहान्सवर्ग दौडे आए, यह तो मुमकिन नही था। इसलिए अच्छा हो जानेपर मुझीको जाना था। नेटाल और ट्रासवालके बीच मेरा आना-जाना, कामके सिलसिलेमे, हुआ ही करता था। समझौतेके वारेमे नेटालमे भी खूब भ्रम फैल रहा था, इससे मै अनजान नही था। मेरे और दूसरोके पास जो चिट्ठिया आती थी उनसे मुझे इसका पता था और 'इडियन ओपीनियन'को जो गहरे कटाक्ष करनेवाले पत्र मिले थे उनका वडल तो मेरे ही पास था। यद्यपि सत्याग्रह अवतक ट्रासवालके भारतीयोको ही करना था तो भी नेटालके भारतीयोकी सम्मति और सहानुभूति तो प्राप्त करनी

ही थी। ट्रासवालके भारतीय ट्रासवालके निमित्तसे सारे दक्षिण अफ्रीकाकी लडाई लड रहे थे। इससे नेटालमे पैदा हुई गलतफहमी दूर करनेके लिए भी मेरा डर्बन जाना जरूरी था। अत मौका मिलते ही मै वहा गया।

डर्बनके हिदुस्तानियोकी आम सभा की गई। कुछ मित्रोने मुझे चेता दिया था कि इस सभामे तुमपर हमला होनेवाला है। इसलिए या तो तुम सभामे जाओ ही नही या अपने बचावका कुछ उपाय कर लो। दो मे से एक भी बात मुझसे हो सकनेवाली नही थी। नौकरको मालिक बुलाये और वह डरसे न जाये तो उसका सेवक धर्म गया और मालिककी सजासे डरे तो वह सेवा कैसी? जनताकी सेवा सेवाकी खातिर करना खाडेकी धारपर चलना है। लोकसेवक स्तुति लेनेको तैयार हो जाता है तो निदासे कैसे भाग सकता है? अत मै तो नियत समयपर सभामे पहुच ही गया। समझौता कैसे हुआ, यह समझाया। जो सवाल किये गये उनके जवाब भी दिये।

यह सभा रातके कोई आठ बजे हुई थी। काम लगभग पूरा हो चला था कि इतनेमे एक पठान अपनी लाठी लेकर मचपर चढ आया।,इसी वक्त बत्तिया भी बुझ गई। मै स्थिति समझ गया। सभापति सेठ दाऊद मुहम्मद अपनी मेजपर चढ गये और लोगोको समझाने लगे। मेरा बचाव करनेवालोने मुझे घेर लिया। मैने अपने बचावका कोई उपाय नही किया था। पर मैने पीछे देखा कि जिन्हे हमलेका डर था वे तो सब तरहसे तैयार होकर आये थे। उनमेसे एक तो अपनी जेबमे तमचा रखकर आये थे और उसका खाली फैर भी किया। इस बीच पारसी रुस्तमजी, जिन्होने हमलेकी तैयारी देख ली थी, विद्युत वेगसे दौडकर थानेपर पहुचे और पुलिस सुपरिटेडेट अलेक्जेडरको खबर दी। उन्होने पुलिसका

एक दस्ता भेज दिया और पुलिस गडवडमे रास्ता करके मुझे अपने बीचमे कर पारसी रुस्तमजीके यहा ले गई।

दूसरे दिन सवेरे पारसी रुस्तमजीने डर्बनके पठानोंको इकट्ठा करके कहा कि आप लोगोको गाधीजीसे जो कुछ शिकायते हो उन्हे उनके सामने रखे। मै उनसे मिला। उन्हे शात करनेकी कोशिश की, पर मै नही समझता कि मै उन्हे शान्त कर सका। वहमकी दवा दलील देने या समझाने-से नही हो सकती। उनके मनमे यह वात जम गई थी कि मैने कौमको धोखा दिया है और जबतक यह मैल उनके दिमागसे न निकल जाय, मेरा समझाना वेकार था।

मै उसी दिन फिनिक्स पहुचा। जिन मित्रोने पिछली रात मेरी रक्षा की थी उन्होने मुझे अकेले भेजनेसे साफ इन्कार कर दिया और मुझे सुना दिया कि हम भी चलकर फिनिक्समे डेरा डालेगे। मैने कहा—"आप लोग मेरी 'ना' को अन-सुनी करके आना चाहेगे तो मै आपको रोक नही सकता, पर वहा तो जगल है और वहा वसनेवाले हम लोग आपको भोजन भी न दे तो आप क्या करेंगे ?" उनमेसे एकने जवाव दिया—"हमे यह डर दिखानेकी जरूरत नही। अपना प्रवध हम खुद कर लेगे। पर जवतक हम सिपाहीगिरी करते होगे तबतक आपका भडार लूटनेसे हमे कौन रोकने वाला है ?"

इस प्रकारका विनोद करते हुए हम फिनिक्स पहुचे। इस रक्षकदलका नेता जैक मुडली नामका व्यक्ति था, जो हिदुस्तानियोमे काफी मशहूर था। उसका जन्म नेटालमे तामिल मा-बापके घर हुआ था। उसने घूसेबाजी (वाक्सिग) की खास तौरसे तालीम हासिल की थी और वह और उसके साथी भी मानते थे कि घूसेबाजीमे दक्षिण अफ्रीकामे गोरा या काला कोई भी जैक मुडलीका मुकावला नही कर सकता।

दक्षिण अफ्रीकामे जब वारिश न हो रही हो तब मै बिलकुल

बाहर खुलेमे सोना। अनेक वर्षोसे मेरी यह आदत थी। इसमे कोई फेरफार करनेको मै इस वक्त तैयार नही था। इससे स्वनिर्मित रक्षकदलने रातमे मेरी खाटके पास पहरा देनेका निश्चय किया। गोकि फिनिक्समे मैने इस दलसे मजाक किया था और उसे आनेसे रोकनेकी भी कोशिश की थी, फिर भी मुझे अपनी इतनी कमजोरी कबूल करनी होगी कि जब उन लोगोने पहरा देना शुरू किया तो मैने कुछ अधिक निर्भयता अनुभव की और मनमे यह भी सोचा कि अगर ये लोग न आये होते तो क्या मै इतना ही निर्भय होकर सो सकता ? मुझे यह भी जान पडता है कि किसी आवाजसे मै अवश्य चौक उठता था।

मै मानता हू कि ईश्वरपर मेरी अविचल श्रद्धा है। मेरी बुद्धि बरसोमे इस बातको भी स्वीकार करती आ रही है कि मृत्यु जीवनमे एक बडा परिवर्तन मात्र है और चाहे जब आये, सदा स्वागत करने योग्य है। दिलमेसे मौतके और दूसरे डरोको निकाल देनेका मैने ज्ञानपूर्वक महाप्रयत्न किया है। फिर भी अपने जीवनमे ऐसे अवसर याद कर सकता हू जब मृत्युसे मिलनेका विचार करते हुए मै वैसा उल्लसित नही हो सका जैसा अरसेसे बिछुडे हुए मित्रसे मिलनेकी बात सोचने-पर हम हो जाया करते है। इस प्रकार सबल होनेका महाप्रयत्न करते हुए भी मनुष्य अक्सर निर्बल बना रहता है और बुद्धिसे गृहीत ज्ञान अनुभवका अवसर आनेपर बहुत काम नही आता। फिर जब उसको बाहरका सहारा मिलता है और वह उसको स्वीकार कर लेता है तब तो वह अपना अन्तर्बल अधिकाशमे खो देता है। सत्याग्रहीको इस प्रकारके भयोसे सदा बचते रहना चाहिए।

फिनिक्समे मैने एक ही काम किया। गलतफहमी दूर करनेके लिए मैने खूब लिखना शुरू किया। सपादक

और शकाशील वाचक वर्गके बीच एक कल्पित सवाद लिख डाला। जो-जो शकाए और आक्षेप मैंने सुन रखे थे उन सबपर जितनी तफसीलके साथ मुझसे हो सका विचार किया। मै मानता हू कि इसका फल अच्छा ही हुआ। यह तो प्रकट हो गया कि उन लोगोके दिलमे गलतफहमी जड न जमा सकी, जिनको अगर वह सचमुच हुई होती या बनी रहती तो दुखद परिणाम होता। समझौतेको मानना न मानना केवल ट्रासवालके हिंदुस्तानियोका काम था। अत उनके कामोसे उनकी और नेता तथा सेवकके रूपमे मेरी भी परीक्षा होनेवाली थी। बहुत ही थोडे हिंदुस्तानी रहे होगे जिन्होने अपनी इच्छासे परवाना नही ले लिया हो। इतने अधिक लोग परवाना लेने जाते थे कि परवाना देनेवाले अहलकारोको दम मारनेकी फुरसत भी नही मिलती थी। भारतीय जनताको समझौतेकी शर्तोमेसे जिनका पालन करना था उनका पालन उसने बडी शीघ्रतासे कर दिया। सरकारको भी यह बात कबूल करनी पडी। मैने यह भी देखा कि गलतफहमियोने यद्यपि उग्र रूप ग्रहण कर लिया था, फिर भी उनका क्षेत्र बहुत ही सकुचित था। कुछ पठानोने जब कानून अपने हाथमे ले लिया और बल-प्रयोगका रास्ता पकडा तब भारी खलबली मच गई, पर इस खलबलीका विश्लेषण करने बैठिये तो मालूम हो जायगा कि उसकी कोई बुनियाद नही होती और अकसर तो वह केवल क्षणिक होती है। पर यह होते हुए भी उसका जोर आज भी दुनियामे कायम है, क्योकि खून-खराबीसे हम काप उठते है। पर हम धीरजके साथ विचार करने बैठे तो तुरत मालूम हो जाय कि कापनेका कुछ भी कारण नही। मान लीजिये कि मीर आलम और उसके साथियोके प्रहारसे मेरा शरीर जखमी होनेके बदले नष्ट हो गया होता और साथ ही यह भी मान लीजिये कि कौम

बुद्धिपूर्वक अनुद्विग्न और शात रही होती, मीर आलम अपनी बुद्धि-का अनुसरण करते हुए दूसरा कुछ कर ही नही सकता था, यह समझ-कर उसने उसके प्रति मित्रभाव और क्षमाभाव रखा होता तो इससे कौमकी कोई हानि नही हुई होती, वल्कि अतिशय लाभ ही हुआ होता। कारण यह है कि कौममे तो उस दशामे गलतफहमी-का अभाव होता और वह दूने जोशसे अपनी प्रतिज्ञापर अटल रहती और अपने कर्तव्यका पालन करती। मुझे तो विशुद्ध लाभ होता, क्योकि सत्याग्रही इससे अधिक मगल-परिणामकी तो कल्पना ही नही कर सकता कि अपने सत्यका आग्रह रखते हुए, सत्याग्रहके प्रसगमे ही, वह अनायास मृत्यु प्राप्त करे।

ऊपर दी हुई दलीले सत्याग्रहकी जैसी लडाईपर ही लागू हो सकती है, क्योकि उसमे वैर-भावके लिए स्थान ही नही। आत्मशक्ति या स्वावलवन ही एकमात्र साधन होता है। उसमे एकको दूसरेका मुह ताकते वैठे रहना नही होता। उसमे कोई नेता नही होता, इसलिए कोई सेवक भी नही, अथवा सभी नेता और सभी सेवक होते है। इसलिए प्रौढ-से-प्रौढ पुरुषकी मृत्यु भी युद्धको शिथिल नही करती, वल्कि उसका वेग और वढा देती है।

यह सत्याग्रहका शुद्ध और मूल स्वरूप है। अनुभवमे हमे इसके दर्शन नही होते, क्योकि सभी वैर त्याग दे यह नही होता। सव सत्याग्रहका रहस्य समझते हो यह भी अनुभवमे देखनेमे नही आता। थोडोको देखकर वहुसख्यक उनका मूढ अनुकरण करते है। फिर सामुदायिक और सामाजिक सत्याग्रहीका ट्रासवालका प्रयोग तो टाल्स्टायके कथनानुसार पहला ही माना जायगा। मै खुद शुद्ध सत्याग्रहका ऐति-हासिक उदाहरण नही जानता था। मेरा इतिहास-ज्ञान नगण्य है। इसलिए इस विपयमे मै कोई पक्की राय कायम नही कर सकता। पर सच पूछिये तो ऐसे ऐतिहासिक उदाहरणोसे

हमारा कोई संबंध नहीं । सत्याग्रहके मूलतत्त्वको आप स्वीकार कर ले तो आप देखेगे कि जो फल मैंने बताये है वे उसमे पहले हीसे मौजूद है । यह दलील देकर हम इस अमूल्य वस्तुको त्याग नहीं सकते कि इसका आचरण करना कठिन या अशक्य है । शस्त्रबलके दूसरे प्रयत्न तो हजारो बरससे होते ही आ रहे है । उसके कडवे फल तो हम प्रत्यक्ष देख रहे है । भविष्यमे उससे मीठे फल उपजनेकी आशा थोडी ही रखी जा सकती है । अधकारमेसे अगर उजाला उत्पन्न किया जा सकता हो तो वैर-भावसे प्रेम-भाव भी प्रकट किया जा सकता है ।

———

दक्षिण अफ्रीकाका सत्याग्रह

द्वितीय खण्ड

प्रस्तावना

पाठक जानते है कि दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका इतिहास उपवासादि कारणोसे मै जारी न रख सका था। उसे अब इस अंकसे फिर शुरु करता हू। मुझे उम्मीद है कि अब मै उसे निर्विघ्न पूरा कर सकूगा।

इस इतिहासकी स्मृतियोपरसे मै देखता हू कि हमारी आजकी स्थितिमे एक भी चीज ऐसी नही है जिसका अनुभव, छोटे पैमानेपर, दक्षिण अफ्रीकामे मुझे न हुआ हो। आरभमे यही उत्साह, यही एका, यही आग्रह, मध्यमे यही नैराश्य, यही अरुचि, आपसमे झगड़ा और द्वेषादि, ऐसा होते हुए भी मुट्ठीभर लोगोमे अविचल श्रद्धा, दृढता, त्याग, सहिष्णुता, वैसे ही अनेक प्रकारकी सोची-अनसोची कठिनाइया। हिंदुस्तानकी लडाईका अतिम काल अभी बाकी है। इस आखिरी मजिलकी मै तो जो स्थिति दक्षिण अफ्रीकामें अनुभव कर चुका हू उसकी ही आशा यहा भी रखता हू। दक्षिण अफ्रीकाकी लडाईका अतिम काल पाठक अभी आगे देखेगे। उसमे कैसे बिना मागी मदद हमारे पास चली आई, लोगोमे कैसे अनायास उत्साह उपजा और अतमे हिंदुस्तानी कौमकी सपूर्ण विजय किस प्रकार हुई, यह सब पाठक देखेगे।

'यह इतिहास 'नवजीवन' में धारावाहिक रूपसे प्रकाशित हुआ था।—अनु०

इस प्रकार मेरा दृढ विश्वास है कि जैसा दक्षिण अफ्रीकामे हुआ वैसा ही यहा भी होगा। कारण यह कि तपश्चर्यापर, सत्यपर, अहिंसापर मेरी अविचल श्रद्धा है। मै इस बातको अक्षरश सत्य मानता हू कि सत्यका पालन करनेवालेके सामने सपूर्ण जगत्की समृद्धि रहती है और वह ईश्वरका साक्षात्कार करता है। अहिंसाके सान्निध्यमे वैरभाव टिक नही सकता, इस वचनको भी मै अक्षरश सत्य मानता हू। कष्ट सहन करनेवालोके लिए कुछ भी अशक्य नही होता, इस सूत्रका मै उपासक हू। इन तीनो वस्तुओका मेल मै कितने ही सेवकोमे पाता हू। उनकी साधना कभी निष्फल नही होती, मेरा यह निरपवाद अनुभव है।

पर कोई कह सकता है कि दक्षिण अफ्रीकामे पूरी जीत होनेका अर्थ तो इतना ही है कि हिंदुस्तानी जैसे थे वैसे ही बने रहे। ऐसा कहनेवाला अज्ञानी कहलायेगा। दक्षिण अफ्रीकामे लडाई न लडी गई होती तो आज दक्षिण अफ्रीकासे ही नही, बल्कि सारे अग्रेजी उपनिवेशोसे हिंदुस्तानियोके कदम उठ गये होते और किसीने उनकी खोज-खबर भी न ली होती। पर यह उत्तर यथेष्ट या सतोषजनक नही माना जायगा। यह दलील भी दी जा सकती है कि सत्याग्रह न किया गया होता और समझाने-बुझानेसे जितना काम हो सकता था उतना काम लेकर हम बैठ गये होते तो आज जो स्थिति है वह नही होती। यह दलील यद्यपि सचाईसे खाली है, फिर भी जहा केवल दलीलो और अटकलोसे ही काम लिया जाता हो वहा किसकी दलीले और किसके अनुमान अच्छे है, यह कौन कह सकता है? अटकले लगानेका हक सभीको है। जिसका जवाब नही दिया जा सकता, जिसका खडन नही किया जा सकता, वैसी बात तो यह है कि जो वस्तु जिस शस्त्रके द्वारा प्राप्त की जाती है, उसकी रक्षा उसी हथियारसे हो सकती है।

'काबे अर्जुन लुटियो वही धनुष वही बाण'[1]

जिन अर्जुनने शिवजीको हराया, कौरवोंका मद उतारा, वही अर्जुन जब कृष्णकी सारथिसे रहित हुए तब एक दस्यु दलको अपने गांडीव धनुषसे न हरा सके। यही स्थिति दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानियोंकी है। अभी तो वे लड़ ही रहे हैं। पर जिस सत्याग्रहके द्वारा उन्होंने लड़ाई जीती थी उस हथियारको वे खो बैठे हों तो अंतमें वे जीती हुई बाजी हार जायंगे। सत्याग्रह उनका सारथि था और वही सारथि उनकी सहायता करनेमें समर्थ है।

नवजीवन
५ जुलाई १९२५

—मोहनदास करमचंद गांधी

---

[1] अर्जुनके हाथोंमें वही धनुष और वही बाण था, पर डाकुओंने उन्हें लूट लिया।

दक्षिण अफ्रीकाका सत्याग्रह

द्वितीय खण्ड

: १ :

जनरल स्मट्सका विश्वासघात (?)

पाठकोने भीतरी कठिनाइया तो कुछ-कुछ देख ली। उनके वर्णनमे अधिकाशत मुझे आत्मकथा ही देनी पडी। यह अनिवार्य था, क्योकि सत्याग्रहसे सवध रखनेवाली मेरी कठिनाइया सत्याग्रहियोकी भी कठिनाइया हो गई। अव हम वाहरी कठिनाइयोकी कथा फिरसे उठाते है।

इस प्रकरणका शीर्षक लिखते हुए मुझे शर्म आती है और यह प्रकरण लिखते हुए भी। इसलिए कि इसमे मनुष्य-स्वभावकी वक्रताका वर्णन किया गया है। जनरल स्मट्स १९०८ मे भी दक्षिण अफ्रीकामे तो योग्यतम नेता माने जाते थे, आज दुनियामे नही तो ब्रिटिश साम्राज्यमे तो वह ऊचे दरजेके कार्यकुशल पुरुप गिने जाते है। उनकी शक्ति वहुत वडी है, इस विपयमे मेरे मनमे तनिक भी शका नही। वह जैसे कुशल वकील है वैसे ही कुशल सेनापति है और राज-काज चलानेमे भी वैसे ही कुशल है। दक्षिण अफ्रीकामे दूसरे कितने ही राजनीतिज्ञ आये और गये, पर १९०७से आजतक वहाँके राजकाजकी वागडोर यह पुरुप अपने हाथमे रखे हुए है और आज भी दक्षिण अफ्रीकामे एक भी आदमी ऐसा नही है जो उनके मुकावलेमे खडा रह सके। ये पक्तिया

लिखते समय मुझे दक्षिण अफ्रीका छोडे ९ वरस हो चुके है। मै नही जानता कि आज दक्षिण अफ्रीका उन्हे किस विशेपणसे याद करता है! जनरल स्मट्सका घरका (क्रिश्चियन) नाम जॉन है और दक्षिण अफ्रीकाके लोग उन्हे 'स्लिम जेनी' कहकर पुकारते है। 'स्लिम'का अर्थ यहा है 'जो सरक जाय' 'जो पकडमे न आये।' हिंदीमे उससे मिलते-जुलते अर्थका धूर्त या मीठा विशेपण व्यवहार करे तो विपरीत अर्थमे चालाक शब्द काममे ला सकते है। अनेक अग्रेज मित्रोने मुझसे कहा था—जनरल स्मट्ससे होशियार रहना। यह वडा काइया है। बात कहकर पलटते उसे तनिक भी देर नही लगती। अपने शब्दोका अर्थ वही जान सकता है। अकसर वह इस तरह वोलता है कि दोनो पक्ष उसके शब्दोका वही अर्थ कर सकते है जो उन्हे प्रिय होता है। फिर जव मौका आता है तब वह दोनो पक्षके अर्थको किनारे रखकर अपना तीसरा ही अर्थ दिखाता है, उसको अमलमे लाता है और उसके समर्थनमे ऐसी चतुराईभरी दलीले देता है कि दोनों पक्ष क्षणभर तो यह मानने लगते है कि भूल हम हीसे हुई होनी चाहिए। जनरल स्मट्स जो अर्थ कर रहे है वही सही अर्थ है। ऐसे ही एक विषयका वर्णन मुझे इस प्रकरणमे करना है। वह घटना जिस समय घटित हुई उसी वक्त वह विश्वासघात मानी और कही गई। आज भी भारतीय समाजकी दृष्टिसे उसको मै विश्वासघात मानता हू। फिर भी इस शब्दके सामने मैने जो प्रश्नचिह्न रखा है उसका कारण यह है कि उनका काम वास्तवमे शायद इरादेके साथ किया हुआ विश्वासघात न हो। जहा घातका इरादा न हो वहा विश्वासका भंग कैसे माना जा सकता है? १९१३-१४ मे मुझे जनरल स्मट्स-का जो अनुभव हुआ, उसे मैने उस वक्त कडवा नही माना था और आज जव उसपर कुछ अधिक तटस्थ दृष्टिसे

विचार करता हू तब भी उसे कडवा नही मान सकता। इसलिए यह सर्वथा सभव है कि १९०८ मे भारतीयोके साथ उन्होने जो व्यवहार किया वह ज्ञानपूर्वक किया हुआ विश्वास-भग न हो।

इतनी प्रस्तावना मैने इसलिए दी है कि जनरल स्मट्सके साथ न्याय कर सकू और उनके नामके साथ विश्वासघात शब्दका जो मैने व्यवहार किया है उसका, और जो कुछ इस प्रकरणमे मुझे कहना है उसका भी बचाव हो सके। पिछले प्रकरणमे हम देख चुके कि भारतीयोने ऐच्छिक परवाने इस रीतिसे निकलवा लिये जिससे ट्रासवालकी सरकारको सतोप हो जाय। अब खूनी कानूनको रद करना उक्त सरकारका फर्ज था। वह यह कर देती तो सत्याग्रहकी लडाई बद हो जाती। इसका अर्थ यह नही है कि ट्रासवालमे हिदुस्तानियोके खिलाफ जितने कानून बने थे वे सभी रद हो जाय या हिदुस्तानियोके सारे दु ख दूर हो जाय। उन्हे दूर करनेके लिए तो जैसे पहले वैध आदोलन किया जाता था वैसे करना ही था। सत्याग्रह तो खूनी कानूनरूपी नये डरावने बादलको हटाने भरके लिए था। उस कानूनको स्वीकार करनेमे कौमकी जिल्लत होती थी और पहले ट्रासवाल और अतमे सारे दक्षिण अफ्रीकामे उसकी हस्ती ही मिट जाती थी। पर खूनी कानून रद करनेके बजाय जनरल स्मट्सने नया ही कदम उठाया। उन्होने जो बिल प्रकाशित किया उसके जरिये खूनी कानूनको बहाल रखा और अपनी मर्जीसे लिए हुए परवानेको कानूनके अनुकूल माना। पर बिलके अदर एक दफा ऐसी रख दी जिससे जिसने परवाना ले लिया हो उसपर खूनी कानून लागू न हो। इसके मानी यह होते थे कि एक ही उद्देश्यवाले दो कानून साथ-साथ चलते रहे और नये आनेवाले या बादमे परवाना लेने-वाले हिदुस्तानी भी खूनी कानून द्वारा शासित हो।

यह विल पढकर मैं तो दिग्मूढ हो गया। कौमको मैं क्या जवाब दूगा ? जिन पठान भाइयोने पिछली मध्यरात्रिकी सभामे मुझपर कठोर आक्षेप किये थे उनको कैसी वढिया खूराक मिली ? पर मुझे यह वता देना चाहिए कि सत्याग्रहपर मेरा विश्वास इस धक्केसे ढीला न होकर और दृढ हो गया। अपनी कमेटीकी वैठक वुलाई और उसे स्थिति समझाई। कुछने मुझे ताना भी मारा--"हम तो आपसे कहते आ रहे है कि आप वहुत भोले है। जो कुछ भी कोई कह दे उसे सच मान लेते है। आप अपने निजी कामोमे ही भोलापन वरतते तव तो अधिक हानि न थी, पर कौमी कामोंमे जो आप यह सरलताका व्यवहार करते है उससे कौमको नुकसान उठाना पडता है। अव पहलेका-सा जोश फिर जगना हमे तो वहुत कठिन दिखाई देता है। अपनी कौमको क्या आप नही जानते ? वह तो सोडावाटरकी बोतल है। क्षणभरके लिए उफान आता है, उसका उपयोग कर लेना होता है। यह उफान ठडा हुआ और सब गया।" इस शब्द-वाणमे विप न था। ऐसी बाते मै दूसरे मौकोपर भी सुन चुका था। मैंने हँसकर जवाब दिया--"जिसे आप मेरा भोलापन कहते है वह तो ऐसी चीज है जो मेरे स्वभावका एक अग हो गया है। यह भोलापन नही, विश्वास है और विश्वास रखना तो मेरा और आपका सवका धर्म है। फिर भी यदि आप इसे दोष मानते हो, पर अगर मेरी सेवासे कुछ लाभ होता हो तो मेरी खोट-खामीसे होनेवाली हानि भी आपको सह्य होनी चाहिए। आपकी तरह मै यह भी नही मानता कि कौमका जोश सोडा-वाटरके उफान-जैसा है। कौममे मै और आप भी है। मेरे जोशको अगर आप यह विशेषण दे तो मै इसको अवश्य अपना अपमान मानूगा। और मुझे विश्वास है कि आप अपनेको तो अपवादरूप ही मानते होगे और वैसा न मानते हो

और अपने पैमानेसे कौमको नापते हो तो आप कौमका अपमान करते है। ऐसे महान् सग्रामोमे ज्वार-भाटा तो आया ही करता है। आपने कितनी ही सफाई कर ली हो, पर विपक्षी विश्वासघात करना ही चाहे तो उसे कौन रोक सकता है? इस मडलमे ऐसे कितने ही लोग है जो मेरे पास प्रामिसरी नोट नालिश करनेके लिए लाते है। दस्तखत करके अपना हाथ कटा देनेसे अधिक सावधानी और क्या हो सकती है? फिर भी ऐसे लोगोपर भी अदालतमे नालिश दायर करनी पडती है। वे अनेक प्रकारके बचाव पेश करते है, डिगरिया होती है। कुर्किया निकलती है। ऐसी अयोग्य घटनाओके लिए कौन-सी सावधानी रखी जा सकती है, जिससे उनकी आवृत्ति न हो? अत मेरी सलाह तो यही है कि जो उलझन हमारे सामने आ गई है उसे धीरजके साथ सुलझाए। हमे फिर लडना ही पडे तो हम क्या कर सकते है, यानी दूसरे क्या करेगे, इसको सोचे विना हरएक सत्याग्रही खुद क्या करेगा या कर सकता है—इसीका विचार करना है। मुझे तो ऐसा लगता है कि हम इतने लोग सच्चे रहे तो दूसरे भी वैसे ही रहेगे, या उनमे कोई कमजोरी आ गई हो तो हमारी मिसाल लेकर वे उसको दूर कर सकेगे।"

मेरा खयाल है कि जिन लोगोने फिर लडाई चल सकनेके वारेमे नेक इरादेसे तानेके रूपमे शका प्रकट की थी वे समझ गये। इस अवसरपर सेठ काछलिया दिन-दिन अपना जौहर दिखा रहे थे। सभी विषयोमे कम-से-कम वोलकर अपना निश्चय वता देते और फिर उसपर अटल रहते। मुझे एक भी ऐसा अवसर याद नही आता जव उन्होने कमजोरी दिखाई हो या अतिम परिणामके विषयमे शका ही प्रकट की हो। ऐसा मौका भी आया जव ईसप मिया तूफानी समुद्रमे कौमकी नैयाकी पतवार पकडे रहनेको तैयार न थे।

उस वक्त सबने एकमतसे कर्णधारके रूपमे काछलियाका स्वागत किया और तबसे अतिम घडीतक उन्होने पतवार हाथसे न छोडी। जो कष्ट-कठिनाइया विरले ही सहन कर सकते है उन्हे उन्होने निश्चित और निर्भय होकर सहन किया। लडाई आगे बढी तो एक ऐसा अवसर आया जब कितनोके लिए जेलमे जाकर बैठ जाना आसान काम था, आराम था, पर बाहर रहकर सब बातोको बारीकीसे देखना, उनका प्रबध करना, बहुतोको समझाना, यह सब कही अधिक कठिन था।

ऐसा अवसर भी आया कि सेठ काछलियाके पावनेदारोने उन्हे अपने शिकजेमे कस लिया।

बहुतसे भारतीय व्यापारियोका रोजगार गोरे व्यापारियो-की कोठियोपर अवलबित था। वे लाखो रुपयेका माल बिना किसी जमानतके हिदुस्तानी व्यापारियोके हाथ उधार बेच देते थे। भारतीय व्यापारियोका इतना विश्वास सपादन कर लेना भारतीय व्यापारकी सामान्य प्रामाणिकता-का एक सुदर प्रमाण है। सेठ काछलियापर भी बहुत-सी गोरी कोठियोका पावना था। सरकारकी ओरसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीतिसे उकसाये जाकर इन व्यापारियोने काछ-लियाको लिखा कि हमारा पावना तुरत चुका दो। उन्होने काछलियाको बुलाकर भी यह कहा कि आप इस लडाईसे अलग हो जाय तो हमे अपने पैसेकी कोई जल्दी नही, पर आप उससे अलग न होगे तो हमे डर है कि सरकार आपको किसी भी क्षण गिरफ्तार करा सकती है। उस दशामे हमारे पैसेका क्या होगा? इसलिए आप इस लडाईसे अलग हो ही न सकते हो तो हमारा पावना आपको तुरत चुका देना चाहिए।" इस वीर पुरुषने इसका यह जवाब दिया—"लडाई-मे शामिल होना मेरी अपनी बात है, मेरे व्यापारके साथ उसका कोई लगाव नही। इस लडाईमे मेरा धर्म,

कौमका मान और मेरा अपना आत्मसम्मान भी समाया हुआ है। आपने मुझे उधार माल दिया, इसके लिए आपका अहसान मानता हू, पर इसको या अपने व्यापारको मै सर्वोपरि नही मान सकता। आपके पैसे मेरे लिए सोनेकी मुहरे है। जबतक मै जीवित हू तबतक अपने आपको बेचकर भी आपका पैसा भर सकता हू। पर मान लीजिए कि मेरा कुछ हो गया तो भी मेरी उगाही और मेरे मालको अपने हाथमे ही समझिए। आजतक आपने मेरा विश्वास किया है और मै चाहता हू कि अब भी आप विश्वास करे।" यद्यपि यह दलील सोलहो आने सही थी और काछलियाकी दृढता गोरे व्यापारियोके लिए विश्वासका एक अतिरिक्त कारण थी, फिर भी इस वक्त उनपर उसका असर नही हो सकता था। हम सोते हुएको जगा सकते है, पर जो जागते हुए सोनेका ढोग करता हो उसको नही जगा सकते। गोरे व्यापारियोके विषयमे भी यही हुआ। उन्हे तो सेठ काछलियाको दबाना था। उनके पैसेको कोई खतरा न था।

मेरे दफ्तरमे लेनदारोकी बैठक हुई। उनको मैने स्पष्ट शब्दोमे बता दिया कि काछलियापर जो दबाव आप लोग डाल रहे है उसमे व्यापार-नीति नही, राजनैतिक चाल है, व्यापारियोको वैसा करना शोभा नही देता। इससे वे उलटे और चिढ गये। सेठ काछलियाके माल और उनकी उगाहीका जो लेखा मेरे पास था वह मैने उन्हे दिखाया और इससे यह सिद्ध किया कि उनका पावना पाई-पाई वसूल हो सकता है। इसके सिवा वे यह व्यापार दूसरेके हाथ बेच देना पसद करे तो काछलिया यह सारा माल और पावना खरीदारके हवाले कर देनेको तैयार है। यह न करे तो जो माल दुकानमे मौजूद है उसको असल दामपर ले ले और इसमे उन्हे कुछ घाटा लगे तो उसके एवजमे जो

पावना वे पसद करे वह ले ले। पाठक समझ सकते है कि यह प्रस्ताव स्वीकार करनेमे गोरे व्यापारियोको कुछ खोना न पड़ता और मै अपने अनेक मवक्किलोके लिए सकटकालमे पावनेदारोके साथ ऐसा वदोवस्त कर सका था, पर व्यापारी इस मौकेपर न्याय करना नही चाहते थे। वे तो काछलिया-को झुकाना चाहते थे। काछलिया नही झुके और दिवालिया कर्जदार करार दे दिये गये, गो कि उनका पावना देनेसे बहुत ज्यादा निकला।

यह दिवालियापन उनके लिए कलकरूप नही, वल्कि उनका भूपण था। कौममे उनकी प्रतिष्ठा बढी और उनकी दृढता और वहादुरीके लिए सवने उनको मुवारकवादी दी। पर इस प्रकारकी वीरता अलौकिक है। सामान्य मनुष्य इसको समझ ही नही सकता। दिवाला किस तरह दिवाला न रहकर, वेइज्जती न रहकर, आदर और मान माना जा सकता है, इसकी वह कल्पना भी नही कर सकता। काछलियाको यही वस्तु स्वाभाविक लगी। बहुतेरे व्यापारियोने दिवालेके डरसे ही खूनी कानूनके सामने सिर झुकाया था। काछलिया चाहते तो दिवालियेपनसे बच सकते थे। लडाईसे अलग होकर बचनेका उपाय तो था ही, पर इस समय मै कुछ और ही कहना चाहता हू। वहुतसे भारतीय उनके मित्र थे। वे ऐसे सकटके समय उन्हे पैसा उधार दे सकते थे। पर ऐसा प्रवध करके वह अपना व्यापार बचाते तो उनकी वीरता लज्जित होती। जेल जानेका जो खतरा उनके लिए था वह तो सभी सत्याग्रहियोके लिए था। इसलिए किसी सत्याग्रहीसे पैसे लेकर गोरोका ऋण चुकाना उनको कदापि गोभा न देता। पर जैसे सत्याग्रही व्यापारी उनके मित्र थे वैसे ही जिन्होने खूनी कानूनके सामने घुटने टेक दिये थे वे भी मित्र थे। उनकी मदद मिल सकती थी, यह मै जानता

हू। मेरी स्मृतिके अनुसार एक-दो मित्रोने उनसे इसके लिए कहलाया भी, पर उनकी मदद लेना तो यह मान लेने जैसा होता कि खूनी कानूनके सामने सिर झुका देना बुद्धिमानी है। अत हम दोनोने निश्चय किया कि उनकी मदद हमे हरगिज न लेनी चाहिए। इसके सिवा हम दोनोने यह भी सोचा कि अगर काछलिया अपने आपको दिवालिया करार दिया जाने दे तो उनका दिवाला दूसरोके लिए ढालका काम देगा। कारण कि अगर सौमे नही तो ९० फीसदी दिवालोमे पावनेदारको कुछ-न-कुछ नुकसान उठाना ही पडता है। अत उसे अगर रुपयेमे आठ आने मिल जाए तो वह प्रसन्न होता है और बारह आने मिल जाए तब तो वह मान लेता है कि हमारा पूरा पावना वसूल हो गया। दक्षिण अफ्रीकाके बडे व्यापारी आमतौरसे ६। फीसदी नही, बल्कि २५ फीसदी नफा लिया करते है। अत उन्हे रुपयेमे बारह आने मिल जाए तो वे इसे घाटेका रोजगार नही मानते। पर दिवालेमे पूरा-पूरा पावना तो शायद ही मिलता है। इसलिए कोई भी पावनेदार कर्जदारको दिवालिया बनवाना नही चाहता।

अत काछलियाके दिवालेसे गोरे व्यापारियोका दूसरोको धमकाना तो बद हो ही जाना चाहिए था। हुआ भी यही। गोरोका मतलब यह था कि काछलियाको दबाकर युद्धसे अलग करा दे और वह ऐसा न करे तो अपना सौ फीसदी पावना उनसे वसूल करे। दोमेसे एक भी उद्देश्य सिद्ध न हुआ, उलटा प्रतिकूल परिणाम हुआ। प्रतिष्ठित भारतीय व्यापारीके दिवालियेपनका स्वागत करनेका यह पहला उदाहरण देखकर गोरे व्यापारी हतबुद्धि हो गये और सदाके लिए शात हो गये। एक सालके अदर सेठ काछलियाके मालसे गोरोका पावना पूरा-पूरा, शत-प्रतिशत वसूल हो गया। दिवालेमे

पावनेदारोको सौ फीसदी मिलनेकी मेरी जानकारीमे तो दक्षिण अफ्रीकामे यह पहली ही मिसाल थी। इससे, लडाई जब चल रही थी उसी वक्त काछलियाका मान गोरे व्यापारियोमे अतिशय बढ गया और वही व्यापारी लडाईके जारी रहते हुए उनको जितना माल चाहिए उतना उधार देनेको तैयार हो गये। पर काछलियाका बल तो दिन-दिन बढता ही जाता था। युद्धका रहस्य भी वह समझ गये। लडाई कितनी लबी होगी यह पीछेमे तो कोई कह ही न सकता था। इसलिए दिवालिया ठहराये जानेके बाद हमने तै कर लिया था कि जबतक लडाई चल रही है तबतक वह लबे व्यापारमे पडे ही नही। एक गरीब आदमी जितनेमे अपना खर्च चला सकता है उतना कमा लेने भर कारबार रखकर बाकी व्यापार लडाईके दरमियान बद रखनेका उन्होने निश्चय किया। इससे गोरे उन्हे जो सुभीता दे रहे थे उसका लाभ उन्होने नही उठाया। पाठक इतना तो समझ ही लेगे कि काछलिया सेठके जीवनकी जिन घटनाओका वर्णन मैने ऊपर किया है वे सारी इस प्रकरणमे वर्णित कमेटीकी बैठकके बाद ही नही घटित हुई। पर इस वर्णनको एक ही साथ देना ठीक समझकर यहा मैने उन्हे दे दिया है। तिथिक्रमकी दृष्टिसे देखे तो दूसरी लडाई शुरू होनेके (१० सितबर १९०८) के कुछ दिन बाद काछलिया अध्यक्ष हुए और इसके कोई पाच महीने बाद दिवालिया करार दिये गए।

अब हम कमेटीकी बैठकके नतीजेपर विचार करे। इस बैठकके बाद मैने जनरल स्मट्सको पत्रमे लिखा कि आपका नया बिल समझौतेका भग है। समझौतेके एक हफ्तेके अदर उन्होने जो भाषण दिया था उसकी ओर भी मैने अपने पत्रमे ध्यान खीचा। उस भाषणमे उन्होने ये शब्द कहे थे--"ये लोग (एशियावासी) एशियाटिक कानून रद

कर देनेके लिए मुझसे कहते है। मैने उनसे कह दिया है कि जबतक सभी एशियावासी ऐच्छिक परवाना नही ले लेते तबतक कानून रद नही किया जा सकता।" अधिकारी लोग ऐसी बातोका जवाब नही दिया करते जो उन्हे उलझनमे फँसा दे। देते भी है तो वह गोल-मटोल होता है। जनरल स्मट्स तो इस कलाके आचार्य थे। आप चाहे जितना लिखे, चाहे जितना बोले, जब उनकी जवाब देनेकी इच्छा न होगी तब उनके मुहसे आप कोई उत्तर नही निकलवा सकते। अपनेको मिले हुए पत्रोका उत्तर देना ही चाहिए, यह सामान्य शिष्टाचार उनके लिए बधनकारक नही था। अत अपने पत्रोके उत्तरसे मै कुछ भी सतोष न प्राप्त कर सका।

अपने मध्यस्थ अलबर्ट कार्टराइटसे मै मिला। वह सुनकर स्तब्ध हो गये और कहा—"सचमुच मै इस आदमी-को समझ नही सकता। एशियाटिक कानून रद कर देनेकी बात मुझे अच्छी तरह याद है। मुझसे जो हो सकेगा करूगा, पर तुम जानते हो कि यह आदमी जब एक निश्चय कर लेता है तब उसपर किसीकी कुछ चलती नही। अखबारोके लेखो-को तो वह कुछ गिनता ही नही। इसलिए मुझे पूरा डर है कि मेरी मदद तुम लोगोके कुछ काम न आ सकेगी।" मि० हास्किन आदिसे भी मिला। उन्होने जनरल स्मट्सको पत्र लिखा। उन्हे भी बहुत ही असतोषकारक उत्तर मिला। 'विश्वासघात' शीर्षक देकर मैने 'इडियन ओपीनियन' मे कई लेख भी लिखे, पर जनरल स्मट्स उनकी परवा क्यो करने लगे? तत्त्ववेत्ता अथवा निष्ठुर मनुष्यके लिए चाहे जैसे कडवे विशेषण व्यवहार करो उसपर कोई असर नही होनेका। वह अपने सोचे हुए काम करनेमे तन-मनसे लगा रहता है। जनरल स्मट्सके विषयमे दोमेसे

किस विशेपणका व्यवहार हो सकता है, यह मै नही जानता। मुझे यह तो स्वीकार करना ही होगा कि उनकी वृत्तिमे एक प्रकारकी दार्शनिकता है। जिस वक्त उनके साथ मेरा पत्र-व्यवहार हो रहा था और अखवारोमे मेरे लेख निकल रहे थे उस वक्त तो मुझे याद है कि मैने उन्हे निष्ठुर ही माना था। पर यह युद्धका अभी पहला भाग, उसका दूसरा ही वरस, था और हमारी लडाई तो आठ वरस चली। इस वीच मै उनसे कितनी ही वार मिला। हमारी पीछेकी वात-चीतसे मुझे अकसर ऐसा लगता कि जनरल स्मट्सके काइयापनके वारेमे जो आम खयाल दक्षिण अफ्रीकामे है उसमे परिवर्तन होना चाहिए। दो वाते तो मुझे साफ दिखाई दी अपनी राजनीतिके विपयमे उन्होने कुछ सिद्धात स्थिर कर रखे है और वे नितान्त अनीतिमय तो नही ही है, पर इसके साथ-साथ मैने यह भी देखा कि उनके राजनीतिशास्त्रमे चालाकी और मौका पड़नेपर सत्याभासके लिए भी स्थान है।[1]

: २ :

युद्धकी पुनरावृत्ति

एक ओर जनरल स्मट्ससे समझौतेकी शर्तोका पालन करनेके लिए विनती की जा रही थी तो दूसरी ओर कौमको फिरसे जगानेका उद्योग उत्साहपूर्वक चल रहा था। अनुभव यह हुआ कि हर जगह लडाई फिर शुरू करने और जेल जानेको लोग तैयार थे। हर जगह सभाए की जाने लगी, जिनमें

---

[1] ये पक्तिया छपते समय हमे यह मालूम हो गया है कि जनरल स्मट्सकी सरदारीका भी अत हो सकता है।—मो० क० गाधी।

सरकारके साथ हमारा जो पत्र-व्यवहार चल रहा था वह समझाया जाता। 'इडियन ओपीनियन' मे तो हर हफ्तेका रोजनामचा दिया ही जाता था। इससे कौमको स्थितिकी पूरी जानकारी रहती। सबको समझा दिया गया कि हमारा अपनी खुशीसे परवाने लेना निष्फल सिद्ध होनेवाला है और खूनी कानून किसी तरह रद न हुआ तो हमे अपने परवाने जला डालने होगे। इससे स्थानीय सरकारको यह मालूम हो जायगा कि हिंदुस्तानी अडिग है, निर्भय है और जेल जानेको भी तैयार है। इस दृष्टिसे हर जगह परवाने भी इकट्ठा किये जा रहे थे।

जिस बिलके बारेमे हम पिछले प्रकरणमे पढ चुके है सरकारकी ओरसे उसको पास करानेकी तैयारी होने लगी। ट्रासवालकी धारा सभाका अधिवेशन आरभ हुआ। भारतीयोने उसमे आवेदनपत्र भेजा, पर इसका भी नतीजा कुछ न निकला। अतमे सत्याग्रहियोका 'अल्टिमेटम' सरकारके पास भेजा गया। 'अल्टिमेटम' के मानी होते हैं 'निश्चयपत्र' या धमकीका पत्र जो लडाईके इरादेसे ही भेजा जाता है। इस शब्दका व्यवहार कौमकी ओरसे नही किया गया, बल्कि उसके निश्चयकी सूचना देनेवाला जो पत्र सरकारको भेजा गया उसको जनरल स्मट्सने धारा सभामे यही नाम दिया और साथ-साथ यह भी कहा कि जो लोग ऐसी धमकी इस सरकारको दे रहे है उनको उसके बलका पता नही है। मुझे खेद इतना ही है कि कुछ आदोलनकारी (एजिटेटर) गरीब हिंदुस्तानियोको उकसा रहे है और गरीब लोगोमे उनका जोर हुआ तो वे बरबाद हो जायगे। अखबारोके सवाददाताओने इस प्रसगका वर्णन करते हुए लिखा था कि धारा सभाके बहुसख्यक सदस्य अल्टिमेटमकी बात सुनकर आगबबूला हो गये। उनकी आखे सुर्ख हो गई और उन्होने

जनरल स्मट्सके पेश किये हुए बिलको एकमतसे तथा उत्साहपूर्वक पास कर दिया।

उपर्युक्त अल्टिमेटममे इतनी ही बात थी—"जो समझौता हिंदुस्तानी कौम और जनरल स्मट्सके बीच हुआ था उसकी स्पष्ट शर्त यह है कि हिंदुस्तानी अपनी इच्छासे परवाने ले ले तो उनको बाकायदा मान लेनेके लिए एक बिल विधान-सभामे पेश किया जायगा और एशियाटिक कानून रद कर दिया जायगा। यह तो प्रसिद्ध बात है कि हिंदुस्तानी कौमने इस रीतिसे ऐच्छिक परवाने ले लिए जिससे सरकारी अधिकारियोको सतोप हो जाय। इसलिए अब एशियाटिक कानून रद हो ही जाना चाहिए। कौमने इस बारेमे जनरल स्मट्सको बहुत लिखा। न्याय पानेके लिए जो दूसरे कानूनी उपाय किये जा सकते थे वे सब भी किये गये, पर अबतक उसका सारा प्रयत्न निष्फल हुआ है। मसविदा विधान-सभामे पास होने ही जा रहा है। ऐसे वक्त कौममे फैली हुई बेचैनी और उसकी तीव्र भावना सरकारको बता देना नेताओंका फर्ज है। और हमे खेदके साथ कहना पडता है कि अगर समझौतेकी शर्तोके अनुसार एशियाटिक कानून रद न कर दिया गया और ऐसा करनेके निश्चयकी सूचना कौमको अमुक अवधिके अदर न मिल गई तो उसने जो परवाने इकट्ठा किये है वे जला डाले जायगे और ऐसा करनेसे जो मुसीबते उसपर आयेगी उनको वह विनय और दृढताके साथ सहन कर लेगी।"

इस पत्रको 'अल्टिमेटम' माननेका एक कारण तो यह था कि उसमे जवाब देनेके लिए एक अवधि रख दी गई थी। दूसरा कारण था गोरोका यह आम खयाल कि हिंदुस्तानी एक जगली कौम है। अगर हिंदुस्तानियोको वे अपने-जैसा समझते होते तो इस चिट्ठीको विनय-पत्र मानते और उसपर ध्यान देते, पर गोरोकी यह जगलीपनकी धारणा ही हिंदुस्तानियोके

ऊपरके जैसा पत्र लिखनेका पर्याप्त कारण था। कौमके सामने दो स्थितिया थी एक तो यह कि जगलीपनका आरोप स्वीकार कर दवी पडी रहे। दूसरी यह कि उक्त आरोपसे इन्कार करनेके अमली कदम उठाये। ऐसे कदमोमे यह पत्र पहला था। इस पत्रके पीछे उसपर अमल करनेका दृढ निश्चय न होता तो यह पत्र उद्धत समझा जाता और हिंदुस्तानी विचाररहित और उजड्ड कौम है, यह सावित होता।

पाठकोके मनमे शायद यह शका पैदा हो कि जगली होनेसे इन्कार करनेका कदम तो १९०६मे, जव सत्याग्रहकी प्रतिज्ञा की गई उसी वक्त उठाया जा चुका था और यदि यह सही हो तो इस पत्रमे ऐसी कौन-सी नई वात थी जिससे मै उसको महत्त्व देता हू और यह मानता हू कि उसके लिखे जानेके वक्तसे कौमने जगलीपनके आरोपको अस्वीकार करना आरभ किया? एक दृष्टिसे यह दलील सही मानी जा सकती है, पर विशेप विचारसे मालूम होगा कि अस्वीकारका सच्चा आरभ निश्चय-पत्रसे ही हुआ। पाठकोको याद रखना चाहिए कि सत्याग्रहकी प्रतिज्ञाका सयोग अनायास वना। उसके वादकी जेल आदि तो उसका अनिवार्य परिणाम ही था। उसमे कौमकी प्रतिष्ठा वढी, पर अनजानमे। यह पत्र लिखे जानेके समय तो पूरा ज्ञान और प्रतिष्ठाका दावा करनेका पूरा इरादा था। खूनी कानूनको रद करनेका उद्देश्य तो था ही, जैसे पहले वैसे अव। पर उसके साथ भापाकी शैली, काम करनेके ढगके चुनाव आदिमे फर्क था। गुलाम मालिकको सलाम करे और एक मित्र दूसरे मित्रको करे तो दोनो सलाम तो है ही, पर दोनोमे इतना वडा अतर है कि उससे तटस्थ प्रेक्षक तुरत जान जायगा कि एक गुलाम और दूसरा दोस्त है।

अल्टिमेटम भेजते समय हम लोगोमे यह चर्चा भी हुई थी कि अवधि नियत करके जवाव मगाना क्या अविनय न माना

जायगा ? क्या इसीसे यह नही हो सकता कि सरकार हमारी मांग मजूर करनेवाली हो तो भी न करे ? कौमका निश्चय परोक्ष रीतिसे सरकारपर प्रकट कर देना क्या काफी न होगा ? इन सब बातोपर विचार कर लेनेके बाद हम सबने एकमतसे निश्चय किया कि हम जिसको सही और मुनासिब समझे वही करे । अविनयी कहे जानेका इलजाम सिरपर आये तो उसे कबूल कर ले । सरकार जो देनेवाली हो वह झूठा रोष दिखाकर न दे तो यह जोखिम भी उठा ले । अगर हम मनुष्यरूपमे अपने आपको दूसरोसे किसी तरह हेठा न मानते हो और यह भी मानते हो कि चाहे जितना दु ख चाहे जितने दिनतक उठाना पडे उसे सह लेनेकी शक्ति हममे है, तो जो सही और सीधा रास्ता हो वही हमे स्वीकार करना चाहिए ।

अब शायद पाठक यह समझ सके कि इस वक्त जो कदम उठाया गया उसमे कुछ नवीनता और विशेपता थी । उसकी प्रतिध्वनि विधान-सभामे और बाहरके यूरोपीय मडलोमें भी हुई । कुछने हिदुस्तानियोकी हिम्मतकी सराहना की और कितने ही उनपर अति क्रुद्ध हुए । उन्होने यह भी कहा कि हिदुस्तानियोको इस गुस्ताखीकी पूरी सजा मिलनी चाहिए । उभयपक्षने अपने व्यवहारसे हिदुस्तानियोके कदमका नया-पन स्वीकार किया । सत्याग्रह जब आरभ हुआ उस वक्त सच पूछिए तो वह नया कदम था । फिर भी उससे जो हलचल मची थी उसकी बनिस्वत इस पत्रसे बहुत अधिक हलचल मची । इसका एक कारण तो स्पष्ट ही है । सत्याग्रह आरभ होनेके समय कौमकी शक्तिका अदाजा किसीको न हुआ था । अत उस वक्त ऐसा पत्र या उसकी भाषा हमे शोभा न देती । अब कौमकी थोडी-बहुत परीक्षा हो चुकी थी । सबने देख लिया था कि सामाजिक कठिनाइयोका सामना करनेमे जो कष्ट सिरपर आये उन्हे सह लेनेकी शक्ति उसमे है । अत.

निश्चयपत्रकी भाषा स्वाभाविक रीतिसे उद्भूत हुई और तनिक भी अशोभनीय न लगी।

: ३ :

ऐच्छिक परवानोंकी होली

'अल्टिमेटम' या निश्चयपत्रकी अवधि उसी दिनकी रखी गई थी जिस दिन दूसरा एशियाटिक कानून विधान-सभामे पास होनेवाला था। अवधि बीतनेके एक-दो घंटे बाद परवानोको जलानेकी सार्वजनिक क्रिया करनेके लिए सभा बुलाई गई थी। सत्याग्रह-कमेटीने सोचा था कि शायद अनसोची रीतिसे सरकारका अनुकूल उत्तर मिल जाय तो भी सभा व्यर्थ न जाय। उस दशामे सरकारका अनुकूल निश्चय उसके जरिये लोगोपर प्रकट किया जा सकता था।

कमेटीका खयाल तो यह था कि इस निश्चयपत्रका सरकार कोई जवाब ही नही देगी। हम सभी पहलेहीसे सभा-स्थानपर पहुच गये थे। इसका प्रबध भी कर रखा गया था कि सरकारका तारसे भी कोई जवाब आये तो वह सभामे तुरत मिल जाय। सभाका समय चार बजेका रखा गया था। नियमानुसार वह मस्जिदके मैदानमे १६ अगस्त १९०८ को की गई थी।

सारा मैदान हिंदुस्तानियोसे ठसाठस भर गया था। दक्षिण अफ्रीकामे हबशी अपना खाना पकानेके लिए लोहेकी बनी चार पायोवाली छोटी या बडी कढाई काममे लाते है। परवाने जलानेके लिए ऐसी ही एक कढाई जो बडी-से-बडी मिल सकी, एक हिंदुस्तानी व्यापारीकी दुकानसे मगा रखी गई थी। यह कढाई एक कोनेमे चबूतरेके ऊपर रखी गई थी।

सभाका काम शुरू करनेका समय हुआ कि इतनेमे एक स्वयसेवक बाइसिकिलपर आ पहुचा। उसके हाथमे तार था। यह तार सरकारका जवाब था। उसमे हिंदुस्तानी कौमके निश्चयपर खेद प्रकट किया गया था और यह भी जता दिया गया था कि सरकारके लिए अपना निश्चय बदल सकना मुमकिन नही। यह तार सभाको पढकर सुना दिया गया। सभाने उसका स्वागत किया। सरकार निश्चयपत्रकी मागे मजूर कर लेती तो कौमको परवानोकी होली जलानेका शुभ कार्य करनेका जो अवसर मिला था वह हाथसे निकल जाता। यह हर्ष योग्य माना जाय कि अयोग्य, इसका निश्चय करना बहुत कठिन है। जिस-जिसने जवाबका तालियोसे स्वागत किया उनका हेतु समझे विना योग्यता-अयोग्यताका निर्णय नही हो सकता। पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि यह हर्ष सभाके उत्साहका सुदर लक्षण था। सभाको अपनी शक्तिका कुछ अदाजा मिल गया था।

सभा आरभ हुई। सभापतिने सभाको सावधान किया। सारी स्थिति समझाई। सभाने अवसरके अनुरूप प्रस्ताव स्वीकार किये। जो भिन्न-भिन्न स्थितिया हमारे सामने अभी आई थी मैने उन्हे स्पष्ट रीतिसे समझा दिया और कहा—"जिन लोगोने अपने परवाने जलानेके लिए दिये है उनमेसे कोई अपना परवाना वापस लेना चाहता हो तो ले सकता है। परवाने जला देनेसे ही कोई अपराध नही होता और जिन्हे जेल जानेका हौसला हो उनका हौसला इतनेहीसे पूरा नही होनेका। परवाने जलाकर तो हम महज अपना यह निश्चय प्रकट करते है कि हमे खूनी कानूनके आगे सिर नही झुकाना है और परवाना दिखानेभरकी शक्ति भी अपने पास नही रखना चाहते। पर जो आदमी परवाना जलानेकी क्रियामे आज शामिल हो वह अगले ही दिन जाकर नया परवाना निकलवा

ले तो कोई उनका हाथ पकडनेवाला नही। जिसका ऐसा दुष्कर्म करनेका इरादा हो या जिसे परीक्षाके समय अपनी शक्तिके विषयमे शका हो उसके लिए अब भी वक्त है कि अपना परवाना वापस ले ले और वह ले सकता है। इस वक्त अपना परवाना लौटा लेनेवालेके लिए लज्जाका कोई कारण नही। मै तो इसको एक तरहकी हिम्मत ही मानूगा। पर पीछेसे परवानेकी नकल लेनेमे शर्म और जिल्लत है और कामकी हानि है। इसके सिवा कौमको यह भी समझ रखना चाहिए कि यह लडाई लबी हो सकती है। हमे यह भी मालूम है कि हमारे कुछ साथी निश्चयसे गिर गये है। अत स्पष्ट है कि कौमकी गाडी खीचनेवाले जो बाकी रह गये है उन्हे उतना जोर और लगाना होगा। मेरी सलाह है कि इन सारी बातो-को सोच-समझकर ही आप आनेका साहस करे।"

मेरे भाषणके बीचमे ही ये आवाजे तो आ ही रही थी—"हमे परवाने वापस नही लेने है, उनकी होली जलाइये।" अतमे मैने कहा कि किसीको प्रस्तावका विरोध करना हो तो वह खडा हो जाय। पर कोई खडा न हुआ। इस सभामे मीर आलम भी हाजिर था। उसने जाहिर किया कि मुझको मारकर उसने भूल की और अपना असल परवाना जलानेके लिए दिया। ऐच्छिक परवाना तो उसने लिया ही नही था। मैने मीर आलमका हाथ पकडा और हर्षसे दबाया। मैने फिर उसे जताया कि मेरे मनमे तुम्हारे प्रति कभी कोई रोष नही था। मीर आलमके इस कामसे सभाके हर्षका ठिकाना न रहा।

कमेटीके पास दो हजारसे ऊपर परवाने जलानेके लिए आ चुके थे। उनकी गठरी उपर्युक्त कढाईमे झोककर ऊपरसे मिट्टीका तेल उडेल दिया गया और ईसप मियाने उसे दिया-सलाई लगा दी। सारी सभा खडी हो गई और यह होली जबतक जलती रही तबतक तालियोसे मैदानको गुजा रखा। कुछ

लोगोने अपने परवाने अभीतक अपने पास ही रख छोडे थे। वे मचपर उनकी वर्षा करने लगे। कढाईमे उनकी भी आहुति कर दी गई। होली जलनेसे पहले तक वे क्यो नही दिये गए, यह पूछनेपर किसीने जवाव दिया कि हमारा ख्याल था कि होली जलते समय देनेमे अधिक शोभा है और दूसरोपर उसका असर भी अधिक होगा। दूसरे कितनोने सरल भावसे स्वीकार किया कि हमारी हिम्मत न होती थी और अतिम क्षणतक यह भी सोचते थे कि शायद परवाने न जलाये जायं। पर यह होली देखकर हमसे रहा न गया। जो गति सवकी होगी वह हमारी भी हो जायगी। इस लडाईमे ऐसी सरल हृदयताके अनुभव हमे अनेक हुए।

लदनके 'डेली मेल' अखवारके जोहान्सवर्गके सवाददाताने उक्त पत्रको इस सभाका विवरण भेजा। उसमे परवानोकी होली जलानेकी तुलना उस घटनाके साथ की गई जब अमरीकाके अग्रेजोने विलायतसे भेजी चायकी पेटियोको वोस्टन-वदरगाहमे जलसमाधि दे दी और इग्लैडके अधीन न रहनेके निश्चयकी घोषणा की। दक्षिण अफ्रीकामे १३००० हिंदुस्तानियोके असहाय समुदायका ट्रासवालके वलवान राज्यसे सामना था। उधर अमरीकामे वहाके हर वातमे कुशल लाखों गोरे व्रिटिश साम्राज्यके वलका सामना कर रहे थे। इन दोनो स्थितियोकी तुलना करके देखनेपर 'डेलीमेल' के सवाद-दाताने भारतीयोके विषयमे अतिशयोक्ति की, ऐसा नही जान पडता। हिंदुस्तानी कौमका हथियार अपने सत्यपर विश्वास और भगवानके भरोसेके सिवा और कुछ न था। इसमे सदेह नही कि श्रद्धालुके लिए यह शस्त्र सर्वोपरि है। पर जन-समाजमे अभी यह दृष्टि नही आई थी और जवतक वह नही आती तवतक निहत्थे १३ हजार हिंदुस्तानी हर हथियारसे लैस अमरीकाके गोरोके सामने तुच्छ ही गिने जाएगे; पर

ईश्वर तो निर्वलका ही वल है। इसलिए दुनिया इनको तुच्छ समझे, यह ठीक ही है।

: ४ :

कौमपर नया सवाल उठानेका आरोप

विधानसभाकी जिस वैठकमे एशियाटिक कानून (दूसरा) पास हुआ उसीमे जनरल स्मट्सने एक और विल भी पेश किया। उसका नाम था 'इमिग्रट्स रिस्ट्रिक्शन ऐक्ट', यानी नई वस्तीपर रोक लगानेवाला कानून। यह कानून सवपर लागू होता था, पर उसका मुख्य उद्देश्य नये आनेवाले हिंदुस्तानियोको रोकना था। इस कानूनको गढनेमे नेटालके वैसे ही कानूनका अनुकरण किया गया था। पर इसमे एक दफा यह थी कि जिनपर एशियाटिक कानून लागू होता है वे भी प्रतिवद्ध वस्तीकी व्याख्यामे आ जाए। अर्थात् परोक्ष रीतिसे इस कानूनमे ऐसी युक्ति की गई थी कि एक भी नया हिंदुस्तानी ट्रासवालमे दाखिल न हो सके। इससे लोहा लेना तो कौमके लिए जरूरी था ही, पर उसको सत्याग्रहमे शामिल करे या नही, यह सवाल सामने खडा हो गया। सत्याग्रह कव और किस विपयमे करे, इस वारेमे कौम किसीके साथ वधी हुई नही थी। उसकी सीमा कौमके विवेक और शक्तिमे थी। वात-वातमे कोई सत्याग्रह करे तो वह दुराग्रह होगा। वैसे ही अपनी शक्तिकी नाप-तौल किये विना कोई इस शस्त्रका उपयोग करे और पीछे हार खाय तो इसमे भी वह खुद तो कलकित होता ही है, इस अविवेकसे इस वेजोड हथियारको भी दूपित करता है।

कमेटीने देखा कि हिंदुस्तानी कौमका सत्याग्रह खूनी

कानूनके ही खिलाफ है। वह रद हो जाय तो वस्तीसबधी कानून (इमिग्रट्स रिस्ट्रिक्शन ऐक्ट) मे छिपा हुआ जहर, जो ऊपर बताया गया है, अपने आप नष्ट हो जायगा। फिर भी अगर यह सोचकर कि खूनी कानून रद हो गया तो वस्तीवाले कानूनके लिए अलगसे चर्चा या आदोलनकी आवश्यकता न होगी। कौमे चुप बैठी रहे तो यह समझा जायगा कि हिंदुस्तानियोंकी नई वस्तीपर लगाये गये सारे प्रतिबधोको उसने स्वीकार कर लिया। इसलिए उस कानूनका तो विरोध करना ही होगा। विचार केवल इस बातका करना है कि इस सघर्षको सत्याग्रहमे शामिल करे या नही। कौमने सोचा कि सत्याग्रहके दौरानमे ही उसपर कोई नया हमला हो तो इस हमलेको भी सत्याग्रहमे शामिल कर लेना उसका फर्ज होगा। अशक्तिवश वैसा न किया जा सके तो यह जुदी बात है। नेताओने देखा कि शक्तिके अभाव या न्यूनताका बहाना बनाकर हम इस जहरीली दफाकी घूटको पी नही सकते, इसलिए उसको भी सत्याग्रहका विषय बना ही लेना चाहिए।

अत इस विषयमे स्थानीय सरकारके साथ लिखा-पढी आरभ हुई। इससे कानूनमे कोई हेर-फेर तो नही हुआ, पर जनरल स्मट्सको उसमे कौमको, सच पूछिये तो मुझको, बदनाम करनेका एक नया औजार मिल गया। वह जानते थे कि जितने गोरे जाहिरा हमारी मदद करते है उनसे कही अधिककी हमदर्दी निजी तौरपर हमारे साथ है और वह हमदर्दी नष्ट की जा सकती हो तो उसकी फिकर की जाय। उनका यह सोचना स्वाभाविक ही था। इसलिए उन्होने मुझपर नया सवाल उठानेका इलजाम लगाया और अपने साथ बातचीतमे तथा लिखकर भी हमारे अग्रेज सहायकोको बताया—"गाधीको जितना मै पहचानता हू उतना आप लोग नही पहचानते। आप उसे एक इच दे तो वह एक हाथ मागेगा।

यह सब मै जानता हू। इसीलिए एशियाटिक कानूनको रद नही कर रहा हू। जब उसने सत्याग्रह आरभ किया था तब नई वस्तीकी तो कोई वात ही नही थी। ट्रासवालकी रक्षाके लिए हम नये हिदुस्तानियोका आना रोकनेका कानून बना रहे है तो यह उसमे भी अपना सत्याग्रह चलाना चाहता है। ऐसी चालाकी (कनिंग) कबतक बर्दाश्त की जा सकती है ? उसे जो करना हो करे, भले ही एक-एक हिंदुस्तानी बरबाद हो जाय, मै एशियाटिक कानूनको रद करनेवाला नही और ट्रासवाल सरकारने हिंदुस्तानियोके विषयमे जो नीति ग्रहण की है उसका भी त्याग नही किया जायगा। इस न्यायसगत नीतिका समर्थन करना हर यूरोपियनका फर्ज है।"

तनिक-सा विचार करनेसे ही यह देखा जा सकता है कि उपर्युक्त दलील सोलहो आने गैरवाजिब और नीतिविरुद्ध थी। नई वस्ती रोकनेके कानूनका जब जन्म ही नही हुआ था उस वक्त मै या कौम उसका विरोध कैसे कर सकती थी ? जनरल स्मट्सने मेरी चालाकीके अनुभवकी वात कही है, पर इसकी एक भी मिसाल वह पेश नही कर सके और मै खुद तो जानता हू कि दक्षिण अफ्रीकामे मै इतने वरस रहा उसमे कभी चालाकी वरतनेकी वात मुझे याद ही नही आती, वल्कि इस मौकेपर तो मुझे आगे वढकर यह कहनेमे भी हिचक नही होती कि अपनी सारी जिदगीमे मैने चालाकीसे कभी काम लिया ही नही। मै मानता हू कि चालाकीसे काम लेना नीति-विरुद्ध है। इतना ही नही, मै तो उसे युक्तिविरुद्ध भी मानता हू। इसलिए व्यवहार-दृष्टिसे भी उसका उपयोग मैने सदा नापसद किया है। अपने वचावमे इतना लिखनेकी भी जरूरत मै नही समझता। जिस पाठकवर्गके लिए मै यह लिख रहा हू उसके सामने अपने मुहसे अपनी सफाई देते मुझे शर्म मालूम होती है। मै चालाकीसे रहित हू इसका अनुभव अगर उन्हे

अवतक न हुआ हो तो अपनी सफाईसे मै इस विपयको सिद्ध कर ही नही सकता । ऊपरके वाक्य लिखनेका हेतु इतना ही है कि सत्याग्रहकी लडाई कैसे सकटके वीच लडी जा रही थी इसकी कल्पना पाठकोंको हो जाय और वे समझ ले कि कौम नीतिकी पगडडीसे वाल वरावर भी हट जाती तो लडाई कैसे खतरेमे पड जाती । वाजीगर जव वीस फुट ऊचे खभेसे लटकाई गई रस्सीपर चलता है तो उसे जैसी एकाग्र दृप्टि रखकर चलना पडता है—तनिक भी निगाह चूके तो दाहिने गिरे या वाये, उसके लिए मौत रखी ही होती है—सत्याग्रहीको उससे भी अधिक एकाग्र दृप्टि रखकर चलना होता है। आठ वरसके लवे कालमे मैने यह वात सीख ली थी । जिन मित्रोके सामने जनरल स्मट्सने उक्त आरोप लगाया था वे मुझे अच्छी तरह पहचानते थे। अत उनपर जनरल स्मट्स जो चाहते थे उसका उलटा ही असर हुआ। उन्होने मेरा या युद्धका त्याग नही किया, वल्कि हमारी सहायता करनेमे अधिक उत्साह दिखाने लगे और कौमने पीछे देख लिया कि हमने नई वस्तीके कानूनको सत्याग्रहमे गामिल न कर लिया होता तो हम भारी मुसीवतमे पड जाते ।

मेरे अनुभवने मुझे सिखाया है कि जिसे मै वृद्धिका नियम कहता हू वह हरएक गुद्ध युद्धपर घटित होता है। पर सत्याग्रहके विपयमे तो मै इस वस्तुको सिद्धातरूपमे मानता हू। जैसे गगानदी ज्यो-ज्यो आगे वढती है त्यो-त्यो अनेक नदिया आकर उसमे मिलती जाती है और मुहानेपर तो उसका पाट इतना चौडा हो जाता है कि दाये-वाये किसी ओर किनारा दिखाई नही देता और नावमे वैठे हुए यात्रीको विस्तारमे उसमे और समुद्रमे कोई फर्क नही दिखाई देता। उसी तरह सत्याग्रहकी लडाई ज्यो-ज्यो आगे वढती है त्यो-त्यो उससे उत्पन्न होनेवाले परिणाममे वृद्धि होती जाती है। मै मानता

हू कि सत्याग्रहका यह परिणाम अनिवार्य है। उसका कारण उसके मूल तत्वमे ही विद्यमान है। कारण कि सत्याग्रहमे कम-से-कम ही अधिक-से-अधिक है। कम-से-कममे कुछ घटाना तो हो ही नही सकता, इसलिए इससे पीछे हटा ही नही जा सकता और स्वाभाविक क्रिया वृद्धिकी ही हो सकती है। दूसरी लडाइया शुद्ध हो तो भी मागमे कमीकी गुजाइश शुरूसे ही रखी जाती है। इससे वृद्धिका नियम उनपर निरपवाद-रूपसे घटित हो सकता है। इस विषयमे मैने शका प्रकट की। पर जब कम-से-कम अधिक-से-अधिक ही हो तब वृद्धिका नियम कैसे घटित होता है, यह बात मुझे समझानी होगी। जैसे गगा वृद्धिकी खोजमे अपनी गति छोडती नही, वैसे ही सत्याग्रही भी अपनी तलवारकी धार-सरीखा रास्ता नही छोडता। पर जैसे गगाकी धारा ज्यो-ज्यो बढती जाती है त्यो-त्यो दूसरी नदिया अपने आप आकर उसमे मिलती जाती है, वही बात सत्याग्रही गगाकी भी है।

बस्तीका कानून सत्याग्रहके विषयमे शामिल कर लिया गया तो यह देखकर सत्याग्रहका सिद्धात न जाननेवाले हिदुस्तानियोने आग्रह किया कि ट्रासवालके भारतीय विरोधी सभी कानून उनमे ले लिये जाए। दूसरे कितने लोगोने कहा कि जबतक लडाई चल रही है, नेटाल, केप कालोनी, आरेज फ्री स्टेट इन सबको निमन्त्रित करके दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोके विरोधी हरएक कानूनके विरुद्ध सत्याग्रह छेड दिया जाय। इन दोनो बातोमे सिद्धात भग था। मैने साफ बता दिया कि जो स्थिति सत्याग्रह आरभ होनेके समय हमने नही ग्रहण की थी वह अब मौका देखकर ग्रहण कर ले तो यह ईमानदारीके खिलाफ होगा। हमारी शक्ति कितनी ही क्यो न हो, यह सत्याग्रह जिन मागोके लिए किया गया है उन मागोके पूरी हो जानेपर वह समाप्त होना ही चाहिए। मेरा

दृढ विश्वास है कि इस सिद्धांतपर हम दृढ न रहते तो जीतके वदले हमारी हार हुई होती। इतना ही नही, जो हमदर्दी हम पा सके वह भी गंवा वैठते। इसके विपरीत जव सत्याग्रह चल रहा हो उस वक्त प्रतिपक्षी खुद नई अडचने पैदा करता है तो वे अपने आप सत्याग्रहमे शामिल हो जाती है। सत्याग्रही जव अपनी दिशामे चला जा रहा हो उस वक्त जो चीजे उसके रास्तेमे आकर मिलती जाएं उनकी उपेक्षा वह अपने सत्याग्रहका त्याग किये विना कर ही नही सकता। और प्रतिपक्षी तो सत्याग्रही होता ही नही। सत्याग्रहके विरुद्ध सत्याग्रह करना असभव है। इसलिए न्यूनतम और अधिकतमका वधन उसको होता ही नही। वह कोई नई वात खडी करके सत्याग्रहीको डराना चाहे तो डरा सकता है, पर सत्याग्रही तो भयसे मुक्त हो चुका होता है। इसलिए प्रतिपक्षी नई आपत्तिया खडी करे तो उनके सामने भी वह अपना मन्त्रोच्चार करता है और यह विश्वास रखता है कि उसकी राहमे आनेवाली सभी वाधाओके सामने यह मन्त्रोच्चार अवश्य फलदायी होगा। इसीसे सत्याग्रह ज्यो-ज्यो लंवा होता है, यानी प्रतिपक्षी उसे ज्यो-ज्यो लवा करता है, त्यो-त्यो उसकी अपनी दृष्टिसे तो वह गाठकी पूजी ही गवाता है और सत्याग्रहीका अधिकाधिक लाभ होता है। इस नियमकी चरितार्थताके दूसरे दृष्टात हमे इस युद्धके इतिहासमे मिलेगे।

: ५ :

सोराबजी शापुरजी अडाजनिया

जव नई वस्तीका सवाल--इमिग्रेशन एक्ट भी लडाईके विपयोमे शामिल कर लिया गया तव सत्याग्रहियोके लिए इस अधिकारकी परीक्षा कर लेना भी जरूरी हो गया। कमेटीने

तय किया था कि चाहे जिस भारतीयके जरिये यह परीक्षा नही कराई जायगी । खयाल यह था कि ऐसे आदमीको ट्रांसवालमे दाखिल कराके जेल-महलमे बैठा दे जो नई बस्तीके कानूनकी उन दूसरी शर्तोको पूरा करता हो जिनसे हमारा कुछ भी विरोध नही है । इससे हमे यह सावित करना था कि सत्याग्रह मर्यादा-धर्म है । इस कानूनमे एक दफा इस आशयकी थी कि नये आनेवालेको यूरोपकी किसी एक भाषाका ज्ञान होना ही चाहिए । इसलिए कमेटीने अग्रेजी जाननेवाले ऐसे हिंदुस्तानीको दाखिल करानेकी वात सोची थी जो ट्रासवालमे पहले रह चुका हो । कितने ही हिंदुस्तानी नौजवानोने इस परीक्षाके लिए अपने आपको पेश किया । पर उनमेसे सोरावजी शापुरजी अडाजनियाका नाम वतौर कसौटीके स्वीकार किया गया ।

नामसे ही पाठक समझ लेगे कि सोरावजी पारसी थे । सारे दक्षिण अफ्रीकामे पारसियोकी सख्या सौ से ऊपर नही होगी । पारसियोके वारेमे जो मत मैने हिंदुस्तानमे प्रकट किया है, दक्षिण अफ्रीकामे भी मेरा वही मत था । सारी दुनियामे कुल मिलाकर एक लाखसे अधिक पारसी न होगे । इतनी छोटी-सी जाति अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षा कर रही है । अपने धर्मपर दृढतामे आरूढ है और दानशीलतामे दुनियाकी कोई भी कौम उसकी वरावरी नही कर सकती । इतनी ही वात इस जातिकी उत्तमताका प्रमाणपत्र है । उनमे भी सोरावजी तो काम पडने-पर रत्न निकले । जव वह लडाईमे शामिल हुए उस वक्त मैं उनको कुछ यो ही मामूली-सा जानता था । लडाईमे शामिल होनेके विषयमे उन्होने जो पत्र लिखे थे उन्होने मुझपर अच्छा असर डाला था । मै जैसे पारसियोके गुणोका पुजारी हू वैसे ही जातिरूपमे उनमे जो अनेक खामिया है उनसे भी अनजान नही था और न हू । इसलिए सच्ची परीक्षाका अवसर आनेपर

सोरावजी टिक सकेगे या नही, इस विषयमे मेरे मनमे शका थी। पर विपक्षी इसके विरुद्ध वात कहता हो तो अपने शक-शुवहेपर अमल न करना मेरा नियम था। इसलिए मैने तो कमेटीसे यही सिफारिश की कि सोरावजीने अपने पत्रोमे जो दृढ़ता दिखाई है उसको पक्की मान ले। और अतमे तो सोरावजी प्रथम श्रेणीके सत्याग्रही सिद्ध हुए। जिन सत्याग्रहियोने लवी-से-लवी कैदे भुगती उनमे वह भी थे। इतना ही नही, उन्होने इस युद्धका इतना गहरा ज्ञान प्राप्त कर लिया था कि वह जो कुछ कहे उस सवको ध्यानसे सुनना पडता। उनकी सलाहमे सदा दृढता, विवेक, उदारता, शाति आदिकी झलक रहती। राय कायम करनेमे वह जल्दवाजी न करते और जो कायम कर ली उसे वदलते भी नही। उनमे जितना पारसीपन था---और वह भरपूर था---उतना ही हिदुस्तानीपन भी था। सकुचित जाति-अभिमानकी तो उनमे कभी गध भी नही मिली। युद्ध समाप्त होनेके वाद डाक्टर मेहताने अच्छे सत्याग्रहियोमेसे किसीको विलायत भेजकर वैरिस्टर वनवानेके लिये छात्रवृत्ति दी थी। इसका चुनाव मुझीको करना था। दो-तीन योग्य भारतीय थे, पर सारी मित्रमडलीकी रायमे कोई दूसरा आदमी नही था जो विचारकी प्रौढता और समझदारीमे सोरावजीकी वरावरी कर सके। अत. वही चुने गये। ऐसे एक हिदुस्तानीको विलायत भेजनेमे उद्देश्य यह था कि वह वापस आकर मेरी जगह ले और कौमकी सेवा करे। कौमका आशीर्वाद और सम्मान लेकर सोरावजी विलायत गये और वैरिस्टर वने। गोखलेसे उनका सपर्क तो दक्षिण अफ्रीकामे ही हो गया था। विलायतमे वह अधिक निकटका हो गया। उनका मन सोरावजीने हर लिया। उन्होने सोरावजीसे यह आग्रह भी किया कि हिदुस्तान लौटने-पर भारत सेवक समिति (सरवेटस् आव इडिया सोसायटी) मे शामिल हो जाओ। विद्यार्थीवर्गमे सोरावजी अतिशय प्रिय

हो गये थे। वह हरएक दु ख-दर्दमे शरीक होते। विलायतके ठाट-बाट और विलासिताका उनके मनपर तनिक भी असर न हुआ। जब वह विलायत गये, उनकी उम्र ३० से ऊपर थी। उनका अग्रेजीका अभ्यास ऊचे दरजेका नही था। व्याकरण आदि भूलभाल गये थे, पर मनुष्यके अध्य-वसायके सामने ऐसी कठिनाइया टिक नही सकती। सोराबजी-ने शुद्ध विद्यार्थी-जीवन बिताया और परीक्षाओमे पास होते गये। मेरे जमानेकी बैरिस्टरीकी परीक्षा आजकी तुलनामे आसान थी। अब तो बैरिस्टर बननेवालेको तबसे बहुत अधिक पढना पडता है, पर सोराबजीने हार न मानी। विला-यतमे जब 'ऐम्बुलेस कोर' (युद्धमे सेवा-कार्य करनेवाला दस्ता) बना तो जो लोग इसमे अगुआ बने उनमे वह भी थे और अततक उसमे बने रहे। इस दस्तेको भी सत्याग्रह करना पडा था। सदस्योमेसे बहुतेरे गिर गये। जिनके पाव अचल रहे उनमे सोराबजी सबसे आगे थे। यहा यह भी बता दू कि इस दस्तेके सत्याग्रहमे भी हमे जय ही मिली थी।

विलायतसे बैरिस्टरी पास कर लेनेके बाद सोराबजी जोहान्सबर्ग लौटे। वहा उन्होने सेवा और वकालत दोनो साथ-साथ शुरू कर दी। दक्षिण अफ्रीकासे मुझे जो चिट्ठिया मिली उनमे सभी सोराबजीकी तारीफ करते थे—"वह पहले जैसे सीधे-सादे थे वैसे ही अब भी है। आडबर नामको नही। छोटे-बडे सबके साथ हिले-मिले रहते है।" पर ईश्वर जैसा दयालु दिखाई देता है वैसा ही निर्दय भी लगता है। सोराबजीको तीव्रक्षय (गैलपिग थाइसिस) हुआ और कुछ महीनेमे वह कौमका नया प्रेम सपादन करके और उसे रोती छोडकर चल बसे! इस तरह ईश्वरने थोडे ही समयके बीच कौमसे दो पुरुषरत्न छीन लिये। काछलिया और सोराबजी! चुनाव करना हो तो मै इन दोनोमेसे किसे प्रथम पद दे सकता हू?

मैं इनमे चुनाव कर ही नही सकता। दोनो अपने-अपने क्षेत्रमे बेजोड़ थे। जैसे काछलिया जितने शुद्ध मुसलमान थे उतने ही शुद्ध भारतीय थे, वैसे ही सोरावजी भी जितने सच्चे पारसी थे उतने ही सच्चे हिंदुस्तानी थे।

यही सोरावजी सरकारको पहलेसे नोटिस देकर आज-माइशके लिए ट्रासवालमे दाखिल हुए। सरकार इस कदमके लिए बिलकुल तैयार न थी। इससे सोरावजीके साथ क्या कार्रवाई की जाय इसका तुरत निश्चय न कर सकी। सोराव-जीने खुले तौरपर सरहद लाघी और ट्रांसवालमे दाखिल हुए। सरहदपर परवानोकी जाच करनेवाला अफसर उन्हे जानता था। सोरावजीने उससे कहा, "मै ट्रांसवालमे जान-बूझकर अपने अधिकारकी परीक्षाके लिए प्रवेश कर रहा हू। तुम्हे मेरी अग्रेजीकी परीक्षा लेनी हो तो लो और गिरफ्तार करना हो तो कर लो।" अधिकारीने जवाब दिया—"मुझे मालूम है कि आप अंग्रेजी जानते है, इसलिए यह परीक्षा मुझे लेनेकी जरूरत ही नही। आपको गिरफ्तार करनेका मुझे हुक्म नही। इसलिए आप खुशीसे जाए। जहा जायगे वहां सरकारको आपको गिरफ्तार करना होगा तो करेगी।"

इस प्रकार अनसोची रीतिसे सोरावजी जोहान्सबर्ग तक पहुंच गये। हम सबने उनका हर्षके साथ स्वागत किया। किसीको यह आशा नही थी कि सरकार ट्रासवालके सरहदी स्टेशन वोक्सरेस्टसे उनको एक कदम भी आगे न बढने देगी। अकसर ऐसा होता है कि जब हम अपना कदम सोच-समझ-कर और निर्भय होकर तुरत उठाते है तो सरकार उसका सामना करनेको तयार नही होती। हरएक सरकारका यह स्वभाव माना जा सकता है। सामान्य आदोलनोमे सरकारका कोई भी अधिकारी अपने महकमेको इतना अपना नही लेता कि हर मामलेमे पहलेसे विचार स्थिर और व्यवस्थित कर

रक्खे और तदनुसार तैयारी भी। फिर अधिकारीका एक ही काम नही होता, वल्कि अनेक काम होते है जिनमे उसका ध्यान वट जाता है। इसके सिवा अधिकारीको अधिकारका मद होता है जिससे वह वेफिक्र रहता है और मान लेता है कि कैसा ही आदोलन हो उसका उपाय कर लेना सत्ताधीश के वाए हाथका खेल है। इसके विपरीत आदोलन करनेवाला अपना ध्येय जानता हो, उसके साधनको जानता हो और अपनी योजनाके वारेमे उसका मन पक्का हो तो वह तो पूरी तरह तैयार होता है और उसे एक ही कामका विचार रात-दिन करना होता है। इसलिए अगर वह सही कदम पक्के तौरपर उठा सके तो वह सरकारसे सदा आगे ही रहता है। वहुतसे आदोलन जो विफल हो जाते है उसका कारण सरकारकी असामान्य शक्ति नही, वल्कि सचालकोके ये ऊपर वताये हुए गुणोका अभाव होता है।

साराश, सरकारकी गफलतके कारण या जान-वूझकर की हुई वैसी योजनाके कारण सोरावजी जोहान्सवर्गतक पहुच सके और उनके जैसे मामलेमे अधिकारीका क्या कर्तव्य है, इसकी कल्पना स्थानीय अधिकारीको न थी और न इस विषयमे वडे अफसरका आदेश मिला था। सोरावजीके इस तरह आनेसे कौमके उत्साहमे वहुत वृद्धि हुई। कुछ नौजवानोको तो ऐसा जान पडा कि सरकार हार गई और जल्दी ही समझौता कर लेगी। वैसा कुछ नही था, यह उन्होने तुरत ही देख लिया, वल्कि उन्होने यह भी देखा कि समझौता होनेके पहले शायद वहुतेरे युवकोको आत्मवलि देनी होगी।

सोरावजीने अपने जोहान्सवर्ग आनेकी सूचना वहाके पुलिस-सुपरिटेडेटको दी और उसके साथ यह भी लिखा कि नई वस्तीके कानूनके अनुसार मै अपने आपको ट्रासवालमे रहनेका हकदार मानता हू, इसलिए कि मुझे अग्रेजी भाषाका

सामान्य ज्ञान है और स्थानीय अधिकारी इसकी परीक्षा लेना चाहे तो देनेको तैयार हू । इस पत्रका उन्हे कोई जवाव न मिला था । कुछ दिन वाद उसका जवाव समनके रूपमे मिला ।

अदालतमे मुकदमा चला । १९०८ की ८ वी जुलाईको उसकी सुनवाई हुई । अदालतका कमरा भारतीय दर्शकोसे भर गया था । मुकदमा शुरू होनेके पहले अदालतके अहातेमे उपस्थित भारतीयोको इकट्ठा करके तात्कालिक सभा की गई । सोरावजीने उसमे जोशीला भापण दिया । उसमे यह प्रतिज्ञा की कि जवतक हमारी विजय न हो तवतक जितनी बार जेल जाना पडे उतनी बार जानेको तैयार रहूगा और चाहे जो सकट आये उसे सहन करूगा । यह अरसा इतना लवा था कि इस वीच मैने सोरावजीको अच्छी तरह पहचान लिया था और समझ गया था कि वह अवश्य सच्चे रत्न निकलेगे । मुकदमा पेश हुआ । मै वकीलकी हैसियतसे खडा हुआ । समनमे कई दोप थे । उन दोपोके कारण मैने सोरावजीके विरुद्ध निकाले हुए समनको रद कर देनेकी माग की । सरकारी वकीलने जवावमे दलील पेश की, पर अदालतने अगले दिन मेरी दलीलको मान कर समन रद कर दिया और सोरावजीको रिहा कर दिया । कौम खुशीसे पागल हो गई और कह सकते है कि उसके पागल हो जानेका कारण भी था । दूसरा समन निकाल कर फौरन ही सोरावजी पर पुन मुकदमा चलानेकी हिम्मत तो सरकार-को किस तरह हो सकती थी ? और हुआ भी यही । इसलिए सोरावजी सार्वजनिक कामोमे लग गये ।

पर यह छुटकारा सदाके लिए नही था । सोरावजीको तुरत चेतावनी मिली कि १० जुलाईको फिर अदालतमे हाजिर हो । उस दिन मजिस्ट्रेटने उन्हे सात दिनके अदर ट्रासवाल छोड देनेका हुक्म दिया । अदालतका हुक्म तामील हो जानेके वाद सोरावजीने पुलिस-सुपरिंटेडेट मि० वरनोनको सूचना दी कि

मेरा ट्रान्सवालसे चले जानेका इरादा नही है। इसपर २० जुलाईको वह फिर अदालतके सामने लाये गये और मजिस्ट्रेटकी आज्ञा न माननेके जुर्ममे उन्हे एक महीनेकी कडी कैदकी सजा दी गई।

पर स्थानीय हिंदुस्तानियोको सरकार गिरफ्तार ही नही करती थी। उसने देखा कि गिरफ्तारिया जितनी ज्यादा होगी हिंदुस्तानियोका जोश उतना ही बढता जायगा। फिर किसी मुकदमेमे किसी-न-किसी कानूनी बारीकीके कारण भारतीय अभियुक्त छूट जाता था तो इससे भी जोश बढता। सरकारको जो कानून बनाने थे वे सब पास कर चुकी थी। बहुतसे हिंदुस्तानियोने अपने परवाने जला जरूर डाले थे, पर उन्होने परवाने लेकर ट्रान्सवालमे रहनेका अपना हक तो साबित कर ही दिया था। अत उन्हे जेल भेजनेके लिए ही उनपर मुकदमा चलानेमे सरकारको कोई फायदा नही दिखाई दिया और उसने यह भी सोचा कि वह खामोश रहेगी तो आदोलन करनेवाले आदोलन-का कोई दरवाजा खुला न रहनेके कारण अपने आप शात हो जायगे। पर सरकारका यह हिसाब गलत था। कौमने उसकी चुप्पी तोडनेके लिए ऐसा नया कदम उठाया कि वह टूटकर ही रही और सोराबजी पर फिर मुकदमा चलाना पडा।

: ६ :

सेठ दाऊद मुहम्मद आदिका लड़ाईमें शामिल होना

कौमने जब देखा कि सरकार खुद कुछ न करके उसको थका देना चाहती है तब दूसरा कदम उठाना उसके लिए जरूरी हो गया। सत्याग्रहीमे जबतक कष्ट सहन करनेकी शक्ति हो

तबतक वह थकता ही नही। इसलिए कौम सरकारकी धारणाको गलत सावित कर देनेमे समर्थ थी।

नेटालमे अनेक ऐसे हिदुस्तानी वसते थे जिन्हे ट्रासवालमे वसनेका पुराना हक था। उन्हे व्यापारके लिए ट्रासवालमे दाखिल होनेकी आवश्यकता नही थी। पर कौम मानती थी कि उन्हे यहा आनेका हक है। फिर वे थोडी वहुत अग्रेजी तो जानते ही थे। इसके सिवा सोरावजी जितनी शिक्षा पाये हुए भारतीयोके प्रवेगसे तो सत्याग्रहके नियमका किसी तरह भग होता ही नही था। अत हमने दो तरहके हिदुस्तानियोको दाखिल करनेका निश्चय किया : एक तो वे जो पहले ट्रासवालमे रह चुके थे, दूसरे वे जिन्होने खास तौरसे अग्रेजी पढी हो, यानी जो गिक्षित कहे जाते हो।

इनमे सेठ दाऊद मुहम्मद और पारसी रुस्तमजी ये दो वडे व्यापारियोमेंसे थे और सुरेन्द्रराय मढे, प्रागजी खडूभाई देसाई, हरिलाल गाधी, रतनशी सोढा आदि शिक्षित जनोमेंसे थे।

सेठ दाऊद मुहम्मदका परिचय पाठकोको करा दू। ये नेटाल इडियन काग्रेसके अध्यक्ष थे और उन भारतीय व्यापारियोमेंसे थे जो सवसे पहले दक्षिण अफ्रीकामे पहुचे थे। वह सूरतके सुन्नी जमातके वोहरा थे। दक्षिण अफ्रीकामे मुझे ऐसे थोडे ही हिदु-स्तानी मिले जो चतुराईमे उनकी वरावरी कर सके। उनकी समझनेकी गक्ति वहुत अच्छी थी। अक्षरज्ञान थोडा ही था, पर अभ्याससे अग्रेजी और डच अच्छी वोल लेते थे। यूरोपियन व्यापारियोके साथ अपना काम मजेसे चला लेते थे। उनकी दानगीलता विख्यात थी। उनके यहा नित्य कोई ५० मेहमानो-का खाना तो होता ही था, कौमी चन्दोमे उनका नाम मुखियाओ-मे होता। उनके एक वेटा था जो अमूल्य रत्न था। वह चारित्र्य-मे वापसे वहुत वढा-चढा था। उसका हृदय स्फटिक मणिके समान था। इस वेटेके चारित्र्य-वेगको दाऊद सेठने कभी रोका

नही। यह कहना अतिशयोक्ति नही कि वह अपने पुत्रको पूजते थे। वह चाहते थे कि उनका एक भी दोप हुसेनमे न हो। उन्होने उसे विलायत भेजकर अच्छी शिक्षा दिलाई थी, पर सेठ दाऊद इस रत्नको भरी जवानीमे खो बैठे। क्षय रोगने हुसेनको पकडा और उसका प्राण हर लिया। यह घाव कभी भरा नही। हुसेनके साथ हिंदुस्तानी कौमकी वडी-वडी आशाए भी डूव गईं। हुसेनके लिए हिंदू-मुसलमान दाईं-वाईं आखे थे। उसका सत्य तेजस्वी था। आज दाऊद सेठ भी इस लोकमे नही है। काल कव किसीको छोडता है?

पारसी रुस्तमजीका परिचय मै करा चुका हू। शिक्षित भारतीयोमेसे अधिकाशको पाठक जानते है। यह प्रकरण मै विना कोई पुस्तकादि अपने सामने रखे लिख रहा हू। इस कारण कुछ नाम छूट गये होगे। वे भाई मुझे इसके लिए माफ करेगे। ये प्रकरण नाम अमर करनेके लिए नही लिखे जा रहे है, वल्कि सत्याग्रहका रहस्य समझाने और यह वतानेके लिए लिखे जा रहे है कि उसकी विजय कैसे हुई। उसमे कैसे-कैसे विघ्न आये और वे किस तरह दूर किये जा सके। जहा-जहा नामो और उन नामोको धारण करनेवालोकी चर्चा भी है वहा भी उद्देश्य यही है कि पाठक जान ले कि दक्षिण अफ्रीकामे अपढ कहलाने-वालोने कैसा पराक्रम किया। हिंदू, मुसलमान, पारसी, ईसाई आदि कैसे साथ मिल सके और कैसे व्यापारियो, शिक्षितवर्ग आदिने अपने कर्तव्यका पालन किया। जहा गुणीका परिचय दिया है वहा उसका नही, उसके गुणका स्तवन किया है।

इस प्रकार जव दाऊद सेठ अपनी सत्याग्रही सेना लेकर ट्रास-वालकी सरहदपर पहुचे तब सरकार उनका सामना करनेको तयार थी। वह इतने वडे दलको ट्रासवालमे प्रवेश करने देती तो उसकी हँसी होती, इसलिए उन्हे गिरफ्तार करनेसे ही छुट-कारा था। वे पकड लिये गये। मुकदमा चला। १८ अगस्त १९०८को

मजिस्ट्रेटने उन्हे सात दिनके अदर ट्रासवालकी सरहदसे बाहर हो जानेका हुक्म दिया । उन्होने आज्ञाका उल्लघन किया और २८ अगस्तको प्रिटोरियामे फिर गिरफ्तार किये गये और विना मुकदमा चलाये ही देशसे निकाल दिये गये। ३१ तारीखको वे फिर ट्रासवालकी सीमामे दाखिल हुए और अतमे ८ सितवरको वोक्सरस्टमे उन्हे ५० पौडके जुर्माने या तीन महीनेकी कडी कैदकी सजा सुनाई गई । कहनेकी आवश्यकता नही कि उन्होने खुशीसे जेल जाना पसद किया ।

कौमका जोश बढा। ट्रासवालके भारतीय नेटालसे उनकी मददको आये हुए अपने भाइयोको छुडा न सके तो जेलमे उनका साथ तो उन्हे देना ही चाहिए । इस विचारसे ट्रासवालके भारतीय भी जेलकी राह ढूढने लगे । उनकी गिरफ्तारीके कितने ही रास्ते थे । ट्रासवालमे बसनेवाला हिदुस्तानी परवाना न दिखाये तो उसे व्यापारका परवाना न मिलेगा और परवानेके विना व्यापार करे तो अपराधी माना जाता। नेटालसे ट्रासवालकी सरहदमे दाखिल होना हो तो भी परवाना दिखाना जरूरी था। न दिखानेवाला गिरफ्तार कर लिया जाता । परवाने तो जला डाले गये थे, इसलिए रास्ता साफ था । दोनो रास्ते पकडे गये । कुछ लोग बिना परवाना दिखाये फेरी करने लगे और कुछ ट्रासवालकी सरहदमे दाखिल होते समय परवाना न दिखाकर गिरफ्तार होने लगे ।

अव युद्धका रग जमा । सवकी परीक्षा होने लगी, नेटालसे और भारतीय आये । जोहान्सवर्गमे भी धर-पकड शुरू हुई । स्थिति यह हो गई कि जो चाहे वह गिरफ्नार हो सकता था । जेलखाने भरे जाने लगे । नेटालसे आये हुए आक्रमणकारियोको तीन-तीन महीनेकी सजा मिली, ट्रासवालके फेरीवालोको चार दिनसे लगाकर तीन महीनेतककी ।

जो लोग इस तरह गिरफ्तार हुए उनमे हमारे इमाम

साहव इमाम अब्दुलकादिर वावजीर भी थे। वह फेरी करके गिरफ्तार हुए थे। उनकी सजाकी शुरुआत चार दिनकी कडी कैदसे हुई। उनका शरीर इतना नाजुक था कि लोग उनके जेल आनेकी वात सुनकर हँसते थे। कुछ लोग आकर मुझसे कहते कि भाई, इमाम साहवको न लो तो अच्छा है। वह कौमको लज्जित करेंगे। मैंने इस चेतावनीको अनसुनी किया। इमाम साहवकी शक्तिकी नाप-तौल करनेवाला मैं कौन होता था? इमाम साहव कभी नगे पाव न चलते, शौकीन थे, मलायी स्त्रीसे व्याह किया था, घर सजा हुआ रखते और घोडे-गाडीके विना कही नही जाते थे। यह सव सच था, पर उनके मनको कौन जान सकता था? चार दिनकी सजा भुगत कर रिहा होनेके वाद इमाम साहव फिर जेल गये। वहा आदर्श कैदीके रूपमे रहे कही मशक्कत करके भोजन करते और जिसे नित्य नयी चीजे खानेकी आदत थी वह मकईके आटेकी लपसी खाकर खुदाका शुक्र वजा लाता। इन कष्टोसे उन्होने हिम्मत नही हारी, वल्कि सादगी अख्तियार की। कैदीकी हैसियतसे उन्होने पत्थर तोडे, झाड लगाई, कैदियोकी पातमे खडे रहे। अतमे फिनिक्समे पहुचकर पानी भरने और अक्षर जोडने (कपोज करने)का काम भी किया। फिनिक्स-आश्रममे रहनेवालेके लिए अक्षर जोडनेकी कला सीख लेना जरूरी था। इमाम साहवने इस कार्यको यथाशक्ति सीख लिया था। ये इमाम साहव इन दिनो हिंदुस्तानमे अपना भाग अर्पण कर रहे हैं।

पर ऐसे तो वहुतेरे इस जेलमे शुद्ध हो गये।

जोसफ रॉयपेन वैरिस्टर, कैम्ब्रिजके ग्रेजएट, नेटालमे गिरमिटिए मा-वापके घर जन्मे थे, पर साहव लोग वन गये थे। वह तो घरमे भी वूटके विना एक कदम भी नही चलते थे। इमाम साहवके लिए वजू करते समय पैर धोना जरूरी था। नमाज नगे

पाव करनी चाहिए थी। बेचारे रॉयपेनको तो इतना भी नही करना था। उन्होने बैरिस्टरीसे छुट्टी लेकर साग-तरकारीकी टोकरी बगलमे दबाई और फेरी करके गिरफ्तार हो गये। उन्होने भी जेल भुगती। रॉयपेनने मुझसे पूछा—"पर मुझे तीसरे दरजेमे सफर करना चाहिए ?" मैने जवाब दिया—"अगर आप पहले या दूसरे दरजेमे सफर करेगे तो मै किसको तीसरे दरजेमे बैठाऊगा ? जेलमे आपको बैरिस्टरके रूपमे कौन पहचानेगा ?" जोसफ रॉयपेनके लिए यह जवाब काफी था। वह भी जेलमे चले गये।

सोलह बरसके नौजवान तो कितने ही जेलमे पहुचे थे। मोहनलाल मानजी घेलानी तो चौदह ही बरसका था। जेलमे अधिकारियोने हमे सतानेमे कुछ उठा नही रखा। पाखाने साफ कराये। हिदुस्तानी कैदियोने उन्हें[1] हँसते-हँसते साफ किया। पत्थर तुडवाये और अल्ला या रामका नाम लेकर सत्याग्रहियोने उन्हे तोडा। तालाब खुदवाये, पथरीली जमीन खुदवाई। उनकी हथेलियोमे छाले पड गये, कोई-कोई असह्य कष्टसे मूर्छित भी हो गये, पर किसीने हिम्मत नही हारी।

कोई यह न समझे कि जेलमे आपसमे झगडे या ईर्ष्या-द्वेष नही होता था। ज्यादा जोरकी तकरार तो खानेको लेकर होती है, पर हम उससे भी उवर गये।

मै भी दूसरी वार गिरफ्तार हुआ। वोक्सरस्टके जेल-खानेमे एक वक्त हम लगभग ७५ हिदुस्तानी कैदी इकट्ठे हो गये थे। अपनी रसोई हमने अपने हाथमे ले ली। झगडेका वचाव मेरे ही हाथो हो सकता था, इससे मै ही रसोइया वना। मेरे साथी प्रेमके वग मेरे हाथकी वनी कच्ची-पक्की, विना गुड़-शक्करकी पतली लपसी पी लेते थे।

सरकारने सोचा कि मुझे और कैदियोसे अलग कर दे

तो मै भी जरा आच खा जाऊ और दूसरे कैदी भी ढीले हो जाए, पर इसका उसे कोई बढिया मौका नही मिला।

मुझे प्रिटोरियाकी जेलमे ले गये। यहा मै तनहाई-वाली कोठरीमे रखा गया, जिसमे केवल खतरनाक कैदी रखे जाते है। सिर्फ दो बार कसरत करानेके लिए बाहर निकाला जाता। वोक्सरस्टमे हमे घी दिया जाता था, यहा वह भी नदारद। इस जेलके गौण कष्टोके वर्णनमे मै नही उलझना चाहता। जिसको उसकी जिज्ञासा हो वह 'दक्षिण अफ्रीकाके जेलके मेरे अनुभव' पुस्तक पढ ले।

इतनेपर भी हिदुस्तानियोने हार नही मानी। सरकार सोच-विचारमे पडी। जेलमे कितने हिदुस्तानियोको भरे? इससे उलटा खर्च बढता था। अब वह क्या करे?

: ७ :

देशनिकाला

खूनी कानूनमे तीन तरहकी सजाए रखी गई थी जुर्माना, कैद और देशनिकाला। अदालतको तीनो सजाए एक साथ देनेका अधिकार था और यह अधिकार छोटे-छोटे मजिस्ट्रेटो-को भी दे दिया गया था। पहले तो देशनिकालेके मानी थे अपराधीको ट्रासवालकी हदसे बाहर नेटाल, फ्री स्टेट या डेलागोआ बे (पर्तगाली पूर्वी अफ्रीका) की हदमे ले जाकर छोड देना। उदाहरणार्थ नेटालकी तरफसे आये हुए भारतीयोको वोक्सरस्ट स्टेशनकी हदसे बाहर ले जाकर छोड देते थे। इस तरहके देशनिकालेमे थोडी-सी तकलीफके सिवा और कोई नुकसान न था। यह दड तो केवल निकम्मा था। हिदु-स्तानियोमे इससे उल्टा और ज्यादा जोश आता था।

अत स्थानीय सरकारको हिदुस्तानियोको हैरान करनेकी नई तरकीब सोचनी पडी। जेलोमे जगह रह नही गई थी। सरकारने सोचा कि हिदुस्तानियोको अगर हिदुस्तानतक पहुचा सके तो वे जरूर डरकर हमारी शरण आयगे। इसमे कुछ सचाई जरूर थी। इस प्रकार एक बडे जत्थेको सरकारने हिदुस्तान भेजा। इन निर्वासितोको बहुत कष्ट सहने पडे। खाने-पीनेको भी जो सरकार दे वही मिलता, यानी भारी कप्ट था। सब डेकमे ही भेजे गए, फिर इस तरह निर्वासित होनेवालोके पास अपनी जमीन होती, दूसरी मिल्कियत होती। अपना धधा-रोजगार होता, अपने आश्रित बाल-बच्चे होते, कुछके सिरपर कर्ज भी होता। शक्ति होते यह सब गवाने, दिवालिया बननेको तैयार होनेवाले लोग अधिक नही हो सकते थे।

यह सब होते हुए भी बहुतसे भारतीय अपने निश्चयपर अटल रहे। बहुतेरे ढीले भी पड गये, पर उन्होने इतना ही किया कि अपने आपको जान-बूझकर गिरफ्तार नही कराया। उनमेसे अधिकाशने इतनी कमजोरी नही दिखाई कि जलाए हुए परवानोको फिरसे निकलवा ले, पर कुछने डरकर फिरसे परवाने ले लिए।

फिर भी जो लोग दृढ रहे उनकी सख्या नगण्य नही थी। उनकी बहादुरीकी हद न थी। मेरा विश्वास है कि उनमे कितने ही ऐसे थे जो हँसते-हँसते फासीके तख्तेपर चढ जाते। माल-जायदादकी चिता तो उन्होने छोड ही दी थी, पर जो हिदुस्तान भेज दिये गये उनमे बहुतेरे गरीब और सीधे-सादे आदमी थे। वे केवल विश्वासके बलपर ही लडाईमे शामिल हुए थे। उनपर इतना जुल्म होना असह्य लगा। उनकी मदद भी कैसे की जाय, यह समझना कठिन था। पैसा तो अपने पास थोड़ा ही था। ऐसी लडाईमे पैसेकी मदद देने

जाय तो लडाई ही हार जाय । उसमे लालची आदमी न घुस आए, इस डरसे पैसेका लालच एक भी आदमीको नही दिया जाता था । हा, सहानुभूतिकी सहायता देना हमारा धर्म था ।

अनुभवसे मैने देखा है कि सहानुभूति, मीठी निगाह और मीठे बोल जो काम कर सकते है वह पैसेसे नही हो सकता । पैसेका लोभी भी अगर उसको हमदर्दी न मिले तो अतमे वह उसे त्याग देता है । इसके विपरीत जो प्रेमसे वश हुआ है वह अनेक सकट सह लेनेके लिए तैयार रहता है ।

अत हमने निश्चय किया कि इन निर्वासित भाइयोके लिए हमदर्दी जो कुछ कर सकती है वह किया जाय । उन्हे आश्वासन दिया कि हिदुस्तानमे आप लोगोके लिए यथोचित प्रबध किया जायगा । पाठकोको जान लेना चाहिए कि इन लोगोमेसे बहुतेरे तो गिरमिट-मुक्त थे । हिदुस्तानमे उनका कोई सगा-सबधी न मिलता । कुछ तो दक्षिण अफ्रीकामे ही जन्मे भी थे । सबके लिए हिदुस्तान परदेश-सा तो हो ही गया था । ऐसे निराधार जनोको समुद्रके किनारे उतारकर भटकनेको छोड देना तो क्रूरता ही मानी जायगी । इसलिए उन्हे इतमीनान दिलाया गया कि हिदुस्तानमे उनके लिए सब आवश्यक प्रबध कर दिया जायगा ।

यह सब करते हुए भी जबतक उनके साथ कोई मददगार न हो तबतक उनको शाति नही मिल सकती थी । देशनिकाला पानेवालोका यह पहला ही जत्था था । स्टीमर छूटनेके कुछ ही घटे बाकी रह गये थे । चुनावके लिए वक्त न था । साथियोमेसे भाई पी० के० नायडूपर मेरी नजर गई । मैने पूछा—
"इन गरीब भाइयोको पहुचाने हिदुस्तान जा सकते हो ?"

"क्यो नही ?"

"पर स्टीमर तो छूटने ही वाला है ।"

"छूटने दीजिए।"

"पर तुम्हारे कपडे-लत्तेका क्या होगा ? खानेका क्या होगा ?"

"कपडे जो पहने हू वही काफी होगे। खाना स्टीमरसे मिल जायगा।"

मेरे हर्ष और आश्चर्यकी सीमा न रही। यह बातचीत पारसी रुस्तमजीके मकानपर हुई थी। वही उनके लिए कुछ कपडे-कवल आदि माग-मूगकर उन्हे रवाना किया।

"देखना, रास्तेमे इन भाइयोकी पूरी सम्हाल रखना। उन्हे सुलाकर सोना। मै मद्रासमे श्रीनटेसन्को तार दे रहा हूं। वह जो कहे सो करना।"

"मै अपने आपको सच्चा सिपाही साबित करनेकी कोशिश करूगा।" यह कहकर नायडू रवाना हो गए। मैने सोच लिया कि जहा ऐसे वीर पुरुष हो वहा हार हो ही नही सकती। भाई नायडूका जन्म दक्षिण अफ्रीकामे ही हुआ था। हिदुस्तानके उन्हे कभी दर्शन ही नही हुए थे। मैने श्रीनटेसन्के नाम सिफारिशी चिट्ठी दी थी। उन्हे तार भी दे दिया।

यह कहना अत्युक्ति न होगा कि हिदुस्तानमे इस वक्त प्रवासी भारतीयोके कष्टका अध्ययन करनेवाले, उनकी सहायता करनेवाले और उनके बारेमे नियमित तथा ज्ञानपूर्वक लिखनेवाले अकेले श्रीनटेसन् ही थे। उनके साथ मेरा पत्रव्यवहार नियमित रूपसे हुआ करता था। ये निर्वासित भाई जब मद्रास पहुचे तो श्रीनटेसन्ने उनकी पूरी मदद की। भाई नायडूके जैसे समझदार आदमीके साथ रहनेसे उन्हे भी समुचित सहायता मिली। उन्होने नगरवासियोसे चदा किया और निर्वासितोको यह मालूम नहो होने दिया कि हम देशनिकालेका दड पाकर यहा आये है।

ट्रासवाल सरकारका यह काम जितना क्रूरता-भरा था

उतना ही गैरकानूनी भी था। वह खुद भी इसको जानती थी। आमतौरसे लोगोको इस बातकी जानकारी नही होती कि सरकारे अकसर जान-बूझकर अपने कानून तोडा करती है। कठिनाईमे पडनेपर नया कानून बनानेका समय रहता नही, इसलिए कानूनको तोडकर मनमानी कर लेती है और पीछे या तो नये कानून बना लेती है या ऐसी स्थिति पैदा करती है कि जिससे जनता इस बातको भूल जाय कि सरकारने कानून तोडा है।

सरकारके इस गैरकानूनी कामके खिलाफ हिंदुस्तानियोने जबर्दस्त आदोलन चलाया। हिंदुस्तानमे भी शोर मचाया और ट्रासवाल सरकारके लिए इस तरह गरीब हिंदुस्तानियोको देशनिकाला देना कठिन हो गया। हिंदुस्तानियोको जो कानूनी कार्रवाइया करनी चाहिए थी वे सब उन्होने की। अपीले की और उनमे भी उनकी जीत हुई। अतमे निर्वासितोको ठेठ हिंदुस्तान भेजनेकी प्रथा बद हुई।

पर इसका असर सत्याग्रही सेनापर पडे बिना न रहा। अब उनमे सच्चे योद्धा ही रह गये। 'सरकार कही पकडकर हिंदुस्तान न भेज दे' इस भयका त्याग सब नहीं कर सके।

कौमका उत्साह भग करनेके लिए सरकारने यही एक काम नही किया। पिछले प्रकरणमे मै बता चुका हू कि सत्याग्रही कैदियोको दुःख देनेमे उसने जरा भी कसर नही रखी। उनसे पत्थर तुडवाने तकके काम कराये जाते। इतनेसे भी आगे सरकार बढ गई। पहले सभी कैदी साथ रखे जाते थे। अब उन्हे अलग-अलग रखनेकी नीति ग्रहण की गई और हर जेलमे उन्हे खूब तकलीफ दी गई। ट्रासवालका जाडा बहुत सख्त होता है। ठड इतनी अधिक होती है कि सवेरे काम करते हुए हाथ अकड जाते है। इससे कैदियोके लिए जाडेके दिन बहुत कठिन हो गये। ऐसी दशामे कुछ कैदी एक छोटीसी

जेलमे रखे गये जहा कोई उनसे मिलने भी नही जा सकता। इस जत्थेमे स्वामी नागप्पा नामका एक १८ वरसका नौजवान सत्याग्रही था। वह जेलके नियमोंका पालन करता और जो काम उसे सौपा जाता पूरा करता। सबेरे, पौ फटते ही, उसे सडकपर मिट्टी कूटनेके लिए ले जाते थे। इससे उसे फेफडेके गोथ (डवल निमोनिया) का कठिन रोग हो गया और अतमे ७ जुलाई १९०९ को उसने अपने प्रिय प्राणोकी बलि दे दी। नागप्पाके साथियोका कहना है कि अतिम क्षणतक वह लडाई-की ही बात सोचता, करता रहा। जेल जानेका उसे कभी पछतावा न हुआ। देशकी खातिर मिली हुई मौतको उसने इस तरह गले लगाया जैसे कोई मित्रसे मिलता है। हमारे पैमानेसे नापा जाय तो नागप्पाको निरक्षर कहना होगा। अग्रेजी, जुलू आदि भापाए वह अभ्याससे वोल लेता था। अग्रेजी टूटी-फूटी गायद लिख भी लेता हो, पर उसे विद्वानोकी पंक्तिमें तो नही ही विठा सकते थे। फिर भी नागप्पाके धीरज, उसकी शक्ति, उसकी देशभक्ति, आमरणान्त वनी रहनेवाली उसकी दृढताका विचार करे तो क्या उसके विषयमें और कुछ चाहने लायक रह जायगा? वडे विद्वानोके न मिलनेपर भी ट्रासवालकी लडाई चल सकी, पर नागप्पा-जैसे सिपाही न मिले होते तो क्या वह चल सकती थी?

जैसे नागप्पाकी मृत्यु जेलके कष्टोसे हुई, वैसे ही नारा-यण स्वामीकी देशनिकालेसे हुई (१६ अक्तूवर १९१०)। देशनिकालेकी तकलीफे उसकी मौत सावित हुई। पर इन घटनाओसे कौमने हिम्मत न हारी। हाँ, कमजोर दिलवाले मैदानसे खिसक गये। पर वे भी अपनी शक्तिभर कुर्वानी तो कर ही चुके थे। कमजोर जानकर हमे उनकी अवगणना नही करनी चाहिए। हममे यह रिवाज हो गया है कि आगे वढ जानेवाले पीछे छूटनेवालोका तिरस्कार करते और अपनेको

बड़ा वीर मानते है। हकीकत अकसर इसकी उलटी होती है। जिसकी शक्ति पचास रुपये देनेकी हो वह पच्चीस देकर बैठ जाय और पाच देनेकी शक्ति रखनेवाला पूरे पाच हाजिर कर दे तो हम यही मानेगे कि पाच देनेवालेने अधिक दिया। फिर भी पच्चीस देनेवाला पाच देनेवालेके सामने अकसर इतराता है। पर हम जानते है कि उसके इतरानेका कोई भी कारण नही। वैसे ही अपनी निर्बलताके कारण आगे न जा सकनेवाला अगर अपनी सारी शक्ति खर्च कर चुका हो और शक्ति चुरा रखनेवाला उस नाप-तौलमे उससे अधिक शक्ति लगा रहा हो तो भी पहला उससे अधिक योग्य है। इसलिए जो लोग युद्धके अधिक कठोर होनेपर बैठे रहे उन्होने भी देशकी सेवा तो की ही। अब वह वक्त आया जब अधिक सहन-शक्ति और अधिक हिम्मतकी आवश्यकता थी। इसमे भी ट्रासवालके भारतीय पीछे न रहे। युद्ध जारी रखनेके लिए जितनेकी जरूरत थी उतने तो रहे ही।

इस तरह हिंदुस्तानियोकी दिन-दिन अधिक कठिन परीक्षा होने लगी। ज्यो-ज्यो वे अधिक बल प्रकट करते त्यो-त्यों सरकार भी और ज्यादा ताकत काममे लाती। खतरनाक कैदियोके लिए या जिन्हे खास तौरसे सीधा करना होता है उनके लिए हर देशमे कुछ खास कैदखाने रखे जाते है। ट्रासवालमे भी ऐसा ही था। ऐसे एक जेलखानेका नाम 'डायकलुफ' था। वहाका दारोगा भी सख्त, वहाकी मशक्कत भी सख्त। फिर भी उसको भी पूरा कर देनेवाले कैदी मिल गये। वे मशक्कत करनेको तैयार थे, पर अपमान सहनेको तैयार नहीं थे। दारोगाने उनका अपमान किया, इसलिए उन्होने उपवास आरभ किया। शर्त यह थी—"जबतक तुम इस दारोगाको नही हटाते या हमारी जेल नही बदलते तबतक हम अन्न ग्रहण नही करेगे।" यह उपवास शुद्ध था। उपवास

करनेवाले ऐसे आदमी नही थे जो छिपे तौरपर कुछ खा-पी लेते हो। पाठकोको जान लेना चाहिए कि ऐसे मामलेमे यहा हिंदुस्तानमे जो आदोलन हो सकता है ट्रासवालमे उसके लिए अधिक अवकाश नही था। वहाके जेल-नियम भी अधिक कडे थे। ऐसे समयमे भी कैदियोको देखने जानेका वहा रिवाज नही था। सत्याग्रही जब जेलमे पहुच गया तब आमतौरसे उसे अपनी फिक्र खुद करनी पडती। यह लडाई गरीबोकी थी और गरीबोके तरीकेसे चलाई जा रही थी। अत ऐसी प्रतिज्ञा-की जोखिम बहुत बडी थी, फिर भी ये सत्याग्रही दृढ रहे। उस वक्तका उनका कार्य आजकी तुलनामे अधिक स्तुत्य गिना जायगा, क्योकि उस समय अनशनकी आदत लोगोको नही पडी थी। पर वे सत्याग्रही अडिग रहे और उनकी जीत हुई। सात दिन के उपवासके बाद उन्हे दूसरी जेलमे भेजनेका हुक्म आ गया।

: ८ :

फिर शिष्ट-मंडल

इस प्रकार सत्याग्रहियोको जेलमे ठूसने और देशनिकाला देनेका चक्र चल रहा था। इसमे ज्वारभाटा आता रहता। दोनो पक्ष कुछ ढीले भी हो रहे थे। सरकारने देखा कि जेलोको भरने-से पक्के सत्याग्रही हारनेवाले नही। देशनिकालेसे उसकी बदनामी होती थी। मामले अदालतमे पहुचते तो उनमे उसकी हार भी होती थी। हिंदुस्तानी भी जोरदार मुकाबले-के लिए तैयार नही थे। न इतने सत्याग्रही अब रह ही गये थे। कुछ थक गये थे, कुछने बिलकुल हिम्मत हार दी थी और अपने निश्चयपर अटल रहनेवालोको मूर्ख समझते थे।

पर ये मूर्ख अपने आपको बुद्धिमान मानकर भगवान् और अपनी लडाई तथा उसके साधनोकी सचाईपर पूरा भरोसा रखे हुए बैठे थे। वे मानते थे कि अतमे तो सत्यकी ही जय होती है।

दक्षिण अफ्रीकाकी राजनीति तो एक क्षणके लिए भी स्थिर नही होती थी। बोअर और अग्रेज दोनो चाहते थे कि दक्षिण अफ्रीकाके सब उपनिवेशोको इकट्ठा करके और अधिक स्वतत्रता प्राप्त करे। जनरल हर्टजोग चाहते थे कि ब्रिटेनसे बिलकुल नाता टूट जाय। दूसरे लोग उससे नामका सबध बनाए रखना पसद करते थे। अग्रेज सबधका पूर्ण विच्छेद तो सहन न कर सकते थे। जो कुछ मिलना था वह ब्रिटिश पार्लमेटके जरिये ही मिल सकता था, इसलिए बोअरो और अग्रेजोने यह तै किया कि दक्षिण अफ्रीकाकी ओरसे एक शिष्ट-मडल विलायत जाय और उसका मामला ब्रिटिश मत्रि-मडलके सामने रखे।

भारतीयोने देखा कि चारो उपनिवेश एक हो गये, उनका 'यूनियन' (सघ) बन गया तो हमारी जैसी दशा है उससे भी बुरी हो जायगी। सभी उपनिवेश सदा हिदुस्तानियोको अधिक-से-अधिक दबाये रखना चाहते थे। यह तो स्पष्ट ही था कि ये सब भारतके द्वेषी आपसमे और ज्यादा मिल गये तो हिदुस्तानी और ज्यादा दबाये जायगे। गो हिदुस्तानियोकी आवाज नक्कारखानेमे तूतीकी आवाज-जैसी ही थी, फिर भी हमे एक भी कोशिशसे बाज न रहना चाहिए, यह सोचकर भारतीयोका एक शिष्ट-मडल फिर विलायत भेजनेका निश्चय हुआ। इस बार पोरबदरके मेमन सेठ हाजी हबीब शिष्ट-मडल मे मेरे साथी चुने गये। इनका ट्रासवालका कारबार बहुत पुराने जमानेसे था। अनुभव विस्तृत था। अग्रेजी पढी नही थी, फिर भी अग्रेजी, डच, जूलू आदि भाषाए आसानीसे समझ लेते थे। इनकी सहानुभूति सत्याग्रहियो की ओर थी,

पर पूरे सत्याग्रही नही कहे जा सकते थे। हम दोनो केपटाउन से जिस जहाज (केनिलवर्थ कासिल) पर रवाना हुए। उसपर दक्षिण अफ्रीकाके मशहूर बुजुर्ग मेरीमेन भी थे। वह यूनियन बनवानेके लिए जा रहे थे। जनरल स्मट्स आदि तो पहलेसे पहुचे हुए थे। नेटालकी तरफसे भी एक अलग भारतीय शिष्ट-मडल इस वक्त विलायत गया था। यह सत्याग्रहके सिलसिलेमे नही, वल्कि नेटालमे हिंदुस्तानियोको जो विशेष कष्ट और कठिनाइया थी उनकी बात कहने गया था।

इस वक्त लार्ड क्रू उपनिवेश मत्री थे और लार्ड मॉरले भारत मत्री। खूब बातचीत हुई। हम बहुतोसे मिले। जितने पत्रो-के सपादको और साधारण या उमरावोकी सभाके सदस्योसे हम मिल सकते थे उनमेसे एकसे भी मिले बिना नही रहे। लार्ड एम्प्टहिलके बारेमे कह सकता हू कि उन्होने हमारी बेहद मदद की। वह मि० मेरीमेन, जनरल बोथा आदिसे मिला करते थे और अतमे जनरल बोथाका एक सदेसा भी लाये। उन्होने कहा—"जनरल बोथा आपकी भावनाको समझते है। आपकी छोटी मागे मजूर कर लेनेको तैयार है, पर एशियाटिक कानून रद करने और दक्षिण अफ्रीकामे नये आदमियोके आनेके सबधके कानूनमे अदल-बदल करनेको तैयार नही है। आप चाहते है कि कानूनमे जो काले-गोरे-का भेद किया गया है वह दूर कर दिया जाय। उनको इससे इन्कार है। भेद रखना उनके लिए सिद्धातरूप है और शायद वह सोचते है कि मै इस भेदको दूर कर भी दू तो दक्षिण अफ्रीकाके गोरे इस बातको कभी सहन नही करेगे। जनरल स्मट्सकी राय भी जनरल बोथाकी जैसी ही है। दोनो कहते है कि यह हमारा अतिम निर्णय और अतिम प्रस्ताव है। आप इससे अधिक मागेगे तो आप दुखी होगे और आपकी कौम भी दुखी होगी। अत आप जो निर्णय करे सोच-समझकर करे।

जनरल वोथाने मुझसे कहा है कि आपसे यह कह दू और आपकी जिम्मेदारीका खयाल आपको करा दू ।"

यह सदेसा सुनानेके वाद लार्ड एम्प्टहिलने कहा—"देखिये, आपकी सारी व्यावहारिक मागे तो जनरल वोथा मजूर कर ही रहे है और इस दुनियामे हमे कही लेना और कही देना तो पडता ही है । हम जो चाहते है वह सव तो हमे मिल नही सकता । इसलिए आपको मेरी अपनी सलाह यही है कि आप इस प्रस्ताव-को स्वीकार कर ले । आपको सिद्धातके लिए लडना हो तो आगे चलकर लड सकते है । आप दोनो इस वातपर विचार कर ले और फिर जो मुनासिव हो वह जवाव दे ।"

यह सुनकर मैने सेठ हाजी हवीवकी ओर देखा । उन्होने कहा—"मेरी तरफसे कहिये कि मै समझौता-पक्षकी ओरसे कहता हू कि मै जनरल वोथाका प्रस्ताव स्वीकार करता हू । वह इतना दे देगे तो तत्काल हम सतोष कर लेगे और सिद्धात-के लिए पीछे लड लेगे । अव कौमका और वरवाद होना मुझे पसद नही । जिस पक्षकी ओरसे मै वोल रहा हू उसकी सख्या अधिक है और उसके पास पैसा भी अधिक है ।" मैने इन वाक्योके अक्षर-अक्षरका उलथा कर दिया और फिर अपने सत्याग्रही पक्षकी ओरसे कहा—"आपने जो कष्ट किया उसके लिए हम दोनो आपके अहसानमद है । मेरे साथीने जो वात कही है वह ठीक है । वह उस पक्षकी ओरसे वोले है जो सख्या और पैसा दोनोमे अधिक वलवान है । जिनकी ओरसे मै वोल रहा हू वे पैसेमे उनसे गरीव और सख्यामे थोडे है । पर वे सिरपर कफन वाधे हुए है । उनकी लडाई व्यवहार और सिद्धात दोनोके खातिर है । अगर दोमेसे एकको छोडना ही पडे तो वे व्यवहारको जाने देगे और सिद्धातके लिए लडेगे । जनरल वोथाकी शक्तिका हमे अदाजा है, पर अपनी प्रतिज्ञाको हम उससे ज्यादा वजनदार मानते है, इसलिए उसका पालन

करनेमे हम मर-मिटनेको तयार है। हम धीरज रखेगे। हमारा विश्वास है कि हम अपने निश्चयपर अटल रहे तो जिस ईश्वरके नामपर हमने प्रतिज्ञा की है वह उसे पूरी करेगा।

"आपकी स्थिति मै पूरी तरह समझता हूं। आपने हमारे लिए बहुत किया है। अब आप हम मुट्ठीभर सत्याग्रहियोका और साथ न दे सके तो हमे उससे भ्रम न होगा और इससे हम आपके उपकारोको भूलेगे नही। हमे आशा है कि आप भी हमे आपकी सलाह कबूल न कर सकनेके लिए माफ कर देगे। जनरल बोथाको हम दोनोकी बाते मुखसे सुनाइएगा और कहिएगा कि हम जो थोडेसे सत्याग्रही है वे अपनी प्रतिज्ञाका अवश्य पालन करनेवाले और यह आशा रखनेवाले है कि हमारी दुःख-सहनकी शक्ति अतमे उनके हृदयको भेदेगी और वे एशियाटिक कानूनको रद्द कर देगे।"

लार्ड एम्प्टहिलने उत्तर दिया, "आप यह न समझिएगा कि मै आपको छोड दूगा। मुझे भी अपनी भलमनसीकी रक्षा तो करनी ही है। अंग्रेज जिस कामको एक बार हाथमे लेता है उसको यकायक छोडता नही। आपकी लडाई न्यायसगत है। आप शुद्ध साधनोसे लडते है। मै आपको कैसे छोड सकता हू ? पर मेरी स्थिति आप समझ सकते है। कष्ट तो आपको ही सहने होगे। इसलिए समझौता हो सकता हो तो उसे स्वीकार करनेकी सलाह देना मेरा धर्म है। पर आप जिन्हे कष्ट सहन करना है, अपनी टेकके लिए चाहे जितना कष्ट सहनेको तैयार है तो मै आपको कैसे रोक सकता हू ? मै तो आपको बधाई ही दूगा। अत आपकी कमेटीका अध्यक्ष तो बना ही रहूगा और मुझसे जो मदद बन पडेगी वह भी जरूर करता रहूगा; पर आपको इतना ध्यानमे रखना होगा कि मै उमराव सभाका एक छोटा सदस्य समझा

जाता हू। मेरा वजन ज्यादा नही है। फिर भी जो कुछ है वह आपके लिए काम आता ही रहेगा, इस विपयमे आप निश्शक रहे।"

ये प्रोत्साहनके वचन सुनकर हम दोनोको प्रसन्नता हुई। इस प्रसगकी एक मधुर वस्तुकी ओर शायद पाठकोने ध्यान न दिया हो। सेठ हाजी हवीव और मुझमे, जैसा कि ऊपर वता चुका हू, मतभेद था, फिर भी हममे परस्पर इतना प्रेम और विश्वास था कि सेठ हाजी हवीवको अपना विरोधी वक्तव्य मेरे ही जरिये कहलानेमे हिचक न हुई। वह इतना विश्वास रख सकते थे कि उनका प्रश्न मै लार्ड एम्प्टहिलके सामने ठीक तौरसे उपस्थित कर दूगा।

यहा पाठकोसे एक अप्रस्तुत वात भी कह दू। विलायतमे रहनेके दिनोमे वहुतसे भारतीय अराजकतावादियोके साथ मेरी वातचीत हुई। उन सवकी दलीलोका खडन करके और दक्षिण अफ्रीकाके वैसे विचारवाले लोगोका समाधान करनेके प्रयत्नसे 'हिदस्वराज' की उत्पत्ति हुई। उसके मुख्य तत्त्वोकी मैने लार्ड एम्प्टहिलके साथ भी चर्चा की थी। उसमे उद्देश्य यही था कि वह जरा भी यह न सोच सके कि मैने अपने विचारको दवाकर उनके नाम और उनकी सहायताका दक्षिण अफ्रीकाके कामके लिए दुरुपयोग किया। उनके साथ हुई मेरी वहस और वातचीत मुझे सदा याद रही है। उनके घरमे वीमारी होते हुए भी वह मुझसे मिले थे और यद्यपि 'हिद-स्वराज'मे प्रकट किये हुए मेरे विचारोसे वह सहमत नही हुए, फिर भी दक्षिण अफ्रीकाकी लडाईमे उन्होने अपना हिस्सा आखिरतक पूरा अदा किया और हमारा मधुर सवध अततक वना रहा।

: ६ :

टाल्स्टाय फार्म—१

इस वार विलायतसे जो शिष्टमडल लौटा वह अच्छी खवर नही लाया। लोग लार्ड एम्प्टहिलके साथ हुई बातचीतका नतीजा क्या निकालेगे इसकी चिता मुझे अधिक नही थी। मेरे साथ अततक कौन खडा होगा यह मै जानता था। सत्याग्रहके विषयमे मेरे विचार अब अधिक परिपक्व हो गये थे। उसकी व्यापकता और उसकी अलौकिकताको अब मै अधिक समझ सका था। इसलिए मै शात था। 'हिंद-स्वराज' को मैने विलायतसे लौटते हुए जहाजपर ही लिख डाला। उसका उद्देश्य केवल सत्याग्रहकी भव्यता दिखाना था। यह पुस्तक मेरी श्रद्धाका मानदड है। इससे लडनेवालोकी सख्याका मेरे सामने सवाल ही नही था।

पर मुझे पैसेकी चिता रहती थी। लबे अरसेतक लडाई चलानी हो और पासमे पैसा न हो, यह दु ख भारी हो गया। पैसेके विना लडाई चलाई जा सकती ह, पैसा अकसर सत्यकी लडाईको दूषित कर देता है; प्रभु सत्याग्रहीको, मुमुक्षुको, आवश्यकतासे अधिक साधन कभी देता ही नही, इस बातको जितना स्पष्ट आज समझता हू उतना उस वक्त नही समझता था। पर मै आस्तिक हू। प्रभुने उस वक्त भी मेरा साथ दिया। मेरा सकट काटा। एक ओर मुझे दक्षिण अफ्रीकाके तटपर उतरते ही कौमको कामकी विफलताका समाचार देना था तो दूसरी ओर प्रभुने मुझे पैसोके कष्टसे मुक्त कर दिया। केपटाउनमे उतरते ही मुझे विलायतसे तार मिला कि सर रतनजी जमशेदजी ताताने सत्याग्रह कोषमे २५ हजार रुपया दिया है। इतना रुपया उस वक्त हमारे लिए काफी था। हमारा काम चल निकला।

पर इस धनसे या बडी-से-वडी धनराशिसे सत्याग्रहकी आत्मशुद्धिकी—आत्मवलकी—लडाई नही चल सकती । इस सग्रामके लिए चारित्र्यकी पूजी होनी चाहिए। मालिकके विना महल जैसे खडहर-सरीखा लगता है वैसे ही चारित्र्यहीन मनुष्य और उसकी सम्पत्तिको समझना चाहिए । सत्याग्रहियोने देखा कि लडाई कितने दिन चलेगी इसका अदाजा किसीसे नही लगाया जा सकता । कहा जनरल वोथा और जनरल स्मट्सकी एक इच भी न हटनेकी प्रतिज्ञा और कहा सत्याग्रहियोकी मरते दमतक जूझनेकी प्रतिज्ञा ! हाथी और चीटीकी लडाई थी । हाथीके एक पावके नीचे अगणित चीटियोका भुरता वन सकता ह । सत्याग्रही अपने सत्याग्रहकी अवधिको हदसे घेर नही सकता । एक वरस लगे या अनेक, उसके लिए सव वरावर है । उसके लिए तो लडना ही जय है । लडनेके मानी थे जेल जाना, देशनिकाला होना । इसके वीच वाल-वच्चोका क्या हो ? निरतर जेल जानेवालेको नौकरी तो कोई देगा ही नही । जेल-से छूटनेपर खुद क्या खाय, वाल-वच्चोको क्या खिलाये ? कहा रहे ? भाडा कौन दे ? आजीविकाके विना सत्याग्रही भी उद्विग्न होता है । भूखो मरकर और अपनोको भूखो मारकर भी लडाई लडते रहनेवाले दुनियामे अधिक नही हो सकते ।

अवतक जेल जानेवालोके कुनवोका भरण-पोपण उनको हर महीने पैसा देकर किया जाता था। हरएकको उसकी आवश्यकता-के अनुसार दिया जाता था । चीटीको कण और हाथीको मन । सवको वरावर तो दे ही नही सकते थे। पाच वच्चेवाले सत्याग्रही और ब्रह्मचारीको जिसके आगे-पीछे कोई हो ही नही, एक पातमे नही विठा सकते । केवल ब्रह्मचारियोको ही भरती करे, यह भी नही हो सकता था । तव किस दर या पैमानेसे पैसा दिया जाय ? आम तौरसे तो हरएक कुटुवसे पूछा जाता कि कम-से-कम कितने रुपयेमे उसका गुजर हो जायगा और जो

रकम वह बताता उसपर विश्वास रखकर उसीके अनुसार उसका खर्च दिया जाता। इसमे छल-कपटके लिए बहुत अवकाश था। कपटियोने इसका कुछ लाभ भी लिया। दूसरे सच्चे लोग भी, किसी खास ढगसे रहनेके आदी होनेसे उसके योग्य सहायताकी आशा रखते थे। मैने देखा कि इस ढगसे लबे अरसेतक लडाई चलाना अशक्य है। लायकके साथ अन्याय होने और नालायकके अपने पाखडमे सफल हो जानेका डर रहता है। यह मुश्किल एक ही तरह हल हो सकती थी कि सारे कुटुबोको एक जगह रखे और सब साथ रहकर काम करे। इसमे किसीके साथ अन्याय होनेका डर न रहता। ठगोके लिए बिलकुल गुजाइश नही रहती, यह भी कह सकते है। जनताके पैसेकी बचत होती और सत्याग्रही कुटुबोको नये और सादे जीवनकी तथा बहुतोके साथ मिलकर रहनेकी शिक्षा मिलती, अनेक प्रातो और अनेक धर्मोके भारतीयोके साथ रहनेका मौका मिलता।

पर ऐसी जगह कहा मिले ? शहरमे रहने जाय तो बकरीको निकालते हुए ऊटोको घुसा लेनेका डर था। महीनेके खर्चके बराबर शायद मकानभाडा ही देना पडे और सत्याग्रही कुटुबोको शहरमे सादगीसे रहनेमे भी कठिनाई होती। फिर शहरमे इतना लबा-चौडा स्थान भी न मिल सकता जहा बहुतसे परिवार घर बैठे कोई उपयोगी धधा कर सके। अत. यह स्पष्ट था कि हमे ऐसा स्थान पसद करना चाहिए जो शहरसे न बहुत दूर हो और न बहुत नजदीक। फिनिक्स तो था ही, 'इडियन ओपीनियन' वहा छपता था। थोडी खेती भी होती थी, बहुतसे सुभीते मौजूद थे। पर फिनिक्स जोहान्सबर्गसे ३०० मीलके फासलेपर और रेलसे तीस घटेका रास्ता था। इतनी दूर कुटुबोको लाना, ले जाना टेढा और महँगा काम था। फिर सत्याग्रही कुटुब अपना घर-बार छोडकर इतनी दूर जानेको तैयार नही हो सकते थे।

होते भी तो उन्हे और सत्याग्रही वदियोको जेलसे छूटनेपर इतनी दूर भेजना अशक्य-सा लगा ।

अत स्थान तो ट्रासवालमे ही और वह भी जोहान्सवर्गके पास ही होना चाहिए था । मि० केलनवेकका परिचय पाठकोको करा चुका हू । उन्होने ११०० एकड जमीन खरीदी और सत्याग्रहियोको विना किसी भाडे-लगानके उसको काममे लानेका अधिकार दे दिया (३० मई १९१०) । इस जमीनमे वहुतसे, एक हजारके लगभग, फलवाले पेड थे और पहाडीकी तलहटीमे पाच-सात आदमियोके रहने लायक एक छोटा-सा मकान था । पानीके लिए एक झरना और दो कुए थे । रेलवे स्टेशन लॉले करीव एक मीलपर था और जोहान्सवर्ग २१ मील । इस जमीनपर ही मकान वनवाने और सत्याग्रही कुटुवोको वसानेका निश्चय किया गया ।

: १० :

टाल्स्टाय फार्म—२

यह जमीन ११०० एकड थी और उसके ऊचे हिस्सेपर एक छोटी-सी पहाडी थी, जिसकी तलहटीमे एक छोटा-सा मकान था। उसमे एक हजारके लगभग फल वाले पेड थे। उनमे नारगी, एप्रिकॉट, प्लम इफरातसे फलते, इतने कि मौसिममे सत्याग्रही भरपेट खाये तो भी वच रहे । पानीका एक नन्हा-सा झरना था । उससे पानी मिल जाता। जहा रहना था उस जगहसे वह कोई ५०० गज दूर होगा । इसलिए पानी कावरपर भरकर लानेकी मेहनत तो थी ही ।

इस स्थानमे हमारा यह आग्रह था कि घरका कोई काम नौकरसे न लिया जाय और खेती-वारी और घर वनानेका काम

भी जितना अपने हाथो हो सकता है किया जाय। इसलिए पाखाना साफ करनेसे लगाकर खाना पकानेतकका सारा काम हमे अपने हाथो ही करना था। कुटुबोका रखना था, पर हमने शुरूसे ही तै कर लिया था कि स्त्रिया और पुरुप अलग-अलग रखे जाय। इसलिए दोनोके लिए अलग-अलग मकान और थोड़े फासलेपर बनानेका निश्चय हुआ। १० स्त्रियो और ६० पुरुपोके रहने लायक मकान तुरत बना लेनेका निश्चय किया गया। एक मकान मि० केलनवेकके रहनेके लिए बनाना था और उसके साथ-साथ एक पाठशालाके लिए भी। इनके सिवा बढईके काम, मोचीके काम इत्यादिके लिए एक कारखाना भी तैयार करना था।

जो लोग इस स्थानमे रहनेके लिए आनेवाले थे वे गुजरात, मद्रास, आध्र और उत्तरी हिदुस्तानके थे। धर्मके विचारमे वे हिदू, मुसलमान, पारसी और ईसाई थे। कुल ४०के लगभग युवक, दो-तीन बूढे, पाच स्त्रिया और २०से ३० तक बच्चे थे, जिनमे पाच लडकिया थी।

स्त्रियोमे जो ईसाई थी उन्हे और दूसरोको भी मासाहारकी आदत थी। मि० केलनवेककी और मेरी भी राय थी कि इस स्थानमे मासाहारका प्रवेश न हो तो अच्छा है। पर जिन्हे उसके विपयमे धर्म-नीतिकी तनिक भी अडचन न हो, जो सकटके समय इस स्थानमे आ रहे थे और जिन्हे जन्मसे इस चीजकी आदत हो उनसे थोडे दिनोके लिए भी उसे छोडनेको कैसे कहा जा सकता? न कहा जाय तो खर्च कितना होगा? फिर जिन्हे गोमासकी आदत हो उन्हे क्या गोमास दिया जाय? कितने रसोईघर चलाये जाय? मेरा धर्म इस विपयमे क्या था? इन कुटुबोको पैसा देनेका निमित्त बनकर भी तो मै मासाहार और गोमासाहारमे सहायक होता ही था। अगर यह नियम कर लू कि मासाहार करनेवालेको मदद न मिलेगी तो

सत्याग्रहकी लडाई मुझे केवल निरामिषभोजियोके जरिये ही लडनी होगी। यह भी कैसे हो सकेगा ? लडाई तो भारतीय-मात्रकी थी। अपना धर्म मै स्पष्ट देख सका। ईसाई या मुसलमान भाई गोमास ही मागे तो मुझे उनको वह देना ही होगा। मै उन्हे इस स्थानमे आनेकी मनाही नही कर सकता।

पर प्रेमका वेली ईश्वर है ही। मैने तो सरल भावसे ईसाई बहनोके सामने अपना सकट रखा। मुसलमान भाइयोने तो मुझे केवल निरामिष रसोई चलानेकी इजाजत पहले ही दे दी थी, केवल ईसाई बहनोकी बात मुझे समझनी थी। उनके पति या पुत्र तो जेलमे थे। उनकी सम्मति मुझे प्राप्त थी, उनके साथ ऐसे मौके अनेक बार आ चुके थे। केवल बहनोके साथ ऐसे निकट सबधका यह पहला ही अवसर था। मैने उनसे मकानकी अडचन, पैसेकी अडचन और अपनी भावनाकी बात कही, साथ ही यह इतमीनान भी दिला दिया कि वे मागेगी तो मै गोमास भी हाजिर कर दूगा। बहनोनें प्रेमभावसे मास न मागना मजूर किया। रसोईका काम उनके हाथमे सौपा गया। उनकी मददके लिए हममेंसे एक-दो पुरुष भी दे दिये गये। उनमे मै तो था ही। मेरी मौजूदगी छोटे-मोटे झगडे-टटोको दूर रख सकती थी। रसोई जितनी सादी हो सकती है रखनेका निश्चय हुआ। खानेका समय निश्चित हुआ। रसोई एक ही रखी गई। सबको एक ही पातमे भोजन करना था, सबको अपने-अपने बरतन धो-माजकर साफ रखने थे। शामिल बरतन सब लोग बारी-बारीसे माजे यह तै हुआ। मुझे यह बता देना चाहिए कि टाल्स्टाय फार्म लबे अरसेतक चला, पर बहनो या भाइयोने कभी मासाहारकी माग नही की। शराब, तबाकू आदि तो वर्जित थे ही।

मै लिख चुका हू कि मकान बनानेका काम भी जितना अपने हाथो हो सके उतना करनेका हमारा आग्रह था। स्थापति

(Architect) तो मि० केलनबेक थे ही। वह एक यूरोपियन राज ले आये। एक गुजराती बढई नारायणदास दमानियाने, अपनी सहायता बिना पैसेके प्रदान की। और दूसरे बढई भी थोडे पैसेमे बुला दिये। केवल शारीरिक श्रमका काम हमने अपने हाथो किया। हममेसे जिनके अग लचीले थे उन्होने तो कमाल कर दिया। बढईका आधा काम तो विहारी नामके सत्याग्रहीने उठा लिया। सफाईका काम, शहर जाना और वहासे सामान लाना आदि सिह समान थबी नायडूने अपने जिम्मे ले लिया।

इस टुकडीमे एक थे भाई प्रागजी खडूभाई देसाई। उन्होने अपनी जिदगीमे कभी सर्दी-गर्मी नही सही थी। यहा तो कडाकेकी ठड, कडी गर्मी और गहरी बरसात सब सहनी थी। इस स्थानमे हमारे निवासका श्रीगणेश तो खेमोमे हुआ। जबतक मकान बने तबतक उन्हीमे सोना पडा। मकान दो महीनेमे बने होगे। मकान सफेद लोहेकी चादरोके थे, इससे उनके बनानेमे ज्यादा वक्त न लगता। हमे लकड़ी भी जिस-जिस नापकी दरकार थी तैयार मिल जाती थी। हमको बस इतना ही करना रहता कि नापकर उसके टुकडे कर ले। खिडकी, दरवाजे भी थोडे ही बनाने थे, इसीसे इतने कम समयमे इतने अधिक मकान बना लिये गये। पर इन कामोमे भाई प्रागजीकी पूरी मशक्कत हो गई। जेलकी तुलनामे फार्मका काम निश्चय ही कडा था। एक दिन तो थकावट और गर्मीसे वह बेहोश हो गये, पर वह झट हार माननेवाले आदमी नही थे। उन्होने अपने शरीरको यहा पूरी तरह कस लिया और अतमे तो इतनी शक्ति प्राप्त कर ली थी कि मशक्कतमे सबके साथ जुट सके।

ऐसे ही दूसरे भाई थे जोसफ रॉयपन। वह तो बैरिस्टर थे, पर उन्हे बैरिस्टरीका गर्व न था। बहुत कडी मेहनत उनसे

टाल्स्टाय फार्मके कुछ निवासी (गांधीजीके साथ)

न हो सकती थी, ट्रेनसे बोझा उतारना और बैलगाडीपर उसे लादना उनके लिए कठिन था, पर अपनी शक्तिभर उन्होने इसे भी किया।

टाल्स्टाय फार्ममे निर्बल सबल हो गये और मेहनत सबके लिए शक्तिवर्द्धक साबित हुई।

सबको किसी-न-किसी कामसे जोहान्सबर्ग जाना पडता। बच्चोको सैरके लिए जानेकी इच्छा होती, मुझको भी कामवश जाना होता। हमने निश्चय किया कि सार्वजनिक आश्रमके कामसे जाना हो तभी रेलसे जानेकी इजाजत मिले और तीसरे दरजेको छोडकर और किसीमे जाना तो हो ही नही सकता था। जिसे सैरके लिए जाना हो वह पैदल चलकर जाय और अपना नाश्ता बाधकर साथ ले जाय। कोई शहरमे खानेको खर्च न करे। इतने कडे नियम न रखे होते तो जो पैसा बचानेके लिए हमने वनवास स्वीकार किया वह रेलभाडे और बाजारके रास्तेमे उड जाता। घरका नाश्ता भी सादा ही होता। घरके पिसे और बिना छने आटेकी रोटी, मूगफलीका घर बनाया हुआ मक्खन और नारगीके छिलकेका मुरब्बा। आटा पीसनेके लिए हाथसे चलानेकी लोहेकी बनी चक्की ली थी। मूगफलीको भूनकर पीस लेनेसे मक्खन तैयार हो जाता था। उसका दाम दूधके मक्खनकी अपेक्षा चार गुना सस्ता पडता। नारगी तो फार्ममे ही इफरातसे होती थी। फार्मसे गायका दूध तो शायद ही कभी लिया जाता। हम डिब्बेका दूध काममे लाते।

अब फिर सफरकी चर्चापर आए। जिसे जोहान्सबर्ग जानेका शौक होता वह हफ्तेमे एक या दो बार पैदल जाता और उसी दिन लौट आता। पहले बता चुका हू कि वह २१ मीलका रास्ता था। पैदल जाने-आनेके इस एक नियमसे ही सैकडो रुपये बच गये और पैदल जानेवालोको बहुत

लाभ भी हुआ । कितनोको पैदल चलनेकी नई आदत पड गई । नियम यह था कि इस तरह जानेवाले दो बजे रातको उठे और २॥ बजे रवाना हो जाय । सब छ से सात घटेके अदर जोहान्सबर्ग पहुच सकते थे । कम-से-कम समय लेनेवाले ४ घटे १८ मिनटमे पहुचते ।

पाठक यह न माने कि ये नियम आश्रमवासियोपर भाररूप थे । सभी उनका प्रेमपूर्वक पालन करते थे । बलात्कारसे तो मै एक भी आदमीको वहा न रख सकता । युवक सफरमे हो या आश्रममे, सारा काम हँसते-हँसते और किल्कते हुए करते । शारीरिक श्रमके समय तो उन्हे ऊधम मचानेसे रोकना कठिन होता । उनसे उतना ही काम लेनेका नियम रखा गया था जितना उन्हे खुश रखते हुए लिया जा सके । इससे काम कम हुआ, यह मुझे नही जान पडा ।

पाखानेकी कथा समझ लेनी चाहिए । इतने आदमी इकट्ठे रहते थे, फिर भी किसीको कही कूडा, मैला या जूठन पडी दिखाई नही देती थी । एक गढा खोद रखा गया था, सारा कूडा उसीमे डालकर ऊपरसे मिट्टी डाल दी जाती । पानी कोई रास्तेमे न गिराने पाता । सब बरतनोमे इकट्ठा किया जाता और पेडोको सीचनेमे खर्च किया जाता । जूठन और साग-तर-कारीके छिलको आदिकी खाद बनती । पाखानेके लिए रहनेके मकानके पास एक चौरस गढा डेढ फुट गहरा खोद रखा था । उसीमे सारा पाखाना डाल दिया जाता और ऊपरसे खोदी हुई मिट्टीको भी डालकर पाट दिया जाता । इससे जरा भी दुर्गंध न आती । मक्खिया भी वहा नही भिनभिनाती थी और किसीको इसका खयाल भी न आता कि यहा पाखाना पाटा गया है । साथ ही फार्मको अमूल्य खाद मिलती थी । हम मैलेका सदुपयोग करे तो लाखो रुपयेकी खाद बचाए और अनेक रोगोसे भी बचे । पाखानेके बारेमे अपनी

बुरी आदतके कारण हम पवित्र नदीके किनारेको भ्रष्ट करते है, मक्खियोकी उत्पत्ति करते है और नहा-धोकर साफ-सुथरे होनेके बाद, जो मक्खिया हमारी बेहूदी लापरवाहीसे खुले हुए विष्टापर बैठ चुकी है उन्हे अपने शरीरका स्पर्श करने देते है। एक छोटी-सी कुदाली हमे बहुत-सी गदगीसे बचा सकती है। चलनेके रास्तेपर मैला फेकना, थूकना, नाक साफ करना ईश्वर और मनुष्य दोनोके प्रति पाप है। इसमे दयाका अभाव है। जगलमे रहनेवाला भी अगर अपने मैलेको मिट्टीमे दबा नही देता तो वह दडके योग्य है।

हमारा काम था सत्याग्रही कुटुबोको उद्योगी बनाये रखना, पैसा बचाना और अतमे स्वावलबी बनना। हम यह कर सके तो चाहे जितने अरसेतक लड सकते थे। जूतोका तो खर्च था ही। बद जूते (शू) से गर्म आब-हवामे तो नुकसान ही होता है। सारा पसीना पैर चूस लेता है और नाजुक हो जाता है। मोजेकी जरूरत तो हमारी जैसी आबहवामे होती ही नही। पर काटे-रोडे आदिसे बचनेके लिए कुछ बचावकी आवश्यकता हम मानते थे। इसलिए हमने कटकरक्षक अर्थात् चप्पल बनानेका काम सीख लेनेका निश्चय किया। दक्षिण अफ्रीकामे पाइनटाउनके पास मेरियनहिलमे रोमनकैथेलिक पादरियोका ट्रेपिस्ट नामका मठ है। वहा ऐसे उद्योग चलते है। ये पादरी जर्मन है। उनके एक मठमे जाकर मि० केलनबेक चप्पल बनाना सीख आये। उन्होने मुझे सिखाया और मैने दूसरे साथियोको। यो अनेक युवक चप्पल बनाना सीख गये और हम मित्रमडलीमे उसे बेचने भी लगे। मुझे यह कहनेकी आवश्यकता नही होनी चाहिए कि मेरे कितने ही 'चेले' इस हुनरमे मुझसे सहज ही आगे निकल गये। दूसरा धधा हमने बढईका दाखिल किया। हम एक गाव-सा बसा रहे थे। वहा हमे चौकीसे लगाकर बक्स-सदूकतक अनेक

छोटी-बडी चीजोकी आवश्यकता थी। वे सब चीजे हम अपने हाथ ही बनाते। जिन परोपकारी मिस्त्रियोकी बात ऊपर कह चुका हू उन्होने तो कई महीनेतक हमे मदद दी। इस विभागकी अध्यक्षता मि० केलनबेकने स्वय स्वीकार की थी। उनकी कुशलता और सावधानताका अनुभव हमे प्रतिक्षण होता था।

युवको और बालक-बालिकाओके लिए एक पाठशाला तो चाहिए ही थी। यह काम सबसे कठिन जान पडा और अततक पूर्णताको नही पहुचा। शिक्षणका भार मुख्यत मि० केलनबेक और मुझपर था। पाठशाला दोपहरसे ही चलाई जा सकती थी। उस वक्त हम दोनो सवेरेकी मशक्कतसे खूब थके होते। पढनेवालोका भी यही हाल होता। अत अकसर वे और हम भी ऊघने लगते। हम आखोपर पानीके छीटे देते, बच्चोके साथ हँस-खेलकर उनकी और अपनी ऊघ भगाते, पर अकसर यह कोशिश बेकार जाती। शरीर जो आराम मागता है वह लेकर ही छोडता है। यह तो एक और सबसे छोटा विघ्न था, क्योकि नीदमे झोके खाते हुए भी कक्षाए तो चलती ही थी। पर तामिल, तेलगू और गुजराती तीन भाषाए बोलनेवालोको क्या सिखाया जाय और कैसे ? मातृभाषाके द्वारा शिक्षा देनेका लोभ तो मुझे था ही। तामिल थोडी-बहुत जानता था, पर तेलगू तो एक अक्षर भी न आती थी। ऐसी स्थितिमे एक शिक्षक क्या करे ? युवकोमेसे कुछका शिक्षकरूपमे उपयोग किया। यह प्रयोग सफल हुआ, यह नही कहा जा सकता। भाई प्रागजीका उपयोग तो होता ही था। युवकोमेसे कुछ बडे नटखट और आलसी थे। किताबके साथ हमेशा लडाई करते थे। ऐसे विद्यार्थियोको आगे बढानेकी शिक्षक क्या आशा कर सकते थे ? फिर हमारा काम अनियमित था। जरूरी होनेपर मुझे जोहान्सबर्ग जाना ही पडता। यही बात मि० केलनबेककी थी।

दूसरी कठिनाई धार्मिक शिक्षाकी थी। मुसलमानोको कुरान पढानेका लोभ तो मुझे था ही। पारसियोको अवेस्ता पढानेकी इच्छा होती। एक खोजाका लडका था। उसके पास अपने पथकी एक छोटी-सी पोथी थी। उसके वापने वह पोथी पढानेका भार मुझपर डाल दिया था। मैने इस्लाम और पारसी धर्मकी पुस्तके इकट्ठी की। हिंदू-धर्मके जो मुझे मूलतत्त्व जान पडे उन्हे मैने लिख डाला—अपने ही वच्चोके लिए या फार्मके वच्चोके लिए, यह वात अव याद नही रही। यह चीज मेरे पास होती तो अपनी प्रगति या गतिकी नाप करनेके लिए मै उसे यहा दे देता, पर ये चीजे तो कितनी ही अपनी जिदगीमे मैने फेक दी या जला डाली। इन वस्तुओके सग्रहकी आवश्यकता मुझे ज्यो-ज्यो कम जान पडती गई और ज्यो-ज्यो मेरा काम वढता गया त्यो-त्यो मै इन चीजोका नाश करता गया। मुझे इसका पछतावा भी नही। इन वस्तुओका सग्रह मेरे लिए एक वोझ और वडे खर्चकी चीज हो जाता। उनके रक्षणके साधन मुझे जुटाने पडते और मेरी अपरिग्रही आत्माको यह असह्य होता।

पर यह शिक्षणका प्रयोग व्यर्थ नही गया। वालकोमे कभी असहिष्णुता नही आई। एक दूसरेके धर्म और रीति-रिवाजके प्रति उन्होने उदार-भाव रखना सीखा। सगे भाइयो-की तरह हिल-मिलकर रहना सीखा। एक-दूसरेकी सेवा करना सीखा। सभ्यता सीखी। उद्यमी वने और आज भी उन वालकोमेसे, जिनके कार्योकी थोडी-वहुत खवर मुझको है उसपरसे मै जानता हू कि टाल्स्टाय फार्ममे उन्होने जो कुछ सीखा वह व्यर्थ नही गया। अधूरा सही, पर यह विचारमय और धार्मिक प्रयोग था और टाल्स्टाय फार्मके जो सस्मरण अत्यन्त मधुर है उनमे यह शिक्षणके प्रयोगका स्मरण तनिक भी कम मधुर नही है।

पर इन मधुर स्मृतियोके लिए एक पूरे प्रकरणकी आवश्यकता है ।

: ११ :

टाल्स्टाय फार्म—२

इस प्रकरणमे टाल्स्टाय फार्मके बहुतसे सस्मरणोका सग्रह होगा। अत ये स्मरण असबद्ध लगेगे। पाठक इसके लिए मुझे क्षमा करेगे।

पढानेके लिए जैसा वर्ग मुझे मिला था वैसा शायद ही किसी शिक्षकके हिस्से पडा हो। सात बरसके बालक-बालिकाओसे लगाकर२० बरसतकके जवान और १२-१३ बरसतककी लड-किया इस वर्गमे थी। कुछ लडके ऐसे थे जिन्हे जगली कह सकते है। वे खूब ऊधम मचाते।

ऐसे जमातको क्या पढाऊं ? सबके स्वभावके अनुकूल कैसे होऊ ? फिर सबके साथ किस भाषामे बातचीत करू ? तामिल और तेलगूभाषी बच्चे या तो अपनी मातृभाषा समझते थे या अग्रेजी। थोडी डच भी जानते थे। मुझे तो अग्रेजीसे ही काम लेना होता। मैने वर्गके दो विभाग कर दिये—गुजराती भाषी बच्चोसे गुजरातीमे बोलता, बाकी सबसे अग्रेजीमे। शिक्षणकी योजना यह थी कि उसका मुख्य भाग होता तो कोई रोचक वार्ता कहना या पढकर सुनाना। बच्चोको साथ मिलकर बैठना और मित्रभाव, सेवाभाव सिखाना, यही उद्देश्य मैने सामने रखा था। इतिहास-भूगोलका थोडा सामान्य ज्ञान करा देता और थोडा लिखना सिखा देता। कुछको अकगणित भी सिखाता। इस तरह गाडी चला

लेता। प्रार्थनामे गानेके लिए कुछ भजन सिखाता। उसमे शामिल होनेके लिए तामिल वालकोको भी ललचाता।

लडके-लडकिया आजादीसे साथ उठते-बैठते। टाल्स्टाय फार्ममे मेरा यह सहशिक्षाका प्रयोग अधिक-से-अधिक निर्भय था। जो आजादी मैने वालक-वालिकाओको वहा दी या सिखाई थी वह आजादी देने या सिखानेकी मेरी हिम्मत भी आज नही होती। मुझे अकसर ऐसा लगा है कि मेरा मन उन दिनो आजकी अपेक्षा अधिक निर्दोप था। इसका कारण मेरा अज्ञान हो सकता है। इसके वाद कई वार मुझे धोखा हुआ है, कडुवे अनुभव हुए है। जिन्हे मै नितात निर्दोप समझता था वे सदोप सिद्ध हुए है। अपने आप भी गहराईमे पैठनेपर मैने विकार पाये है। इससे मन कातर वन गया है।

मुझे अपने इस प्रयोगपर पछतावा नही। मेरी आत्मा गवाही देती है कि इस प्रयोगसे कुछ भी हानि नही हुई, पर दूधका जला छाछको भी फूक-फूककर पिया करता है। यही वात मेरे वारेमे समझनी चाहिए।

मनुष्य श्रद्धा या हिम्मत दूसरेसे चुरा नही सकता। 'संशयात्मा विनश्यति'। टाल्स्टाय फार्ममे मेरी हिम्मत और श्रद्धा पराकाष्ठाको पहुची हुई थी। यह श्रद्धा और हिम्मत फिर देनेके लिए मै प्रभुसे प्रार्थना किया करता हू। पर वह सुने तव न! उसके सामने तो मुझ-जैसे अगणित भिखारी होते है। भरोसा इतना ही है कि जैसे उससे याचना करनेवाले असख्य है वैसे उसके कान भी असख्य है। इसलिए उसपर मेरी श्रद्धा पूरी है। यह भी जानता हू कि जव मै इसका अधिकारी हो जाऊगा तव मेरी अर्ज जरूर सुनेगा।

यह था मेरा प्रयोग। मै तो वदमाश समझे जानेवाले लडको और निर्दोप सयानी लडकियोको साथ नहानेको भेजता।

लडके-लडकियोको मर्यादाधर्मके विषयमे खूब समझा दिया था। मेरे सत्याग्रहसे वे सभी परिचित थे। मैं उन्हे माके जितना ही प्यार करता था इसे मैं तो जानता ही था, पर वे भी इसे मानते थे। पाठकोको पानीके झरनेकी बात याद होगी। वह रसोईसे कुछ दूरपर था। वहां बालक-बालिकाओका सगम होने देना और फिर यह आशा रखना कि वे निर्दोष निष्पाप बने रहेगे? मेरी आखे तो उन लडकियोके पीछे वैसे ही फिरा करती थी जैसे माकी आखे बेटीके पीछे फिरा करती है। स्नानका समय नियत था। उसके लिए सब लडकिया और सब लडके साथ जाते। संघमे जो एक प्रकारकी सुरक्षितता होती है वह यहा थी। उन्हे कही एकात तो मिलता ही नही। आमतौरसे मैं भी उसी वक्त वहा पहुच जाता।

हम सभी एक खुले बरामदेमे सोते थे। लडके-लडकिया मेरे आस-पास सोते। दो बिस्तरोके बीच मुश्किलसे तीन फुटका अतर होता। बिस्तरोके क्रममे अवश्य थोडी सावधानी रखी जाती, पर सदोष मनके लिए यह सावधानी क्या कर सकती थी? अब मैं देखता हू कि इन लडके-लड़कियोके बारेमे प्रभुने ही लाज रखी। मैंने इस विश्वाससे यह प्रयत्न किया कि लडके-लडकिया इस तरह निर्दोष रीतिसे मिल-जुल सकते है। उनके मा-बापने मुझपर बेहद विश्वास रखकर यह प्रयोग करने दिया।

एक दिन इन लडकियोने ही या किसी लडकेने मुझे खबर दी कि एक युवकने दो लडकियोके साथ मजाक किया है। मैं काप उठा। मैंने जाच की। बात सच थी। युवकोको समझाया; पर इतना काफी नही था। दोनो लडकियोके शरीरपर कोई ऐसा चिह्न चाहता था जिससे हरएक युवक यह समझ सके और जान ले कि इन बालाओपर कुदृष्टि डाली ही नही जा सकती। लड़कियां भी समझ ले कि हमारी पवित्रतापर

कोई हाथ डाल सकता ही नही। सीताके शरीरको विकारी रावण स्पर्शतक न कर सका। राम तो दूर थे। ऐसा कौन-सा चिह्न इन लडकियोको दू, जिससे वे अपने आपको सुरक्षित समझे और दूसरे भी उन्हे देखकर निर्विकार रहे ? रातभर जागा। सवेरे लडकियोसे विनती की। उन्हे चौकाये विना समझाकर सलाह दी कि वे अपने सुदर केश कतर देनेकी इजाजत मुझे दे दे। फार्मपर हम एक दूसरेकी दाढी वनाया और वाल कतर दिया करते थे। इससे कतरनी मेरे पास थी। पहले तो उन लडकियोने नही समझा। वडी स्त्रियोको मैने अपनी वात समझा दी थी। उन्हे मेरी सलाह सहन तो नही हुई, पर वे मेरा हेतु समझ सकी थी। उनकी मदद मुझे मिली। दोनो लडकिया भव्य थी। आह! आज उनमेसे एक चल वसी है। वह तेजस्विनी थी! दूसरी जीवित है और अपनी गृहस्थी चला रही है। अतमे वे दोनो समझ गई। उसी क्षण उस हाथने जो आज यह प्रसग लिख रहा है, उन वालिकाओके केशपर कतरनी चला दी। पीछे दरजेमे इस कार्यका विश्लेपण करके सवको समझा दिया। परिणाम सुदर रहा। फिर मैने मजाककी वात नही सुनी। इन लडकियोने कुछ खोया तो नही ही। कितना पाया यह तो भगवान ही जानते होगे। मै आशा रखता हू कि युवक इस घटनाको याद करते और अपनी दृष्टिको शुद्ध रखते होगे।

ऐसे प्रयोग अनुकरणके लिए नही लिखे जाते। कोई शिक्षक उनका अनुकरण करे तो वह भारी जोखिम अपने सिरपर लेगा। इस प्रयोगका उल्लेख स्थितिविशेषमे मनुष्य किस हदतक जा सकता है यह दिखाने और सत्याग्रहकी लडाईकी विशुद्धता वतानेके लिए किया गया है। इस विशुद्धतामे ही उसकी विजयकी जड थी। इस प्रयोगके लिए शिक्षकको मा-वाप दोनो वनना होता है और हर कष्ट-हानिके लिए

तैयार होकर ही ऐसे प्रयोग किये जा सकते है। उनके पीछे कठिन तपश्चर्याका वल होना चाहिए।

इस कार्यका असर फार्मवासियोकी सारी रहन-सहनपर पड़े विना न रहा। कम-से-कम खर्चमें गुजर करना हमारा उद्देश्य था, इसलिए पहनावेमे भी हेर-फेर किया। दक्षिण अफ्रीकाके शहरोमे आमतौरसे हमारे पुरुषवर्गका पहनावा यूरोपियन ढगका ही होता है। सत्याग्रहियोका भी था। फार्मपर उतने कपडोकी जरूरत नही थी। हम सभी मजदूर वन गये थे। इससे पहनावा रखा मजदूरोका, पर यूरोपीय ढगका--यानी मजदूरोके पहननेका पतलून और उसी तरहकी कमीज। इस पहनावेमे जेलका अनुकरण था। मोटे आसमानी रगके कपडेका सस्ता पतलून और कमीज मिलती, वही सब पहनते। स्त्रियोमे अधिकाश सिलाईका काम सुदर रीतिसे कर सकती थी। उन्होने सिलाईका सारा काम अपने ऊपर ले लिया।

भोजनमे चावल, दाल, तरकारी, रोटी और कभी-कभी खीर होना सामान्य नियम था। ये सारी चीजे एक ही वरतनमे परसी जाती। वरतनमे थालीके वदले जेलकी जैसी तसली रखी गई थी और लकडीके चमचे अपने हाथसे वना लिए गये थे। खाना तीन वक्त दिया जाता। सवेरे छ वजे रोटी और गेहूका कहवा (काफी) ग्यारह वजे दाल-भात और तरकारी और शामके ५॥ वजे गेहूकी लपसी और दूध या रोटी और गेहूका कहवा। रातके ९ वजे सवको सो जाना होता। शामके भोजनके वाद सात या साढे सात वजे प्रार्थना होती। प्रार्थनामे भजन गाये जाते और कभी रामायणसे तो कभी इसलामके धर्मग्रथोमेसे कुछ पढा जाता। भजन अग्रेजी, हिंदी और गुजराती-मे होते। कभी तीनोके भजन गाये जाते तो कभी एकहीसे।

फार्ममे वहुतेरे एकादशी व्रत करते। वहा भाई पी के. कोतवाल पहुंच गये थे जिन्हे उपवास आदिका अच्छा ज्ञान

और अनुभव था। उनको देखकर बहुतोने चातुर्मास किया। इसी बीच रोजा भी आ गया। हममे कुछ मुसलमान नौजवान थे। उन्हे रोजा रखनेको प्रोत्साहन देना हमे अपना धर्म जान पडा। उसके लिए सरगही (सहरी) और रातके भोजनका प्रबंध कर दिया। उनके लिए रातमे खीर आदि भी बनती। मासाहार तो होता ही नही था। किसीने इसकी माग भी नही की। उनके धर्मभावका सम्मान करनेके लिए हम भी एक ही जून शामको भोजन करते। हमारा सामान्य नियम सूर्यास्तसे पहले भोजन कर लेनेका था। मुसलमान लडके थोडे ही थे, इसलिए अतर इतना ही होता कि दूसरे सूर्यास्तसे पहले खा-पीकर तैयार हो जाते। मुसलमान नवयुवकोने भी रोजा रखनेमे इतनी भलमनसी बरती कि किसीको ज्यादा तकलीफ न होने दी। पर इस तरह गैर मुस्लिम लडकोके आहार-सयममे उनका साथ देनेका असर सबके ऊपर अच्छा ही हुआ। हिंदू-मुसलमानके लडकोके बीच मजहबको लेकर एक बार भी झगडा हुआ हो या भेद उत्पन्न हुआ हो इसकी याद मुझे नही है। इसका उलटा मै जानता हू कि सब अपने-अपने धर्मपर दृढ रहते हुए भी एक दूसरेके प्रति पूरा आदर रखते और एक दूसरेको स्वधर्माचरणमे सहायता देते।

हम शहरसे इतनी दूर रहते थे फिर भी बीमारियोके लिए दवा-दारूका जो साधारण प्रबंध रखा जाता है वैसा कुछ भी नही रखा गया था। उन दिनो लडके-लडकियोकी निर्दोषताके विषयमे मुझे जो श्रद्धा थी वही श्रद्धा बीमारीमे केवल प्राकृतिक उपचार करनेके विषयमे भी थी। मै सोचता था कि पहले तो सादे जीवनमे बीमारी होगी ही क्यो और हो भी गई तो हम उसका उपाय कर लेगे। मेरी आरोग्यविषयक पुस्तक मेरे प्रयोगो और मेरी उस सयमकी श्रद्धाकी नोटबुक है। मुझे यह अभिमान था कि मै तो बीमार हो ही नही सकता।

यह मानता था कि केवल पानी, मिट्टी या उपवासके प्रयोग या भोजनके अदल-बदलसे सब प्रकारके रोग दूर किये जा सकते हैं। फार्ममे एक भी बीमारीके मौकेपर डाक्टरका उपयोग नही किया गया। उत्तर भारतका रहनेवाला एक सत्तर बरसका बूढा था। उसको दमे और खासीकी शिकायत थी। वह भी महज खूराकके अदल-बदल और पानीके प्रयोगसे चगा हो गया। पर ऐसे प्रयत्न करनेकी हिम्मत अब मै खो बैठा हू और खुद दो बार बीमार पडनेके बाद यह मानने लगा हू कि मैंने इसका अधिकार भी खो दिया।

फार्म जब चल रहा था उसी बीच स्व० गोखले दक्षिण अफ्रीका आये थे। उनकी यात्राके वर्णनके लिए तो अलग प्रकरणकी जरूरत है। पर उसका एक कडवा-मीठा सस्मरण यहा लिखे देता हू। हमारा जीवन कैसा था यह तो पाठकोंने जान ही लिया। फार्ममे खाट-जैसी कोई चीज नही थी; पर गोखलेजीके लिए एक माग लाये। कोई ऐसा कमरा नही था जहा उनको पूरा एकात मिले। बैठनेके लिए पाठशालाकी बेचे भर थी। ऐसी स्थितिमे भी नाजुक तबियत-वाले गोखलेजीको फार्मपर लाये बिना हमसे कैसे रहा जाता? वैसे वह भी उसे देखे बिना कैसे रह सकते थे? मेरा खयाल था कि उनका शरीर एक रातकी तकलीफ बर्दाश्त कर लेगा और वह स्टेशनसे फार्मतक डेढ मील पैदल भी आ सकते है। मैने उनसे पूछ लिया था और अपनी सरलतावश उन्होने बिना सोचे-समझे मुझपर विश्वास रखकर सारी व्यवस्था स्वीकार कर ली थी। सयोगवश उसी दिन वर्षा भी हो गई। यकायक मेरे किये प्रबधमे कोई हेरफेर नही हो सकता था। इस अज्ञानभरे प्रेमके कारण उस दिन मैने गोखलेजीको जो कष्ट दिया वह मुझे कभी नही भूला। इतना बडा परिवर्तन उनकी प्रकृति सहन नही कर सकती थी। उन्हे ठड लग गई।

भोजनके लिए उन्हे रसोईमे नही ले जा सकते थे। मि० केलनवेकके कमरेमे उन्हे उतारा था। वहा खाना ले जानेमे ठडा तो हो ही जाता । उनके लिए मै खास शोरवा वनाता। भाई कोतवाल खास चपातिया वनाते। पर वे गरम कैसे रखे जाय ? ज्यो-त्यो करके निवटाया। गोखलेने मुझे एक शव्द भी नही कहा, पर उनके चेहरेसे मै समझ गया और अपनी मूर्खता भी समझ गया। जव उन्हे मालूम हुआ कि हम सभी जमीनपर सोते है तव उनके लिए जो खाट लाई गई थी उसे हटा दिया और अपना विस्तर भी फर्शपर ही लगा लिया। यह रात मैने पश्चात्ताप करते विताई। गोखलेकी एक आदत थी जिसे मै वुरी आदत कहता। वह नौकरकी ही सेवा स्वीकार करते। ऐसी यात्राओमे नौकरको साथ न रखते। मैने और मि० केलनवेकने उनसे वहुत विनती की कि हमे पाव दवाने दीजिए, पर वह टस-से-मस न हुए। हमे अपना शरीर स्पर्शतक न करने दिया। उलटे आधी खीझ और आधी हँसीमे कहा--"जान पडता है कि आप सव लोगोने यही समझ लिया ह कि कष्ट भोगनेके लिए अकेले आप ही लोग जन्मे हो और हम-जैसे लोग इसीलिए पैदा हुए है कि तुम्हे कष्ट दे। अपनी अतिकी सजा आज तुम पूरी-पूरी भोग लो। मै तुम्हे अपना शरीर छूनेतक नही दूगा। तुम सव लोग निवटनेके लिए दूर जाओगे और मेरे लिए कमोड रखोगे! ऐसा क्यो ? चाहे जितनी तकलीफ उठानी पडे, मै भोग लूगा, पर तुम्हारा गर्व चूर करूगा।" यह वचन हमारे लिए वज्रसमान थे। मै और मि० केलनवेक खिन्न हुए, पर इतना ढाढस था कि उनके चेहरेपर हास्य था। अर्जुनने कृष्णको अनजानेमे वहुत कष्ट दिया होगा, पर कृष्णने क्या उसे याद रखा ? गोखलेने हमारा सेवाका भाव ही याद रखा, सेवा तो करने ही नही दी। मोवासासे उन्होने मुझे जो प्रेमभरा पत्र लिखा वह मेरे हृदयपर अकित हो गया है। उन्होने कष्ट सह लिये, पर जो

सेवा हम कर सकते थे वह अततक न करने दी। भोजन आदि हमारे हाथसे न लेते तो करते क्या ?

अगले दिन सवेरे न उन्होने खुद आराम लिया, न हमे लेने दिया। उनके सब भाषणोको जिन्हे हम पुस्तकरूपमे छपाने जा रहे थे, सुधारा। उनकी आदत थी कि कुछ भी लिखना हो तो उसका मजमून इधर-से-उधर टहलते हुए सोचते। उन्हे एक छोटा-सा पत्र लिखना था। मैने सोचा कि उसे तो वह तुरत लिख डालेगे; पर उन्होने ऐसा नही किया। मैने टीका की तो मुझे यह व्याख्यान सुनना पडा—"मेरा जीवन तुम क्या जानो ? मै छोटी-से-छोटी बात भी उतावलीमे नही करता। उसको सोचता हू। उसके मध्यबिंदुको सोचता हू, फिर विषयके अनुरूप भाषाका विचार करता हू और तब लिखता हू। सब ऐसा करे तो कितना वक्त बच जाय ? और समाज भी आज जो अध-कचरे विचार उसे मिले रहे है उनके भारसे बच जाय।"

जैसे गोखलेके आगमनके वर्णनके बिना टाल्स्टाय फार्म-के सस्मरण अधूरे माने जायगे वैसे ही मि० केलनबेककी रहन-सहनके विषयमे भी यही बात कही जा सकती है। इस निर्मल पुरुषका परिचय मै पहले करा चुका हू। मि० केलनबेकका टाल्स्टाय फार्ममे, हम लोगोके बीचमे हम-जैसे ही होकर रहना यही अचरजकी बात थी। गोखले सामान्य बातोसे आकृष्ट होने-वाले आदमी नही थे, पर केलनबेकके जीवनके महान परिवर्तन-से वह भी अतिशय आकृष्ट हुए थे। केलनबेकने कभी दुनियाकी सर्दी-गर्मी न सही थी, एक भी तकलीफ या अडचन न उठाई थी। असयम उनका धर्म हो गया था। ससारके सुख भोगनेमे उन्होने कोई कसर नही रखी थी। पैसेसे जो चीज मिल सकती थी अपने सुखके लिए उसे प्राप्त करनेमे उन्होने कभी आगा-पीछा न किया था।

ऐसे आदमीका टाल्स्टाय फार्ममे रहना, सोना-बैठना,

खाना-पीना और फार्मवासियोके साथ घुल-मिल जाना ऐसी-वैसी बात नही थी। हम लोगोको यह देखकर आनदजनक आश्चर्य हुआ। कुछ गोरोने मि० केलनवेकको मूर्ख या पागल समझ लिया। दूसरे कितनोके दिलमे उनकी त्यागशक्तिको देखकर उनके लिए इज्जत बढी। केलनवेकने अपने त्यागको कभी दु खरूप न माना। जितना आनद उन्होने सुखोके भोगमे पाया था उससे अधिक उनके त्यागमे पाया। सारी जिदगीके सुखका वर्णन करते हुए वह तल्लीन हो जाते और क्षणभरके लिए तो सुननेवालेको भी वह सुख भोगनेकी इच्छा हो जाती। छोटे-बडे सबके साथ वह इतने प्रेमसे हिल-मिल जाते कि उनका अल्प वियोग भी सबको खले बिना न रहता। उन्हे फलवाले पेडोका बडा शौक था। इससे मालीका काम उन्होने अपने ही लिए रख छोडा था। रोज सवेरे बच्चो और बडोसे भी सीचने-सवारनेका काम कराते। वह इतने हँसमुख और स्वभावके इतने आनन्दमय थे कि मशक्कत पूरी कराते, फिर भी उनके साथ काम करना सबको रुचता। जब-कभी रातके दो बजे उठकर टाल्स्टाय फार्मसे जोहान्सबर्गसे जाने वाले निकलते तो मि० केलनवेक इस टोलीमे जरूर होते।

इनके साथ धार्मिक सवाद सदा हुआ करता था। मेरे पास अहिसा, सत्य इत्यादि कामोको छोडकर दूसरी बात हो ही क्या सकती थी ? सर्पादिक मारनेमे भी पाप है, मेरी इस बातसे जैसे मेरे अनेक दूसरे यूरोपियन मित्र पहले चौके थे वैसे ही मि० केलन-बेकको भी धक्का लगा, पर पीछे तात्त्विक दृष्टिसे उन्होने यह सिद्धात स्वीकार कर लिया। हमारे सबधके आरभमे ही उन्होने यह बात मान ली थी कि बुद्धि जिस वस्तुको स्वीकार कर ले उसका आचरण करना उचित और धर्म है। इसीमे वह अपने जीवनमे इतने महत्त्वके परिवर्तन एक क्षणमे बिना किसी हिचक-के कर सके थे। अब अगर सर्पादिका मारना अनुचित है तो

मि० केलनवेकको इच्छा हुई कि उनकी मित्रता सपादन करे। पहले तो उन्होने ऐसी पुस्तके इकट्ठी की जिनसे भिन्न-भिन्न जातिके सर्पोकी पहचान हो सके। उनमे उन्होंने देखा कि सभी साप जहरीले नही होते। कुछ तो खेतोकी फसलकी रक्षा करनेवाले होते है। हम सबने सापोको पहचानना सीख लिया और अतमे एक विशाल अजगरको, जो फार्ममे ही मिल गया था, पाल लिया। उसको सदा अपने ही हाथसे खाना देते। मैने नरमीसे उनके साथ यह दलील की—"यद्यपि आपका भाव शुद्ध है फिर भी अजगर तो उसको पहचाननेसे रहा, क्योकि आपकी प्रीतिके साथ भय मिला हुआ है। उसको खुला रखकर उसके साथ खेलनेकी हिम्मत तो न आपकी है न मेरी और ऐसी हिम्मत ही वह चीज है जिसे हम अपने अदर पैदा करना चाहते है। इसलिए इस सर्पको पालनेमे मै सद्भाव तो देखता हू, पर उसमे अहिसा नही देखता। हमारा व्यवहार तो ऐसा होना चाहिए कि अजगर उसे पहचान सके। प्राणिमात्र भय और प्रीतिको पहचानते है, यह तो हमारा रोजका अनुभव है। फिर इस सापको आप जहरीला तो मानते ही नही। इसके तौर-तरीके, इसकी आदते आदि जाननेके लिए ही उसे कैद कर रखा है। यह एक प्रकारकी विलासिता हुई। मित्रतामे इसके लिए भी स्थान नही है।"

मि० केलनवेकको यह दलील जची, पर उस अजगरको तुरत छोड देनेकी उनकी इच्छा नही हुई। मैने किसी तरहका दवाव नही डाला। सर्पके व्यवहारमे मै भी रस लेने लगा था और वच्चोको तो उसमे अतिशय आनद मिल रहा था, उसको तग करनेकी सभीको मनाही थी, पर इस कैदीने अपना रास्ता खुद निकाल लिया। पिजडेका दरवाजा खुला रह गया हो या उसी ने युक्तिसे खोल लिया हो, चाहे जो कारण हो, दो-चार दिनके अदर ही एक दिन सवेरे मि० केलनवेक अपने कैदी मित्रसे

मिलने गये तो देखते है कि उसका पिजडा खाली है। वह खुश हुए, मै भी हुआ, पर इस प्रयोगके फलस्वरूप सर्प हमारी बातचीतका स्थायी विषय हो गया था।

मि० केलनबेक एक गरीब जर्मनको फार्मपर लाये थे। वह गरीब तो था ही, अपग भी था। उसका कूबड इतना निकल आया था कि लकडीके सहारेके बिना चल ही नही सकता। उसकी हिम्मतकी हद नही थी। शिक्षित होनेसे सूक्ष्म बातोमे बहुत रस लेता था। फार्ममे वह भी हिंदुस्तानियो-जैसा ही होकर सबके साथ हिल-मिलकर रहता था। उसने निर्भय होकर सापोके साथ खेलना शुरू किया। छोटे सापोको तो हाथमे पकडकर ले आता और हथेलीपर रखकर खिलाता भी। फार्म लबे अरसेतक चलता तो इस जर्मनके, जिसका नाम ऑलब्रेस्ट था, प्रयोगका फल क्या होता, यह तो ईश्वर ही जाने।

इन प्रयोगोके फलस्वरूप यद्यपि हमारे मनमे सापोका डर घट गया था, पर कोई यह न समझ ले कि फार्ममे कोई सापसे डरता ही नही था या सर्पादिको मारनेकी सभीको मनाही थी। अमुक वस्तुमे हिसा है या पाप है, यह मान लेना एक बात है और तदनुसार आचरण करनेकी शक्ति होना दूसरी बात है। जिसके मनमे सापका डर बना हो और जो स्वय प्राण त्याग करनेको तैयार न हो वह सकटमे पडनेपर सापको छोडनेवाला नही। फार्ममे ऐसी एक घटना हुई थी जो मुझे याद है। पाठकोने यह तो समझ ही लिया होगा कि वहा सापोका उपद्रव काफी था। हम जब इस फार्ममे गये तब वहा आदमियोकी बस्ती बिलकुल ही नही थी और कुछ अरसेसे योही निर्जन पडा था। एक दिन मि० केलनबेकके ही कमरेमे साप दिखाई दिया और ऐसी जगह जहासे उसे भगाना या पकड लेना नामुमकिन-सा था। फार्मके एक विद्यार्थीने उसको देखा। उसने

मुझे बुलाया और पूछा कि अब क्या करना चाहिए। उसने उसे मारनेकी इजाजत मागी। इस अनुमतिके विना वह सापको मार सकता था, पर आम तौरसे विद्यार्थी या दूसरे लोग भी मुझसे पूछे विना ऐसे काम नही करते थे। मारनेकी इजाजत दे देना मुझे अपना धर्म दिखाई दिया और मैने इजाजत दे दी। यह बात लिखते समय भी मुझे ऐसा नही जान पडता कि यह इजाजत देनेमे मैने कोई गल्ती की। सापको हाथसे पकड लेने या फार्मवासियोको और किसी तरह भयमुक्त कर देनेकी मुझमे शक्ति न थी और आज भी उसे उत्पन्न नही कर सकता हू।

फार्ममे सत्याग्रहियोका ज्वारभाटा आया करता था, यह बात तो पाठक आसानीसे समझ सकते है। कोई सत्याग्रही जेल जानेवाला होता तो कोई-न-कोई उससे छूटकर आया होता। छूटकर आनेवालोमे दो ऐसे आये जिन्हे मजिस्ट्रेटने जाती मुचलकेपर छोडा था और जिन्हे सजा सुननेके लिए अगले दिन अदालतमे हाजिर होना था। वे बैठे बाते कर रहे थे। इतनेमे उनके लिए जो आखिरी ट्रेन थी उसका वक्त हो गया और वे उसे पा सकेगे या नही, यह सदिग्ध हो गया। दोनो जवान थे और अच्छे कसरती थे। वे और हममेसे भी कुछ लोग जो उन्हे विदा करने जानेवाले थे, दौडे। रास्तेमे ही मैने ट्रेनके आनेकी सीटी सुनी। ट्रेन छूटनेकी सीटी हुई तब हम स्टेशनकी बाहरी हदतक पहुच पाये थे। वे दोनो भाई तो अधिकाधिक तेज दौडते जा रहे थे। मै पीछे छूट गया। ट्रेन चल दी। दोनो युवको को दौडते देख स्टेशनमास्टरने चलती ट्रेन रोक दी और उनको बैठा लिया। मैने स्टेशन पहुचकर स्टेशनमास्टरके प्रति कृतज्ञता प्रकट की। इस घटनाका वर्णन करनेमे मैने दो बाते जतायी है. एक तो यह कि सत्याग्रहियोको जेल जाने और प्रतिज्ञा का पालन करनेकी कितनी उत्सुकता होती थी। दूसरी

यह कि स्थानीय कर्मचारियोके साथ उन्होने कैसा मधुर सबध जोड लिया था। ये युवक उस ट्रेनको न पकड सके होते तो अगले दिन अदालतमे हाजिर न हो पाते। उनका कोई दूसरा जामिन नही था। न उनसे रुपये-पैसेकी ही जमानत ली गई थी। वे महज अपनी भलमनसीके विश्वासपर छोडे गये थे। सत्याग्रहियोकी साख इतनी हो गई थी कि उनके खुद जेल जानेसे आतुर होनेके कारण मजिस्ट्रेट उनसे जमानत लेनेकी जरूरत नही समझते थे। इस कारण इन युवक सत्याग्रहियोको ट्रेन छूट जानेके डरसे भारी खेद हुआ था। अत वे वायुवेगसे दौडे। सत्याग्रहके आरभमे अधिकारियोकी ओरसे सत्याग्रहियोको कुछ कष्ट दिये गये थे, यह बात कही जा सकती है। यह भी कह सकते है कि कही-कही जेलके अफसर-अहलकार बहुत ज्यादा सख्त थे, पर लडाई ज्यो-ज्यो आगे बढती गई हमने कुल मिलाकर देखा कि अहलकार पहलेसे कम कडवे हो गये और कुछ तो मीठे भी हो गये और जहा उनके साथ लबा साबका पडा वहा इस स्टेशनमास्टरकी तरह हमारी मदद भी करने लगे। कोई पाठक इससे यह न सोचे कि सत्याग्रहियोने अहलकारोको किसी तरह घूस देकर उनसे सुभीते प्राप्त किये। ऐसे अयोग्य सुभीते प्राप्त करनेकी बात उन्होने कभी सोची ही नही, पर सभ्यताके सुभीते लेनेका हौसला किसको न होगा? और वैसे सुभीते सत्याग्रहियोको कितनी ही जगह मिल सकते थे। स्टेशनमास्टर प्रतिकूल हो तो नियमोकी सीमामे रहते हुए भी मुसाफिरको कितनी ही तरहसे हैरान कर सकता है। ऐसी हैरानियोके खिलाफ आप कोई शिकायत—फरियाद भी नही कर सकते। और वह अनुकूल हो तो कायदेके अदर रहकर भी आपको बहुतसे सुभीते दे सकता है। ऐसी सब सहूलियते हम फार्मके पासके स्टेशन लॉलेके स्टेशनमास्टरसे पा सके थे और इसका कारण था सत्याग्रहियोका सौजन्य, उनका धैर्य और कष्ट-सहन करनेकी उनकी शक्ति।

एक अप्रस्तुत प्रसंगकी चर्चा यहा कर देना सभवत अनुचित न माना जायगा । मुझे भोजनके सुधार और प्रयोग धार्मिक, आर्थिक और आरोग्यकी दृष्टिसे करनेका शौक लगभग ३५ वरससे रहा है। यह शौक आज भी मद नही पडा है। मेरे प्रयोगोका असर मेरे आसपासवालोपर तो पडता ही है। इन प्रयोगोके साथ दवाकी मदद लिये बिना प्राकृतिक—जैसे पानी और मिट्टीके—उपचारोसे रोग मिटानेके प्रयोग भी मै करता था। जब वकालत करता था उन दिनो मवक्किलोके साथ मेरा सबध कौटुबिक-जैसा हो जाता। इससे वे मुझे अपने सुख-दु खमे साथी बनाते। कुछ आरोग्यविषयक मेरे प्रयोगोसे परिचित हो जानेके बाद उस विषयमे मेरी सहायता लेते। ऐसी सहायता लेनेवाले कभी-कभी टल्स्टाय फार्मपर भी चढ आते। यो आनेवालोमें लुटावन नामका एक बूढा था जो उत्तर भारतका रहनेवाला था और पहले गिरमिटमे दक्षिण अफ्रीका आया था। उसकी उम्र ७०के पार होगी। उसे पुराने दमे और खासीकी बीमारी थी। वैद्योके चूर्ण और डाक्टरोके मिक्सचर काफी आजमा चुका था। उन दिनो अपने उपचारोके विषयोमे मेरे विश्वासकी भी कोई सीमा नही थी। मैने कहा कि तुम मेरी सभी शर्तोका पालन करो और फार्मंमे रहो तो मै तुमपर अपने प्रयोगोकी परीक्षा कर सकता हू। यह तो कैसे कह सकता हू कि मैने उसका इलाज करना कबूल किया। लुटावनने मेरी शर्ते मजूर कर ली। उसको तबाकू पीनेका भारी व्यसन था। उससे जो शर्ते कबूल कराई गई थी उनमे एक तबाकू छोड देनेकी भी थी। लुटावनको मैने एक दिनका उपवास कराया। रोज १२ बजे धूपमे कूने बाथ देना शुरू किया। उस वक्त मौसम ऐसा था कि धूपमे बैठा जा सके। भोजनमे थोडा भात, थोडा जैतूनका तेल, शहद और शहदके साथ कभी खीर और मीठी नारगी और कभी अगूर

और भुने गेहूका कहवा देता। नमक-मसाला बिलकुल बद था। जिस मकानमे मै सोता, उसीमे भीतरके हिस्सेमे लुटावनका भी बिस्तर लगता था। बिस्तरमे सबको दो कबल मिलते थे—एक बिछानेके लिए दूसरा ओढनेके लिए। और एक काठका तकिया होता था। एक अठवारा बीता। लुटावनके शरीरमे तेज आया। दमा घटा, खासी भी घटी। पर रातमे दमा और खासी दोनो उठते। मेरा शक तबाकूपर गया। मैने उससे पूछा। लुटावनने कहा—"मै नही पीता।" एक-दो दिन और गये। फिर भी फर्क न पडा तो मैने छिपे तौरपर लुटावनपर निगाह रखनेका निश्चय किया। सभी जमीनपर सोते थे। सर्पादिका भय तो था ही, इसलिए मि० केलनबेकने मुझे बिजलीकी चोरबत्ती (टार्च) दे रखी थी और खुद भी एक रखते थे। इस बत्तीको मै पास रखकर सोता। एक रात मैने तै किया कि बिस्तरपर पडा-पडा जागता रहूगा। दरवाजेके बाहर बरामदेमे मेरा बिस्तर था और दरवाजेके भीतर बगलमे ही लुटावनका लगा था। आधी रातको लुटावनको खासी आई। उसने दियासलाई जलाई और बीडी पीना शुरु किया। मै धीरेसे जाकर उसके बिस्तरके पास खडा हो गया और बत्तीका बटन दबा दिया। लुटावन घबराया, सब समझ गया। बीडी बुझा दी और मेरे पाव पकड लिए। "मैने भारी कसूर किया। अब मै कभी तबाकू न पीऊगा। आपको मैने धोखा दिया। मुझको आप माफ करे।" यह कहते-कहते लुटावनका गला भर आया। मैने उसको तसल्ली दी और कहा कि बीडी न पीनेमे तुम्हारा हित है। मेरे हिसाबसे खासी अबतक चली जानी चाहिए थी। वह नही गई, इसलिए मुझे शक हुआ। लुटावनकी बीडी गई और उसके साथ दो या तीन दिनमे खासी और दमा ढीले पडे, और एक महीनेमे दोनो

चले गये। लुटावनमे खूब तेज-शक्ति-उत्साह आ गया और उसने हमसे विदा मागी।

स्टेशनमास्टरका बेटा, जो दो सालका रहा होगा, टाइफाइड ज्वरसे पीडित हुआ। उन्हे मेरे उपचारोका पता था ही। मुझसे सलाह ली। उस बच्चेको दो दिन तो मैने कुछ भी खानेको नही दिया। तीसरे दिनसे आधा केला, खूब मसला हुआ और उसमे एक चम्मच जैतूनका तेल और दो-चार बूद नीबूका रस डालकर देने लगा। इसके सिवा और सब खुराक बद। रातमे उसके पेटपर मिट्टीकी पट्टी बाधता। यह बच्चा भी चगा हो गया। हो सकता है कि डाक्टरका निदान गलत रहा हो और उसका बुखार टाइफाइड (मियादी) न रहा हो।

ऐसे बहुतेरे प्रयोग मैने फार्ममे किये। उनमेसे एकमे भी विफल होनेकी बात मुझे याद नही है, पर आज वही उपचार करनेकी मेरी हिम्मत नही होती। टाइफाइडके रोगीको जैतूनका तेल और केला देते तो मुझे कपकपी होने लगेगी। १९१८ मे हिदुस्तानमे मुझे आवकी बीमारी हुई और उसीका इलाज मेरे किये न हो सका और मुझे आजतक इसका पता नही कि जो उपचार दक्षिण अफ्रीकामे सफल होते थे वही उपचार हिदुस्तानमे उसी अशमे सफल नही होते इसका कारण मेरे आत्मविश्वासका घट जाना है या यहकि यहाकी जलवायु उन उपचारोके पूरी तरह अनुकूल नही ? मै इतना जानता हू कि इन घरेलू इलाजो और टाल्सटाय फार्ममे रखी गई सादी जिदगीसे कौमके कुछ नही तो भी दो-तीन लाख रुपये बच गये। रहनेवालोमे कौटुबिक भावना उत्पन्न हुई। सत्याग्रहियोको शुद्ध आश्रय-स्थान मिला। बेईमानी और मक्कारीके लिए अवकाश न रहा, मूग और ककडी अलग-अलग हो गई।

ऊपरकी घटनाओंमें वर्णित आहारके प्रयोग आरोग्यकी दृष्टिसे किये गये, पर इस फार्मके अंदर ही मैंने अपने ऊपर एक अतिशय महत्त्वका प्रयोग किया, जो शुद्ध आध्यात्मिक दृष्टिसे था।

निरामिषभोजीकी हैसियतसे हमें दूध लेनेका अधिकार है या नहीं, इस विषयपर मैंने खूब विचार किया था, खूब पढ़ा भी था, पर फार्ममें रहनेके दिनोंमें कोई पुस्तक या अखबार मेरे हाथमें पड़ा जिसमें मैंने देखा कि कलकत्तेमें गाय-भैंसोंका दूध निचोड़कर निकाल लिया जाता है। उस लेखमें फूकेकी निर्दयताभरी और भयानक क्रियाका भी वर्णन था। एक बार मि० केलनबेकके साथ दूध लेनेकी आवश्यकताके बारेमें बात-चीत हो रही थी। उस सिलसिलेमें मैंने इस क्रियाकी बात भी कही। दूधके त्यागके दूसरे अनेक आध्यात्मिक लाभ भी मैंने बताये और कहा कि दूध छोड़ा जा सकता हो तो अच्छा है। मि० केलनबेक अत्यन्त साहसी थे, इसलिए दुग्ध-त्यागके प्रयोगके लिए तुरत तैयार हो गये। उन्हें मेरी बात बहुत पसद आई। उसी दिन हम दोनोंने दूध त्याग दिया और अतमें हम केवल सूखे और ताजे फलोंपर रहने लगे। आगपर पकाई हुई हर तरहकी खुराक त्याग दी। इस प्रयोगका अत क्या हुआ, इसका इतिहास देनेका यह स्थान नहीं है। पर इतना तो कह ही दू कि मैं केवल फल खाकर पाच बरस रहा। इससे न मैंने कोई कमजोरी अनुभव की और न मुझे किसी प्रकारकी व्याधि हुई। इस कालमें मुझमें शारी-रिक काम करनेकी पूरी शक्ति थी, यहातक कि एक दिन-में मैं पैदल ५५ मीलकी यात्रा कर सकता था। दिनभरमें ४० मीलकी मजिल कर लेना तो मामूली बात थी। मेरा दृढ विश्वास है कि इस प्रयोगके आध्यात्मिक परिणाम बड़े सुंदर हुए। इस प्रयोगको अशत त्याग देना पड़ा, इसका दु ख

मुझे सदा रहा है और मै राजनैतिक काम-काजके झमेले-मे जिस हदतक उलझ गया हू उससे छुटकारा पा सकू तो इस उम्रमे और शरीरके लिए जोखिम लेकर भी इसके आध्यात्मिक फलके परीक्षणके लिए फिरसे यह प्रयोग कर देखू। डाक्टरो-वैद्योमे आध्यात्मिक दृष्टिका अभाव होना भी हमारे मार्गमे विघ्नकारक हो गया है ।

पर अब इन मधुर और महत्त्वके सस्मरणोकी समाप्ति करनी होगी । ऐसे कठिन प्रयोग आत्मशुद्धिके सग्रामके अंदर ही किये जा सकते है । आखिरी लडाईके लिए टाल्स्टाय फार्म आध्यात्मिक शुद्धि और तपश्चर्याका स्थान सिद्ध हुआ । इसमे मुझे पूरा सदेह है कि ऐसा स्थान न मिला होता या प्राप्त किया गया होता तो आठ बरसतक हमारी लडाई चल सकी होती या नही, हमे अधिक पैसा मिल सका होता या नही और अतमे जो हजारो आदमी लडाईमे शामिल हुए वे शामिल होते या नही । टालस्टाय फार्मका ढोल पीटनेका नियम हमने नही रखा था । फिर भी जो वस्तु दयाकी पात्र नही थी उसने लोगोके दयाभाव, सहानुभूतिको जाग्रत किया । उन्होने देखा कि हम खुद जो बात करनेको तैयार नही है और जिसे कष्ट-रूप मानते है, फार्मवासी उस बातको कर रहे है । उनका यह विश्वास, १९१३ मे जो फिरसे बडे पैमानेपर लडाई शुरू हुई, उसके लिए बडी पूजीरूप हो गया । इस पूजीके मुआविजेका हिसाब नही हो सकता । मुआवजा कब मिलता है, यह भी कोई नही कह सकता । पर मिलता है इस विषयमे मुझे तो तनिक भी शका नही और मेरा कहना है कि किसीको भी शका नही करनी चाहिए ।

: १२ :

गोखलेकी यात्रा—१

इस तरह टाल्स्टाय फार्ममे सत्याग्रही अपनी जिदगी विता रहे थे और जो कुछ उनके नसीबमे लिखा था उसके लिए तैयार हो रहे थे। युद्ध कब समाप्त होगा इसका न उन्हे पता था, न चिता थी। उनकी प्रतिज्ञा एक ही थी खूनी कानूनके सामने सिर न झुकायगे और ऐसा करते हुए जो कष्ट सिरपर आयगे उन्हे सह लेगे। सिपाहीके लिए लडना ही जीत है, क्योकि इसमे ही वह सुख मानता है और चूकि लडना अपने हाथमे होता है इसलिए वह मानता है कि हार-जीत या सुख-दु ख खुद मुझपर ही अवलबित है। या यो कह सकते है कि पराजय-जैसी चीज उसके शब्दकोषमें होती ही नही। गीताके शब्दोमे कहे तो उसके लिए सुख-दु ख, हार-जीत समान है।

इक्के-दुक्के सत्याग्रही जेल जाया करते थे। जब इसका मौका न हो तब फार्मके वाहरी कामोको देखकर कोई यह नही सोच सकता था कि इसमे सत्याग्रही रहते होगे और वे लडाईकी तैयारी कर रहे होगे। फिर भी कोई नास्तिक वहा आ जाता तो वह मित्र होता तो हमपर तरस खाता और आलोचक होता तो हमारी निदा करता। कहता—"आलस सवार हो गया है। इसीसे जगलमे पडे-पडे रोटिया खा रहे है। जेलसे हार गये है, इसलिए सुदर फलोद्यानमे बसकर नियमित जीवन विता और शहरके झझटोसे दूर रहकर सुख भोग रहे है।" ऐसे आलोचकको कैसे समझाया जाय कि सत्याग्रही अयोग्य रीतिसे नीतिको भग करके जेल जा ही नही सकता ? उसे कौन समझाये कि सत्याग्रहीकी शातिमे, उसके सयममें

ही लडाईकी तैयारी होती है ? उससे कौन कहे कि सत्याग्रही मनुष्यकी सहायताका खयालतक दिलसे निकाल देता है, केवल भगवानका भरोसा रखता है। परिणाम यह हुआ कि जिन्हे किसीने न सोचा था ऐसे सयोग आ उपस्थित हुए या भगवानने भेज दिये। ऐसी सहायता भी मिली जिसकी आशा हम नही रखते थे। हमारी परीक्षा भी अचानक, जब वह हमारी कल्पनासे कोसो दूर थी, आ पहुची और अतमे ऐसी बाह्य विजय भी मिली, जिसको दुनिया समझ सके।

मै अरसेसे गोखले और दूसरे नेताओसे प्रार्थना करता आ रहा था कि दक्षिण अफ्रीका आकर भारतीयोकी स्थितिको देखे। पर कोई आयेगे या नही इस विषयमे मुझे पूरा सदेह था। मि० रिच किसी भी नेताको भेजनेकी कोशिश कर रहे थे, पर जब लडाई बिलकुल ही मद पड गई हो वैसे वक्तमे आनेकी हिम्मत कौन करता ? १९११ मे गोखले विलायतमे थे। उन्होने दक्षिण अफ्रीकाके सग्रामका अध्ययन तो किया ही था। बडी कौसिलमे बहस भी की थी और गिरमिटियोका नेटाल भेजना बद कर देनेका प्रस्ताव भी पेश किया था (२५ फरवरी १९१०), जो पास हुआ। उनके साथ मेरा पत्र-व्यवहार बराबर चल ही रहा था। भारतमत्रीके साथ वह मशविरा भी कर रहे थे और उन्हे यह जता दिया गया था कि वह दक्षिण अफ्रीका जाकर पूरे मसलेको समझना चाहते है। भारतमत्रीने उनके इरादेको पसद किया था। गोखलेने मुझे छ हफ्तेके दौरेकी योजना बनानेको लिख भेजा और दक्षिण अफ्रीकासे विदा होनेकी आखिरी तारीख भी लिख दी। हमारे हर्षका तो पार ही न रहा। किसी भी भारतीय नेताने अबतक दक्षिण अफ्रीकाकी यात्रा नही की थी। दक्षिण अफ्रीकाकी बात तो क्या, हिदुस्तानके बाहरके एक भी देश या उपनिवेशमे प्रवासी

भारतियोकी हालत समझनेके उद्देश्यसे कोई नही गया था। इससे हम सभी गोखले-जैसे महान् नेताके आगमनके महत्त्वको समझ सके और निश्चय किया कि उनका ऐसा स्वागत-सम्मान किया जाय जैसा कभी किसी बादशाहका भी न हुआ हो। दक्षिण अफ्रीकाके मुख्य-मुख्य नगरोमे उनको ले जानेकी बात भी तै की गई। सत्याग्रही और दूसरे हिंदुस्तानी स्वागतकी तैयारीमे खुशीसे शरीक हुए। इस स्वागतमे शामिल होनेके लिए गोरोको भी निमत्रण दिया गया और लगभग सभी जगह वे उसमे सम्मिलित हुए। हमने यह भी तै किया कि जहा-जहा सार्वजनिक सभा की जाय वहा-वहा उस नगरका मेयर स्वीकार करे तो आमतौरसे उसीको सभापतिके आसनपर बिठाया जाय और जहा-जहा मिल सके वहा-वहा टाउनहालमे ही सभा की जाय। रेलवे विभागकी इजाजत लेकर रास्ते-के बडे-बडे स्टेशनोको सजानेका भार भी अपने ऊपर लिया और अधिकाश स्टेशनोके सजानेकी इजाजत भी हासिल कर ली। आमतौरसे ऐसी इजाजत नही दी जाती। स्वागतकी हमारी जबर्दस्त तैयारीका असर अधिकारियोपर हुआ और उसमे जितनी हमदर्दी वह दिखा सके उतनी दिखाई। मिसालके लिए जोहान्सबर्गमे वहाके स्टेशनको सजानेमे ही हमे कोई १५ दिन लग गये होगे, क्योकि वहा हमने एक सुदर चित्रित तोरण बनाया था, जिसका नकशा मि० केलनबेकने तैयार किया था।

दक्षिण अफ्रीका कैसा देश है इसका अदाजा गोखलेको विलायतमे ही हो गया था। भारतमत्रीने दक्षिण अफ्रीकाकी सरकारको गोखलेके रुतबे, साम्राज्यमे उनके स्थान इत्यादिकी सूचना दे दी थी, पर स्टीमर कपनीसे टिकट ले रखने या अच्छा केबिन (कमरा) रिजर्व करा रखनेकी बात किसीको कैसे सूझ सकती? गोखलेकी तबीयत नाजुक तो रहती ही थी।

अत. उन्हे जहाजपर अच्छा केबिन चाहिए था। एकान्त भी जरूरी था। स्टीमर कपनीके यहासे दो टूक जवाब मिला कि ऐसा केबिन हमारे यहा है ही नही। मुझे ठीक याद नही कि गोखलेने खुद या उनके किसी मित्रने इडिया आफिस (भारतमत्रीके दफ्तर) को इसकी खबर दी। कपनीके डाइरेक्टरको इडिया आफिसकी ओरसे पत्र लिखा गया और जहा कोई था ही नही वहा गोखलेके लिए अच्छे-से-अच्छा केबिन हाजिर हो गया। इस प्रारभिक कडवाहटका फल मीठा रहा। स्टीमरके कप्तानको भी गोखलेका सुदर स्वागत करनेकी हिदायत कर दी गई। इससे गोखलेके इस सफर-के दिन आनद और शांतिमे बीते। वह जितने गभीर थे उतने ही आनदी और विनोदी भी थे। जहाजपर होनेवाले खेलो आदिमे वह अच्छी तरह शामिल होते और इससे जहाजके यात्रियोमे खूब लोकप्रिय हो गये थे। यूनियन सरकारने गोखलेसे उसके मेहमान होने और रेलवेका सरकारी सेलून स्वीकार करनेका अनुरोध किया था। मुझसे मशविरा कर लेने-के बाद सेलून और प्रिटोरियामे सरकारका आतिथ्य स्वीकार कर लेनेका निश्चय किया।

गोखले केप टाउन बदरगाहमे जहाजसे उतरनेवाले थे। १९१२ की २२ वी अक्तूबरको वह जहाजसे उतरे। उनका स्वास्थ्य जितना मै सोचता था उससे कही ज्यादा नाजुक था। वह एक खास खूराक ही ले सकते थे। अधिक श्रम भी सहन नही हो सकता था। जो कार्यक्रम मैने बनाया था वह उनसे नही चल सकता था। जितना अदल-बदल हो सकता था उतना किया। वह बदला ही न जा सके तो स्वास्थ्यकी जोखिम उठाकर भी वह सारा कार्यक्रम कायम रखनेको तैयार हो गये। उनसे पूछे बिना कठिन कार्यक्रम बना डालनेमे मैने जो मूर्खता की उसका मुझे बहुत पछतावा हुआ। कुछ

रद्दोबदल तो मैंने किया, पर अधिकाश कार्यक्रम तो ज्यो-का-त्यो कायम रखना ही पडा। गोखलेको अधिक एकान्त मिलना आवश्यक था, यह मै नही समझ सका था। ऐसा एकान्त दिलानेमे मुझे अधिक-से-अधिक कठिनाई पडी। पर सत्यके खातिर मुझे नम्रतापूर्वक इतना तो कहना ही होगा कि रोगियो और बडोकी सेवा करनेका मुझे अभ्यास और शौक था, इससे अपनी मूर्खता जान लेनेके बाद मै प्रबधमे इतना सुधार कर सका कि उन्हे यथेष्ट एकान्त और शाति मिल सके। सारे दौरेमे उनके मत्रीका काम मैने ही किया। स्वय-सेवक ऐसे थे कि उन्हे अधेरी रातमे भी जाकर जवाब ला दे। अत सेवकोके प्रमादसे उन्हे कभी कोई कठिनाई हुई हो, इसकी मुझे याद नही। मि० केलनबेक भी इन स्वयसेवकोमे थे।

केप टाउनमे अच्छी-से-अच्छी सभा होनी चाहिए, यह तो स्पष्ट ही था। श्राइनर-कुटुबके बारेमे मै प्रथम खडमे लिख चुका हू। उसके मुखिया सिनेटर डब्ल्यू० पी० श्राइनरसे इस सभाका सभापतित्व स्वीकार करनेकी प्रार्थना की और उन्होने उसे स्वीकार कर लिया। विशाल सभा हुई। हिदुस्तानी और यूरोपियन बडी सख्यामे उपस्थित हुए। मि० श्राइनरने मधुर शब्दोमे गोखलेका स्वागत किया और दक्षिण अफ्रीकाके हिदुस्तानियोके साथ अपनी हमदर्दी जाहिर की। गोखलेका भाषण छोटा, परिपक्व विचारोसे भरा हुआ, दृढ पर विनययुक्त था। उससे भारतीय प्रसन्न हुए और गोरोका मन गोखलेने हर लिया। अत यह कह सकते है कि गोखलेने जिस दिन दक्षिण अफ्रीकाकी धरतीपर कदम रखा उसी दिन वहाकी पचरगी जनताके हृदयोमे प्रवेश कर गये।

केप टाउनसे जोहान्सबर्ग जाना था। रेलका दो दिनका सफर था। युद्धका कुरुक्षेत्र ट्रासवाल था। केप टाउनसे आते हुए ट्रासवालका पहला बडा सरहदी स्टेशन क्लर्कस्-

डार्प पडता। वहा हिंदुस्तानियोकी आवादी भी खासी थी। इससे वहा और जोहान्स्वर्ग पहुचनेसे पहले रास्तेमे पडनेवाले ऐसे ही दो और नगरोमे भी गोखलेको रोकने और सभामे उपस्थित होनेका कार्यक्रम वनाया गया था। इससे क्लर्कस्‌डॉर्पसे स्पेशल ट्रेनकी व्यवस्था कराई गई। तीनो जगह उन नगरोके मेयरोने सभापतिका आसन ग्रहण किया। कही भी एक घटेसे अधिक समय नही दिया गया। जोहान्स्वर्ग ट्रेन ठीक वक्तपर पहुची, एक मिनटका भी फर्क नही पडा। स्टेशनपर वढिया कालीन आदि विछाये गये थे। एक मच भी वनाया गया था। जोहान्स्वर्गके मेयर मि० एलिस और दूसरे यूरोपियन उपस्थित थे। मि० एलिसने अपनी मोटर इसके लिये पेश की कि गोखले जवतक जोहान्स्वर्गमे रहे तवतक उनकी सवारीमे रहे। गोखलेको मानपत्र स्टेशनपर ही भेट किया गया। मानपत्र तो उन्हे हर जगह ही मिलता। जोहान्स्वर्गका मानपत्र वहीकी खानसे निकले हुए सोनेकी हृदयाकार तख्तीपर खुदा हुआ था जो दक्षिण अफ्रीकाकी वढ़िया लकडी (रोडेशियाकी टीक) पर जड़ी हुई थी। इस लकडीपर ताजमहल और हिंदुस्तानके कुछ दृश्योके चित्र वडी खूवसूरतीसे खोदे गये थे। गोखलेका सवके साथ परिचय कराना, मानपत्र पढना, उसका जवाव देना, दूसरे मानपत्र स्वीकार करना, ये सारे काम २० मिनटके अदर ही निवटा दिये गये। मानपत्र इतना छोटा था कि उसे पढनेमे पाच मिनटसे अधिक नही लगे होगे। गोखलेके उत्तरने भी इससे ज्यादा वक्त नही लिया होगा। स्वयसेवकोका प्रवध इतना सुदर था कि पूर्व निश्चित लोगोसे अधिक एक भी आदमी प्लेटफार्मपर नही आने पाया। शोरगुल विलकुल नही था। वाहर जवर्दस्त भीड थी, फिर भी किसीके आने-जानेमे तनिक भी अडचन नही हुई।

गोखलेको ठहरानेका प्रबध मि० केलनबेकके एक सुदर बगलेमे किया गया था जो जोहान्सबर्गसे पाच मीलके फासलेपर अवस्थित एक पहाडीकी चोटीपर बना हुआ था। वहाका दृश्य इतना सुदर था, शाति इतनी आनददायक थी और बगलेकी बनावट सादी होते हुए भी इतनी कलामय थी कि गोखलेको यह स्थान बहुत ही पसद आया। सब लोगोसे मिलनेका प्रबध शहरमे किया गया था। इसके लिए एक खास दफ्तर किरायेपर लिया गया था। उसमे तीन कमरे थे एक खास कमरा गोखलेके आराम करनेके लिए, दूसरा मुलाकातके लिए और तीसरा मिलनेको आनेवालोके बैठनेके लिए। नगरके कुछ विशेष व्यक्तियोसे निजी मुलाकातके लिए भी हम गोखलेको ले गये थे। प्रमुख यूरोपियनोने भी अपनी एक निजी सभा की थी जिसमे उनके दृष्टिबिदुको गोखले पूरी तरह समझ ले। इसके सिवा जोहान्सबर्गमे उनके सम्मानमे एक बडा भोज भी दिया गया जिसमे ४०० आदमियोको निमत्रण दिया गया था। इनमे १५० के लगभग यूरोपियन होगे। भारतीयोका प्रवेश टिकटसे रखा गया था जिसकी कीमत एक गिनी रखी गई थी। इससे इस दावतका खर्च निकल आया। भोजन शुद्ध निरामिष और मद्यपान-रहित ही था। रसोई भी सारी स्वयसेवकोने ही बनाई थी। इस सुदर आयोजनका चित्र यहा प्रस्तुत कर सकना कठिन है। दक्षिण अफ्रीकामे हमारे भारतीय भाई हिंदू-मुसलमान छुआ-छूत नही जानते। हा, निरामिषभोजी भारतीय अपने निरा-मिषाहारकी रक्षा करते है। हिंदुस्तानियोमे कितने ही ईसाई भी थे। वे बहुत करके गिरमिटिया मा-बापकी सतान है। उनमे-से बहुतेरे होटलोमे खाना पकाने और परसनेका धधा करते है। इन भाइयोकी मददसे ही इतने बडे भोजका प्रबध कर लेना शक्य हुआ। भोजनमे कोई पद्रह प्रकारकी चीजे रही

होगी। दक्षिण अफ्रीकाके यूरोपियनोके लिए यह बिलकुल नया और अचरजभरा अनुभव था। इतने अधिक हिंदुस्तानियोके साथ एक पातमे भोजन करने बैठना, निरामिष भोजन और बिना शराबके काम चला लेना, तीनो अनुभव उनमेसे बहुतोके लिए नये थे। दो तो सभीके लिए नये थे।

इस सम्मेलनमे गोखलेने जो भाषण दिया वह दक्षिण अफ्रीकामे उनका सबसे बडा और सबसे अधिक महत्त्वका भाषण था। वह लगातार ४५ मिनट बोले। इस भाषणकी तैयारीमे उन्होने हमारी पूरी हाजिरी ली थी। उन्होने अपना यह जिंदगीभरका नियम बताया कि स्थानीय लोगोके दृष्टिबिंदुकी अवगणना न हो और उसका जितना लिहाज किया जा सकता है उतना किया जाय, इसलिए मुझे यह बता देनेको कहा कि मै अपनी दृष्टिसे उनसे क्या कहलवाना चाहता हू। यह मुझे लिखकर देना था और इसके साथ यह शर्त थी कि अगर उनके एक वाक्य या विचारका भी वह उपयोग न करे तो मैं बुरा न मानू। वह मजमून न ज्यादा लबा हो न छोटा, फिर भी कोई जरूरी बात छूट न जाय। इन सारी शर्तोका पालन करते हुए मुझे उनके लिए अपने नोट तैयार करने होते थे। यह तो कह ही दू कि मेरी भाषाका तो उन्होने बिलकुल ही उपयोग नही किया। अग्रेजी भाषामे पारगत गोखले मेरी भाषाका कही भी उपयोग करेगे, यह आशा मै रखता ही क्यो? मेरे विचारोका उन्होने उपयोग किया, यह भी मै नही कह सकता। पर उन्होने मेरे विचारोकी उपयोगिता स्वीकार की। इससे मैने मनको यह समझा लिया कि उन्होने किसी तरह मेरे विचारोका उपयोग कर लिया होगा। पर उनकी विचारश्रेणी ऐसी थी कि उन्होने उसमे अपने विचारको कही स्थान दिया या नही, इसका पता आपको चल ही नही सकता था। गोखलेके सभी भाषणोमे मै उपस्थित था, पर मुझे एक भी ऐसा अक्षर याद नही आता

दक्षिण अफ्रीकामें

श्री० गोखले

गांधीजी
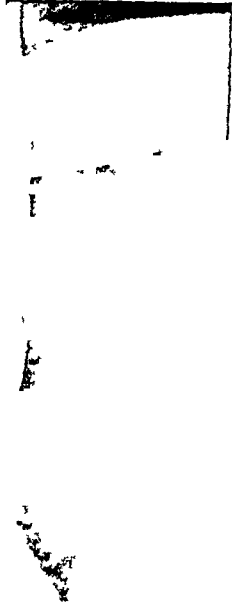
जब मैंने सोचा हो कि उन्होंने अमुक भाव प्रकट नही किया होता या अमुक विशेषणका व्यवहार न किया होता तो अच्छा होता। उनके विचारोकी स्पष्टता, दृढता, विनय इत्यादि उनके अतिशय परिश्रम और सत्यपरायणताका प्रसाद थी।

जोहान्सबर्गमे केवल हिंदुस्तानियोकी विराट् सभा भी होनी ही चाहिए थी। मेरा यह आग्रह पूर्वकालसे ही चला आ रहा है कि हम या तो अपनी मातृभाषामे बोले या राष्ट्रभाषा हिंदुस्तानी-मे। इस आग्रहकी बदौलत दक्षिण अफ्रीकामे भारतीयोके साथ मेरा सबध सरल और निकटका हो गया। इससे मै सोचता था कि हिंदुस्तानियोके साथ गोखले भी हिंदुस्तानीमे ही बोले तो अच्छा है। इस विषयमे गोखलेके विचार मुझे मालूम थे। टूटी-फूटी हिंदीसे वह अपना काम चला ही नही सकते थे। इसलिए या तो मराठीमे बोलते या अग्रेजीमे। मराठीमे बोलना उन्हे बनावटी-सा जान पडा और उससे बोले भी तो गुजराती और उत्तर भारतवाले श्रोताओके लिए उसका हिंदुस्तानी उल्था तो करना ही होता। तो फिर अग्रेजीमे ही क्यो न बोले? सौभाग्यवश मेरे पास एक ऐसी दलील थी जिससे गोखले मराठीमें बोलना मजूर कर ले। जोहान्सबर्गमे कोकणके बहुतसे मुसलमान बसते थे। थोडे महाराष्ट्रीय हिंदू तो थे ही। इन सभीको गोखलेका मराठी भाषण सुननेकी बडी इच्छा थी और उन्होने मुझसे कह रखा था कि गोखलेसे मराठीमे बोलनेकी प्रार्थना करू। मैंने उनसे कहा—"आप मराठीमे बोलेगे तो ये लोग बहुत खुश होगे और आप जो बोलेगे उसका हिंदुस्तानी तरजुमा मैं कर दूगा।" वह खिलखिलाकर हँस पडे और बोले—"तुम्हारा हिंदुस्तानीका ज्ञान तो मै सब जानता हू। यह हिंदुस्तानी तुमको मुबारक हो। पर तुम मराठीका उल्था हिंदुस्तानीमे करने चले हो। यह तो बताओ कि इतनी मराठी तुमने कहा सीखी?" मैंने

जवाव दिया--"जो वात आपने मेरी हिदुस्तानीके वारेमे कही है वही मराठीकी भी समझिए। मराठीका एक अक्षर भी मै वोल नही सकता। पर जिस विपयका मुझे ज्ञान है उस विषयपर आप मराठीमे जो कुछ कहेगे उसका भावार्थ मै जरूर समझ जाऊगा। इतना तो आप देख लेंगे कि मै लोगोके सामने उसका अनर्थ कदापि न करूंगा। मै आपको ऐसे उलथा करनेवाले दे सकता हू जो मराठी अच्छी तरह समझते है, पर शायद आप इसको पसद न करे। अतः मुझे निभा लीजिएगा और मराठीमे ही वोलिएगा। कोकणी भाइयोके जैसी मुझे भी आपका मराठी भापण सुननेकी हवस है।"

"तुम अपनी टेक जरूर रखना। यहा तुम्हारे पाले पडा हू, इसलिए छुटकारा थोडे ही पा सकता हू।" यो कहकर मुझे रिझाया और इसके वाद ऐसी सभाओमे ठेठ जजीवारतक मराठीमे ही वोले और मै उनका विशेप रूपसे नियुक्त भापातरकार रहा। मै नही जानता कि यह वात मै उन्हे कहा तक समझा सका कि मुहावरेदार और व्याकरण-शुद्ध अग्रेजीमे वोलनेकी अपेक्षा यथासभव मातृभापा, यहां तक कि टूटी-फूटी व्याकरण-रहित हिंदीमे ही वोलना मुनासिव है। पर इतना जानता हू कि दक्षिण अफ्रीकामे वह महज मुझे खुश करनेकी खातिर मराठीमे वोले। मराठीमें कुछ भापण देनेके वाद इसके फलसे उन्हे भी प्रसन्नता हुई, यह मै देख सका। गोखलेने दक्षिण अफ्रीकामे अनेक अवसरोपर अपने व्यवहारसे यह दिखा दिया कि जहा सिद्धातका प्रश्न नही वहा अपने सेवकोको प्रसन्न करना गुण है।

: १३ :

गोखलेकी यात्रा—२

जोहान्सबर्गसे हमे प्रिटोरिया जाना था। प्रिटोरियामे गोखलेको यूनियन सरकारकी ओरसे निमन्त्रण था। अन ट्रासवाल होटलमे उसने उनके लिए जो स्थान खाली रखवाया था वही उतरना था। यहा गोखलेको यूनियन सरकारके मन्त्रिमडलसे मिलना था, जिसमे जनरल बोथा और जनरल स्मट्स भी थे। जैसा कि ऊपर बता चुका हू, उनका कार्यक्रम मैने ऐसा बनाया था कि रोज करनेके कामोकी सूचना मै उन्हे सवेरे या वह पूछे तो अगली रातको दे दिया करता था। मन्त्रिमडलसे मिलनेका काम बडी जवाबदेहीका था। हम दोनोने तै किया कि मै उनके साथ न जाऊ, जानेकी इच्छा भी प्रकट न करू। मेरी उपस्थिति-से मन्त्रिमडल और गोखलेके बीच कुछ-न-कुछ पर्दा पड जाता। मन्त्रिगण जी-भरकर स्थानीय भारतीयोकी और इच्छा हो तो मेरी भी जो गलतिया मानते हो उन्हे न बता सकते। वे कुछ कहना चाहते हो तो उसे भी खुले दिलसे न कह सकते, पर इससे गोखलेकी जिम्मेदारी दुगनी हो जाती थी। कोई तथ्यकी भूल हो जाय या वे कोई नया तथ्य सामने रखे और उसका जवाब गोखलेके पास न हो अथवा उन्हे हिंदुस्तानियोकी ओरसे कोई स्वीकृति देनी हो तो उस दशामे क्या करना होगा, यह समस्या उपस्थित हो गई। पर गोखलेने तुरत उसका हल निकाल लिया। मै उनके लिए भारतीयोकी स्थितिका अथसे इति तक खुलासा तैयार कर दू। भारतीय कहातक जानेको तैयार है, यह भी लिख दू। उसके बाहरकी कोई भी बात सामने आये तो गोखले अपना अज्ञान स्वीकार कर ले। यह निश्चय करके वह निश्चित हो गये। अब करना इतना ही रहा कि मै उस तरहका

खुलासा तैयार कर दू और गोखले उसे पढ ले। पर वह उसे पढ ले इतना वक्त तो मैने रखा ही नही था। कितना ही छोटा खुलासा लिखू फिर भी चार उपनिवेशोमे भारतीयोकी स्थितिका इतिहास दस-बीस पन्ने लिखे बिना कैसे दे सकता था। फिर उस खुलासेको पढनेके बाद उनके मनमे कुछ सवाल तो उठते ही। पर उनकी स्मरणशक्ति जितनी तीव्र थी वैसी ही श्रम करनेकी शक्ति अगाध थी। सारी रात जगे और पोलकको और मुझे जगाया। एक-एक बातकी पूरी जानकारी प्राप्त की और उन्होने भी समझा या नही, इसकी जाच भी करा ली। अपने विचार मुझे सुनाते जाते। अतमे उन्हे सतोष हुआ। मै तो निर्भय था ही।

लगभग दो घटे या इससे कुछ अधिक वह मत्रिमडलके पास बैठे और लौटकर मुझसे कहा—"तुम्हे एक बरसके अदर हिंदुस्तान लौट आना है। सब बातोका फैसला हो गया। खूनी कानून रद होगा। इमिग्रेशन कानूनसे वर्णभेद निकाल दिया जायगा। तीन पौडका कर उठा दिया जायगा।" मैने कहा, "मुझे इसमे पूरी शका है। मत्रिमडलको जितना मै जानता हू उतना आप नही जानते। आपका आशावाद मुझे प्रिय है, क्योकि मै खुद भी आशावादी हू, पर अनेक बार धोखा खा चुका हू। इसलिए इस विषयमे आपकी जितनी आशा मै नही रख सकता। पर मुझे कोई डर नही। आप मत्रिमडलसे वचन ले आये, इतना ही मेरे लिए काफी है। मेरा धर्म तो इतना ही है कि जब आवश्यक हो तब लड लू और यह साबित कर दू कि हमारी लडाई न्यायकी है। इसकी सिद्धिमे आपको मिला हुआ वचन हमारे लिए बहुत लाभजनक होगा, और लडना पडा ही तो लडनेमे उससे हमारा बल दूना हो जायगा। पर अधिक भारतीयोके जेलमे गये बिना और एक सालके अदर मै हिंदुस्तान लौट सकता हू, ऐसा मुझे नही दिखाई देता।"

यह सुनकर वह बोले—"मैं तुमसे जो कहता हू उसमे फर्क पडनेवाला नही । मुझे जनरल बोथाने वचन दिया है कि खूनी कानून रद कर दिया जायगा और तीन पौडका कर उठा दिया जायगा । तुम्हे बारह महीनेके अदर हिदुस्तान लौटना ही होगा । मैं तुम्हारा एक भी बहाना सुननेवाला नही ।"

जोहान्सबर्गका भाषण प्रिटोरियाकी यात्राके बाद हुआ था ।

ट्रासवालसे गोखले डर्बन, मेरित्सबर्ग आदि स्थानोमे गये । वहा भी बहुतसे यूरोपियनोसे मिले-जुले । किम्बरलीकी हीरेकी खान भी देखी । किम्बरली और डर्बनमे भी स्वागत-मडलकी ओरसे जोहान्सबर्गकी जैसी दावते की गई और उनमे भी बहुतसे यूरोपियन सम्मिलित हुए । यो भारतीय और यूरोपियन दोनोके मन हर कर गोखलेने १९१२की १७वी नवबरको दक्षिण अफ्रीकाके समुद्र-तटसे प्रस्थान किया । उनकी इच्छासे मैं और मि० केलनबैक जजीबारतक उन्हे पहुचाने गये । स्टीमरपर उनके लिए ऐसे भोजनका प्रबध कर दिया था जो उनकी प्रकृतिके अनुकूल हो । रास्तेमे डेलागोआ बे, इनहामबेन, जजीबार आदि बदरगाहोपर भी उनका खूब सम्मान किया गया ।

स्टीमरपर हमारे बीच होनेवाली बातचीतका विषय केवल हिदुस्तान या उसके प्रति हमारा धर्म ही होता । उनकी हर बातमे उनकी कोमल भावना, उनकी सत्यपरायणता और उनका स्वदेशाभिमान झलक उठता । मैने देखा कि स्टीमरपर वह जो खेल खेलते उनमे भी खेलकी बनिस्बत हिदुस्तानकी सेवाका भाव अधिक होता । उसमे भी सपूर्णता तो होनी ही चाहिए थी ।

स्टीमरपर हमे इतमीनानसे बाते करनेकी फुरसत तो रहती ही । इन वार्तालापोमे उन्होने मुझे हिदुस्तानके लिए तैयार किया । भारतके हरएक नेताके चरित्रका विश्लेषण

करके दिखाया। उनका विश्लेषण इतना सही था कि उन नेताओके विषयमें जो कुछ मैने स्वय अनुभव किया उसमें और गोखलेके आलेखनमे शायद ही कही फर्क पाया हो।

गोखलेकी दक्षिण अफ्रीकाकी यात्रामे उनके साथ मेरा जो सबंध रहा उसके कितने ही पवित्र सस्मरण ऐसे है जो यहा दिये जा सकते है, पर सत्याग्रहके इतिहासके साथ उनका संबध नही है, इससे मुझे अनिच्छापूर्वक अपनी कलम रोकनी पड रही है। जजीबारमे हुआ वियोग मेरे और मि० केलनबेक दोनोके लिए अतिशय दु खदायी था, पर यह सोचकर कि देहधारियोके निकट-से-निकट सबधका भी एक दिन अत होता ही है हमने धैर्य धारण किया और दोनोने यह आशा रखी कि गोखलेकी भविष्यवाणी सत्य होगी और हम दोनो एक वरसके अदर हिदुस्तान जा सकेगे। पर यह अनहोनी बात निकली।

फिर भी गोखलेकी दक्षिण अफ्रीकाकी यात्राने हमे अधिक दृढ किया और कुछ दिन बाद जब युद्ध फिर अधिक तीव्ररूपमे आरभ हुआ तब इस यात्राका मर्म और उसकी आवश्यकता हम अधिक समझ सके। गोखले दक्षिण अफ्रीका न गये होते और मत्रिमडलसे न मिले होते तो तीन पौडके करको हम युद्धका विषय न वना सके होते। अगर खूनी कानून रद हो जानेपर सत्याग्रह-की लडाई बद हो जाती तो तीन पौडके करके लिए हमे नया सत्या-ग्रह करना पडता और उसे करनेमे अपार कष्ट सहन करना पडता। इतना ही नही, लोग तुरत दूसरे सत्याग्रहके लिए तैयार होते या नही, इसमे भी शका ही थी। इस करको रद कराना स्वतत्र भारतीयोका फर्ज था। इसके लिए अर्जिया भेजना आदि सव वैध उपाय किये जा चुके थे। १८९५से यह कर अदा किया जा रहा था। पर कैसा ही घोर कष्ट क्यो न हो, वह लवे अरसेतक वना रहे तो लोग उसके आदी हो जाते है और उसके विरोध करनेका धर्म उन्हे समझाना कठिन हो जाता है,

दुनियाको उसकी घोरता समझाना भी उतना ही कठिन हो जाता है। गोखलेको मिले हुए वचनने सत्याग्रहियोंका रास्ता साफ कर दिया। या तो सरकार अपने वचनके अनुसार उक्त करको उठा दे, नहीं तो यह वचन-भंग ही लड़ाईका सबल कारण हो जाता। हुआ भी ऐसा ही। सरकारने एक बरसके अंदर कर नहीं उठाया। इतना ही नहीं, साफ कह दिया कि वह हटाया नहीं जा सकता।

अतः गोखलेकी यात्रासे तीन पौंडके करको सत्याग्रहके जरिये हटवानेमें हमें मदद तो मिली ही, इस यात्रासे वह दक्षिण अफ्रीकाके प्रश्नके विशेषज्ञ मान लिये गये। दक्षिण अफ्रीकाके बारेमें अब उनके कथनका वजन भी बढ़ गया। साथ ही दक्षिण अफ्रीकामें बसनेवाले भारतीयोंके विषयमें निजी जानकारी हो जानेके कारण इस बातको अधिक समझने लगे कि हिंदुस्तानको उनके लिए क्या करना चाहिए और हिंदुस्तानको यह बात समझानेमें उनकी शक्ति तथा अधिकार बहुत बढ़ गया। हमारी लड़ाई जब फिर छिड़ी तो हिंदुस्तानसे पैसेकी वर्षा होने लगी और लार्ड हार्डिंजने सत्याग्रहियोंके साथ अपनी गहरी और ज्वलन्त सहानुभूति दरसाकर उन्हें प्रोत्साहन दिया। हिंदुस्तानसे मि० एंड्रूज और मि० पियर्सन दक्षिण अफ्रीका गये। गोखलेकी यात्राके बिना ये सभी बातें असंभव होतीं।

वचन-भंग कैसे हुआ और उसके बाद क्या हुआ, यह नये प्रकरणका विषय है।

: १४ :

वचन-भंग

दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रह-संग्राममें इतने सूक्ष्म विचार-

से काम लिया जा रहा था कि प्रचलित नीतिके विरुद्ध एक भी कदम नही उठाया जाता। इतना ही नही, वल्कि इस वातका भी ध्यान रखा जाता कि सरकारको अनुचित रीतिसे कष्ट न पहुचाया जाय। मिसालके लिए, खूनी कानून केवल ट्रासवालके हिंदुस्तानियोपर लागू किया गया था। इससे सत्याग्रह-नीतिमे केवल ट्रासवालके भारतीय ही दाखिल किये जाते थे। नेटाल, केप कोलोनी इत्यादिसे सत्याग्रहियोको भरती करनेका कुछ भी प्रयत्न नही किया गया, वल्कि वहासे आये हुए इसके प्रस्ताव भी लौटा दिये गये। लडाईकी मर्यादा भी इस कानूनको रद करानेतक ही थी। इस वातको न गोरे समझ सकते थे, न भारतीय। आरभमे भारतीयोकी ओरसे यह माग हुआ करती थी कि अगर लडाई शुरू करनेके वाद खूनी कानूनके अतिरिक्त और कष्टोको भी हम उसके उद्देश्योमे शामिल कर सकते हो तो क्यो न कर ले? मैने उन्हे धीरजके साथ समझाया कि इसमे सत्यका भंग होता है और जिस युद्धमे सत्यका ही आग्रह हो उसमे उसके भगकी वात कैसे सोची जा सकती है? शुद्ध युद्धमे तो लडते-लडते लडनेवालोका वल वढता हुआ दिखाई दे तो भी युद्ध आरंभ करते समय जो उद्देश्य नियत किये गये हो उनसे आगे जा ही नही सकते। दूसरी ओर लडनेका वल अगर दिन-दिन छीजता दिखाई दे तो भी जिस हेतुके लिए लडाई छेडी गई हो उसका त्याग नही किया जा सकता। इन दोनो सिद्धांतोपर दक्षिण अफ्रीकामे पूरी तरह अमल किया गया। युद्ध आरभ करते समय जिस वलके भरोसे हमने युद्धका लक्ष्य नियत किया हमने देखा कि आगे चलकर वह वल झूठा निकला, फिर भी जो मुट्ठीभर सत्याग्रही वच रहे थे वे युद्धका त्याग नही कर सके। इस प्रकार लडना अपेक्षाकृत आसान होता है और वलमे वृद्धि होते हुए भी उद्देश्यमे

वृत्ति न करना उससे कही कठिन होता है। इसमे अधिक समय दरकार होता है। ऐसे प्रलोभन दक्षिण अफ्रीकामे अनेक बार हमारे सामने आये पर मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हू कि उनका लाभ हमने एक बार भी नही उठाया और इसीमे मैने अक्सर कहा है कि सत्याग्रहीके लिए एक ही निश्चय होता है। वह उसे न घटा सकता है, न बढ़ा सकता है। उसमे न क्षयका अवकाश होता है और न वृद्धिका। आदमी जो पैमाना अपने लिए तैयार करता है, दुनिया भी उसको उसी पैमानेसे नापती है। सरकारने जब जान लिया कि सत्याग्रही ऐसी सूक्ष्म नीति बरतनेका दावा करते है तब उसने उनके ही पैमानेसे उनको नापना शुरू कर दिया, हालाकि वह खुद उस नीतिके एक भी नियम-सिद्धान्तसे अपने आपको बधा नही मानती थी। उसने सत्याग्रहियोपर दो-चार बार नीति-भगका इल्जाम लगाया। खूनी कानूनके बाद हिदुस्तानियोके खिलाफ कोई नया कानून बन जाय तो उसका समावेश सत्याग्रहके हेतुओमे हो जाता है, इस बातको एक बच्चा भी समझ सकता है। फिर भी जब नये दाखिल होनेवाले हिदुस्तानियोपर नया प्रतिबध लगाया गया और वह लड़ाईके हेतुओमे शामिल कर लिया गया तब सरकारने उनपर युद्ध-हेतुओमे नये विष-योको शामिल करनेका इल्जाम लगाया। यह आरोप सोलहो-आने अनुचित था। अगर नये आनेवाले हिदुस्तानियोपर ऐसी रुकावटे लगाई गई जो पहले नही थी तो उनको भी युद्धके हेतुओमे शामिल करनेका हक हमे होना ही चाहिए था और हम देख चुके है कि सोराबजी वगैरह इसीलिए ट्रान्सवालमे दाखिल हुए। सरकारको यह बात बर्दाश्त नही हो सकती थी। पर निष्पक्ष लोगोको इस कदमका औचित्य समझानेमें मुझे तनिक भी कठिनाई नही हुई।

गोखलेकी रवानगीके बाद ऐसा मौका फिर आया।

गोखलेने तो सोचा था कि तीन पौडका कर एक बरसके अंदर रद हो ही जायगा और उनके जानेके बाद यूनियन पार्लमेटका जो अधिवेशन होगा उसमे उसे उठा देनेके कानून-का मसविदा पेश कर दिया जायगा। इसके बदले जनरल स्मट्सने यह प्रकट किया कि नेटालके यूरोपियन यह कर उठा देनेको तैयार नही है, इसलिए यूनियन सरकार उसे रद करनेका कानून पास करनेमे असमर्थ है। वस्तुत ऐसी कोई बात नही थी। यूनियन पार्लमेटमे चारो उपनिवेशोके प्रति-निधि बैठते है। अकेले नेटालके सदस्योकी उसमें कुछ नही चल सकती थी। फिर मत्रिमडलके पेश किये हुए बिलको पार्ला-मेट नामजूर करे वहातक पहुचाना जरूरी था। जनरल स्मटसने इसमेसे कुछ भी नही किया। इससे हमे इस क्रूर करको युद्धके कारणोमे सम्मिलित कर लेनेका सुयोग सहज ही मिल गया। इसके लिए हमे दो कारण मिले: एक तो यह कि चलती लडाईके दरमियान सरकारकी ओरसे कोई वचन दिया जाय और फिर उस वचनका भग किया जाय तो यह वचन-भग चलते सत्याग्रहके कार्य-क्रममें दाखिल हो जाता है। दूसरा यह कि हिंदुस्तानके गोखले-सरीखे प्रतिनिधिको दिया हुआ वचन तोडा जाय तो यह उनका ही नही, सारे हिंदुस्तानका अपमान है और यह अपमान सहन नही किया जा सकता। केवल पहला ही कारण होता और सत्याग्रहियोमे शक्ति न होती तो उक्त करको रद करनेके लिए सत्याग्रह करना वह छोड सकते थे। पर जब उससे हिंदुस्तानका अपमान हो रहा हो तब तो उसे सहन कर लेना संभव ही नही था। इसलिए तीन पौडके करको युद्धके कार्य-क्रममे शामिल कर लेना सत्याग्रहियोको फर्ज जान पडा और जब तीन पौडके करको युद्धके हेतओमे स्थान मिल गया तब गिरमिटिया हिंदुस्तानियोको भी सत्याग्रहमे सम्मिलित होनेका मौका मिल गया। पाठकोंको

यह बात ध्यानमे रखनी चाहिए कि अबतक ये लोग लडाईमे वाहर ही रखे गये थे। अत एक ओर तो लडाईका बोझ बढा और दूसरी ओर लडनेवालोके भी बढनेका समय आया हुआ दिखाई दिया।

गिरमिटियोसे अवतक सत्याग्रहकी शिक्षा देनेकी तो बात ही क्या, लडाईकी चर्चातक नही की गई थी। वे निरक्षर थे, इसलिए 'इडियन ओपीनियन' या दूसरे अखवार कहासे पढ सकते थे? फिर भी मैने देखा कि ये गरीब लोग सत्याग्रहका निरीक्षण कर रहे थे और जो कुछ हो रहा था उसको समझ रहे थे। कुछको इस लडाईमे शामिल न हो सकनेका दुःख भी था। पर जब वचन-भंग हुआ और तीन पौडका कर भी युद्धके हेतुओमे शामिल किया गया तब उनमे-से कौन लडाईमे शामिल होगा, इसका मुझे कुछ भी पता नही था।

वचन-भगकी बात मैने गोखलेको लिखी। उन्हे अत्यन्त दुःख हुआ। मैने उन्हे लिखा कि आप निश्चित रहे, हम मरते दमतक लडेगे और इस करको रद कराके रहेगे। हां, एक बरसके अदर जो मुझे हिंदुस्तान लौटना था वह टला और पीछे कब लौट सकूगा यह कहना अशक्य हो गया। गोखले तो अकशास्त्री थे। उन्होने मुझसे पूछा कि तुम्हारे पास अधिक-से-अधिक और कम-से-कम कितने लडनेवाले हो सकते है और उनके नाम मागे। जहातक मुझे याद है, मैने अधिक-से-अधिक ६५ या ६६ और कम-से-कम १६ नाम भेजे थे। मैने यह भी लिख दिया कि इतनी छोटी सी तादादके लिए मै हिंदुस्तानसे पैसेकी मददकी अपेक्षा नही रखूगा। यह विनती भी की कि हमारे बारेमे आप निश्चित रहे और अपने शरीरको अधिक कष्ट न दे। मै अखवारोके जरिये और दूसरे तौरपर भी जान चुका था कि दक्षिण अफ्रीकासे बबई वापस जानेपर गोखलेपर

कमजोरी दिखाने इत्यादिके आक्षेप किये गये थे। इससे मैं चाहता था कि हिंदुस्तानमे हमे पैसा भेजनेके लिए वह कुछ भी आदोलन न करे। पर गोखलेसे मुझे यह कडा जवाव मिला—"जैसे तुम लोग दक्षिण अफ्रीकामे अपना फर्ज समझते हो वैसे हम भी कुछ अपना फर्ज समझते होगे। हमे क्या करना उचित है, यह तुमको वतानेकी आवश्यकता नही है। मै तो महज वहांकी स्थिति जानना चाहता था। हमारी ओरसे क्या होना चाहिए इस वारेमे सलाह नही मागी थी।" इन शव्दोका मर्म मै समझ गया। इसके बादसे मैने इस विषयमे एक शव्द भी नही कहा और न लिखा। उन्होने इसी पत्रमे मुझे आश्वासन दिया और चेतावनी भी दी। उन्हे डर था कि जब सरकारने इस तरह वचन-भग किया है तब लडाई वहुत लवी होगी और ये मुट्ठीभर आदमी कवतक उसमे लोहा ले सकेगे। इधर हम लोगोने अपनी तैयारिया शुरू की। इस बारकी लडाईमे शातसे वैठना तो हो ही नही सकता था। हमने यह भी समझ लिया कि इस वार सजाए लवी होगी। अत टाल्स्टायफार्म वद कर देनेका निश्चय किया गया। मर्दोके जेलसे छूटनेके वाद कुछ कुटुव अपने-अपने घर चले गये। जो लोग वाकी रह गये थे उनमे अधिकाश फिनिक्स आश्रमके थे। अत निश्चय हुआ कि आगेसे सत्याग्रहियोका केन्द्र फिनिक्स ही हो। तीन पौंड-के करकी लडाईके अदर अगर गिरमिटिये शामिल हुए तो उनसे मिलना-जुलना नेटालमे अधिक सुभीतेसे हो सकता था। इस खयालसे भी फिनिक्सको केन्द्र वनाना तै हुआ।

लडाई शुरू करनेकी तैयारी चल ही रही थी कि इतनेमे एक नया विघ्न उपस्थित हो गया, जिससे स्त्रियोको भी लडाईमे शामिल करनेका मौका मिला। कुछ वीर स्त्रिया उसमे शामिल होनेकी मांग पहले ही कर चुकी थी और जव विना परवाना दिखाये फेरी करके जेल जाना आरभ हुआ तव फेरी करने-

वालोकी स्त्रियोने भी जेल जानेकी इच्छा प्रकट की थी। पर उस वक्त परदेशमे स्त्रीवर्गको जेल भेजना हम सबको अयोग्य जान पडा। उन्हे जेल भेजनेका कारण भी नही दिखाई दिया और उन्हे जेल ले जानेकी मेरी तो उस वक्त हिम्मत भी नही थी। इसके साथ-साथ यह भी दिखाई दिया कि जो कानून खास तौरसे मर्दोपर ही लागू होता हो उसको रद करानेमे स्त्रियो-को रोकना मर्दोके लिए जिल्लतकी बात होगी। पर इस वक्त एक ऐसी घटना हुई जिसमे स्त्रियोका खास तौरसे अपमान होता था और हमे जान पडा कि इस अपमानको दूर करनेके लिए स्त्रिया भी बलिदान हो जाए तो अनुचित न होगा।

: १५ :

ब्याह ब्याह नही रहा

मानो अदृश्य रहकर ईश्वर हिदुस्तानियोकी जीतका सामान तैयार कर रहा हो और दक्षिण अफ्रीकाके गोरोके अन्यायको अधिक स्पष्ट रीतिसे प्रकट कर देना चाहता हो, दक्षिण अफ्रीकामे एक ऐसी घटना हुई जिसकी सभावना किसीको भी नही थी। हिदुस्तानसे बहुतेरे विवाहित लोग दक्षिण अफ्रीका गये थे और कुछने वही ब्याह किया था। हिदुस्तानमे सामान्य ब्याहोकी रजिस्टरी करानेका कानून तो है ही नही। धार्मिक क्रिया ही काफी समझी जाती है। दक्षिण अफ्रीकामे भी हिदुस्तानियोके लिए यही प्रथा होनी चाहिए थी। हिदुस्तानी चालीस बरससे उस देशमे बस रहे थे। फिर भी हिदुस्तानके भिन्न-भिन्न धर्मोके अनुसार हुए ब्याह नाजायज नही समझे गये थे। पर इस वक्त एक मुकदमा ऐसा हुआ जिसमे केप सुप्रीमकोर्टके एक न्यायाधीशने यह फैसला

दिया कि दक्षिण अफ्रीकाके कानूनमे वही व्याह जायज माना जायगा जो ईसाई धर्मकी रीतिसे सपन्न हुआ हो और जिसकी रजिस्टरी विवाहके अधिकारी (रजिस्ट्रार आव मेरिजेज) के यहा करा ली गई हो। अर्थात् हिंदू, मुसलमान, पारसी इत्यादि धर्मोंकी विधिसे हुए व्याह इस भयंकर निर्णयसे दक्षिण अफ्रीकामे रद्द हो गये और बहुत-सी विवाहिता भारतीय महिलाओका दरजा दक्षिण अफ्रीकामे अपने पतिकी धर्म-पत्नीका न रहकर रखेलीका हो गया और उनकी सतानको बापकी कमाई पानेका हक भी नही रहा। यह स्थिति न स्त्रियो-को सहन हो सकती थी, न पुरुषोको। दक्षिण अफ्रीकामे बसने-वाले हिंदुस्तानियोमे भारी खलबली मची। मैंने अपने स्वभावके अनुसार सरकारसे पूछा कि सरकार न्यायाधीशके इस निर्णयको मान लेगी या कानूनका उन्होने जो अर्थ किया है वह सही हो तो भी वह अनर्थ है यह समझकर नया कानून बनाकर हिंदू-मुसलमान इत्यादि धर्मोंकी विधिसे हुए व्याहोको जायज मान लेगी? सरकारका भाव इस वक्त ऐसा नही था कि वह हमारी बातकी परवा करती। इसलिए जवाब इन्कारी का मिला।

उक्त निर्णयके विरुद्ध अपील की जाय या नही, इसपर विचार करनेके लिए सत्याग्रह-मडलकी बैठक हुई। अतमे सभीने निश्चय किया कि ऐसे मामलेमे अपील हो ही नही सकती। अपील करनी ही हो तो सरकार करे या वह चाहे तो अपने वकील (एटर्नी जनरल) की मारफत खुले तौरपर हिंदुस्ता-नियोका पक्ष ले, तभी हिंदुस्तानी अपील कर सकते है। इसके बिना अपील करना हिंदू-मुसलमान विवाहोका नाजायज ठहरा दिया जाना सहन कर लेना-सा होगा। फिर अपील की गई और उसमे हमारी हार हुई तो सत्याग्रह करना ही होगा। अत ऐसे अपमानके बारेमे अपील की ही नही जा सकती।

अब ऐसा वक्त आ गया जब शुभतिथि या मगलमुहूर्तकी राह देखी जा ही नही सकती थी। स्त्रियोका अपमान होनेके बाद धीरज कैसे रहता? थोडे या बहुत जितने भी आदमी मिल जाए उन्हीको लेकर तीव्र रूपमे सत्याग्रह आरभ करनेका निश्चय किया गया। अब स्त्रियोका लडाईमे शामिल होना रोका नही जा सकता था। इतना ही नही, हमने उन्हे लडाईमे शामिल होनेका निमत्रण देनेका निश्चय किया। पहले तो जो बहने टाल्स्टाय फार्ममे रह चुकी थी उन्हीको निमत्रण दिया गया। वे बहने तो लडाईमे शामिल होनेको बेचैन हो रही थी। मैने उन्हे लडाईकी सभी जोखिमे बता दी। खाने-पीने, कपडे-लत्ते, सोने-बैठनेमे पाबदिया होगी, यह समझा दिया। यह चेतावनी दे दी कि जेलमे उन्हे सख्त मशक्कत करनी होगी। कपडे धुलवाये जाएगे। अमले अपमान करेगे। पर ये बहने एक भी बातसे नही डरी। सभी बहादुर थी। एकके तो कई महीनेका गर्भ था। कुछकी गोदमे बच्चे थे, पर उन्होने भी शामिल होनेका आग्रह किया और उनमेसे किसीको भी रोक सकना मेरे बसकी बात नही थी। ये सभी बहनें तामिल थी। उनके नाम ये हैं—

१ श्रीमती थबी नायडू, २ श्रीमती एन० पिल्ले, ३ श्रीमती के० मुरगेसा पिल्ले, ४ श्रीमती ए० पी० नायडू, ५ श्रीमती पी० के० नायडू, ६ श्रीमती चिन्नस्वामी पिल्ले, ७ श्रीमती एन एस पिल्ले, ८ श्रीमती मुदलिगम्, ९ श्रीमती भवानी दयाल, १० श्रीमती एम० पिल्ले, ११ श्रीमती एम० बी० पिल्ले।

इनमेसे ६ बहनोकी गोदमे बच्चे थे।

अपराध करके जेल जाना आसान है। निर्दोष होते हुए अपने आपको गिरफ्तार कराना कठिन है। अपराधी गिरफ्तार होना नही चाहता, इससे पुलिस उसके पीछे

लगी रहती है और उसे पकडती है। पर जो अपनी खुशीसे और निरपराध होते हुए जेल जाना चाहता है उसको पुलिस तभी पकडती है जब वह इसके लिए लाचार हो जाती है। इन बहनोका पहला यत्न विफल हुआ। उन्होने बिना परवानेके ट्रासवालमे दाखिल होकर फेरी की, पर पुलिसने उन्हे गिरफ्तार करनेसे इन्कार किया। उन्होने फ्रीनिखनसे ऑरेजिया (आरेंज फ्री स्टेट) की सरहदमे बिना अनुमतिके प्रवेश किया। फिर भी किसीने उन्हे न पकडा। अब स्त्रियोके सामने यह सवाल खडा हो गया कि वह किस तरह अपने आपको गिरफ्तार कराए। ज्यादा मर्द गिरफ्तार होनेको तैयार नही थे और जो थे उनके लिए अपने आपको गिरफ्तार कराना आसान नही था।

हमने वह कदम उठानेका निश्चय किया जिसे आखिरके लिए सोच रखा था। यह कदम बडा प्रभावकारी सिद्ध हुआ। मैंने सोच रखा था कि युद्धके अतिम पर्वमे फिनिक्सके अपने सभी साथियोको होम दूगा। यह मेरे लिए अतिम त्याग था। फिनिक्समे रहनेवाले मेरे अतरग सहयोगी और सबधी थे। खयाल यह था कि अखबार चलानेके लिए जितने आदमी चाहिए उतने आदमियो और सोलह बरससे नीचेके लडके-लडकियोको छोडकर बाकी सबको जेल-यात्राके लिए भेज दे। इससे अधिक त्याग करनेके साधन मेरे पास नही थे। गोखलेको लिखते हुए जिन सोलह आदमियोका उल्लेख किया था वे इनमेसे ही थे। इस मडलीको सरहद लाघ कर ट्रासवालमे बिना परवानेके प्रवेश करनेके अपराधके लिए गिरफ्तार कराना था। डर था कि अगर इस कदमकी 'बात पहले ही प्रकट कर दी गई तो सरकार उनको नही पकडेगी। इसलिए दो-चार मित्रोको छोडकर और किसीको मैंने यह बात नही बताई थी। सरहद लाघते समय पुलिस-अफसर सदा

नाम-धाम पूछा करता था। इस वक्त उसको नाम-पता न वताना भी हमारी योजनाके अदर था। पुलिस-अफसरको नाम-धाम न बताना भी एक जुदा अपराध माना जाता था। डर था कि नाम-पता वतानेमे पुलिस यह जान गई कि वे मेरे सगे-सवधियोसे है तो वह उन्हे गिरफ्तार नही करेगी। इससे नाम व ठिकाना न वतानेकी वात सोची गई थी। इस कदमके साथ-साथ उन वहनोको नेटालमे दाखिल होना था जो ट्रासवालमे दाखिल होनेका विफल प्रयत्न कर रही थी। जैसे नेटालसे परवानेके विना ट्रासवालमे दाखिल होना अपराध था वैसे ही ट्रासवालसे नेटालमे विना परवानेके दाखिल होना भी अपराध था। इसलिए हमने तै किया था कि पुलिस इन वहनोको पकडे तो ये अपने आपको नेटालमे गिरफ्तार करा दे और न पकडे तो नेटालके कोयलेकी खानोके केन्द्र न्यूकैसलमे जाकर वहाके गिरमिटिया मजदूरोसे खानोसे निकल आनेका अनुरोध करे। इन वहनोकी मातृभापा तामिल थी। थोडी वहुत हिंदुस्तानी भी आती ही थी। मजदूरवर्गका वडा भाग मद्रास इलाकेका और तामिल-तैलगू वोलनेवाला था। उत्तरी हिंदुस्तानवाले भी काफी थे। मजदूर इन वहनोकी वात सुनकर काम छोड दे तो सरकार मजदूरोके साथ-साथ उन्हे भी गिरफ्तार किये विना नही रहती। इसीसे मजदूरोमे और ज्यादा जोश पैदा होनेकी पूरी सभावना थी। इस प्रकारकी व्यूह-रचना मनमे करके मैने उसे ट्रासवालकी वहनोको समझा दिया था।

इसके वाद मै फिनिक्स गया। वहा सवके साथ वैठकर वाते की। पहले तो वहा रहनेवाली वहनोके साथ मशविरा करना था। वहनोको जेल भेजनेका कदम वडा भयानक है। यह मै जानता था। फिनिक्समे रहनेवाली अधिकाश वहने गुजराती थी। अत उन्हे उक्त ट्रासवालकी वहनोकी तरह

मुस्तैद या अनुभवी नही मान सकते थे। इसके सिवा यह बात भी थी कि उनमेसे अधिकाश मेरी रिश्तेदार थी। इसलिए हो सकता था कि मेरी लाज रखनेके लिए ही जेल जानेकी बात सोचे और पीछे कसौटीके समय डरकर या जेलमे जानेके बाद वहाके कष्टसे घबराकर माफी आदि माग ले तो मेरे दिलको गहरा धक्का लगता और लडाई एकबारगी कमजोर हो जाती। अपनी पत्नीके बारेमे तो मैंने निश्चय कर लिया था कि उसको कभी नही ललचाऊगा। उसके मुहसे तो ना निकल ही नही सकता। और हा निकले तो उस हाकी भी कितनी कीमत समझू, यह मै जान न सकता था। मै समझता था कि ऐसी जोखिमके काममे पत्नी अपनी मर्जीसे जो कुछ करे पतिको वही स्वीकार करना चाहिए और वह कुछ भी कहे तो उसका तनिक भी दु ख नही मानना चाहिए। इसलिए यह तै कर लिया था कि उसके साथ इस बारेमे बात ही नही करूगा। दूसरी बहनोके साथ मैंने बाते की। उन्होने भी ट्रासवालवाली बहनोकी तरह तुरत बीडा उठा लिया और जेल जानेको तैयार हो गई। मुझे इस बातका इतमीनान दिलाया कि कैसे ही कष्ट क्यो न सहने पडे, वे अपनी सजाकी मुद्दत पूरी करेगी। पर इस सारी बातचीतका सार मेरी पत्नीने भी जान लिया। उसने मुझसे कहा—"आप मुझे इस बातकी खबर नही देते, इसका मुझे दु ख होता है। मुझमे ऐसी क्या खामी है कि मै जेल नही जा सकती? मुझे भी वही रास्ता लेना है जिसपर चलनेकी सलाह आप इन बहनोको दे रहे है।" मैंने जवाब दिया—"तुम्हारा दिल दुखानेकी बात मै सोच ही नही सकता। इसमे अविश्वासकी बात नही है। मै तो तुम्हारे जेल जानेसे प्रसन्न ही हूगा। पर मुझे इसका आभासतक नही होना चाहिए कि तुम मेरे कहनेसे जेल गई हो। ऐसे काम हरएकको अपनी हिम्मतसे ही करना चाहिए। मै कहू

तो मेरी वात रखनेके लिए तुम सहज ही जेल चली जाओगी। पीछे अदालतमे खडी होते ही कापने लगो या हिम्मत हार दो अथवा जेलके कष्टोसे कातर हो जाओ तो इसमे तुम्हारा दोप तो मै मानूगा, पर मेरी दशा क्या होगी ? मै तुम्हे किस तरह ग्रहण कर सकूगा ? दुनियाके सामने कैसे मुह दिखा सकूगा ? इसी डरसे मैने तुम्हे जेल जानेको नही ललचाया।" मुझे जवाव मिला—"मै हिम्मत हारकर चली आऊ तो आप मुझे न अपनाये। मेरे लडके कष्ट सह सकते है। आप सव लोग सह सकते है और अकेली मै ही नही सह सकती, यह आप कैसे सोच सकते है ? मुझे तो इस लडाईमे शामिल करना ही होगा।" मैने जवाव दिया—"तो तुम्हे शामिल करना ही होगा। मेरी शर्त तो तुम जानती ही हो। मेरा स्वभाव भी जानती हो। अव भी सोचना-विचारना हो तो सोच-विचार लो और भलीभाति विचार कर लेनेके वाद अगर तुम्हारा दिल कहे कि तुम्हे इसमे शामिल नही होना चाहिए तो तुम्हे इसकी आजादी है। और यह भी जान लो कि निश्चय वदलनेमे अभी कोई शर्म भी नही।" जवाव मिला—"मुझे कुछ सोच-विचार करना ही नही है। मेरा निश्चय ही है।"

फिनिक्समे रहनेवाले दूसरे लोगोको भी मैने स्वतत्र रीतिसे निश्चय करनेकी सलाह दी थी। लडाई थोडे दिन चले या वहुत दिन, फिनिक्स-आश्रम कायम रहे या जमीदोज हो जाय, जेल जानेवाले तदुरुस्त रहे या बीमार हो जाए, पर कोई पीछे नही हट सकेगा, यह शर्त मैने वार-वार और तरह-तरहसे कहकर समझा दी। सव तैयार हो गये। फिनिक्स-से वाहरके अकेले रुस्तमजी जीवनजी घोरखोदू थे। उनसे यह सारा विचार-विमर्श छिपा रखा जाय, यह नही हो सकता था। वह पीछे रहनेवाले आदमी भी नही थे। वह जेल हो

भी आये थे, पर फिर जानेका आग्रह कर रहे थे। इस जत्थेमे शामिल होनेवालोके नाम इस प्रकार है

१ सौ० कस्तूर मोहनदास गाधी, २ सौ० जयाकुवर मणिलाल डाक्टर, ३ सौ० काशी छगनलाल गाधी, ४ सौ० सन्तोक मगनलाल गाधी, ५ श्रीपारसी रुस्तमजी जीवन घोरखोदू, ६. श्रीछगनलाल खुशालचद गाधी, ७ श्रीरावजी भाई मणिलाल पटेल, ८. श्री मगन भाई हरिभाई पटेल, ९ श्री-सालोमन रायपन, १०. भाई रामदास मोहनदास गांधी, ११. भाई राजगोविन्द, १२ भाई शिवपूजन वद्री, १३ गोविद राजुलू, १४. श्रीकुप्पु स्वामी मुदालियार, १५. भाई गोकुलदास हसराज, १६. रेवाशकर रतनशी सोढा।

आगे क्या हुआ यह अगले प्रकरणमे पढियेगा।

: १६ :

स्त्रियां जेलमें

इस जत्थेको सरहद पारकर विना परवानेके ट्रासवालमे दाखिल होनेके जुर्ममे गिरफ्तार होना था। नामोसे पाठक देखेगे कि उनमे कुछ ऐसे नाम है जो प्रकट हो जाते तो पुलिस शायद उन्हे गिरफ्तार नही करती। मेरे विषयमे यही वात हुई थी। एक-दो वार गिरफ्तार करनेके वाद सरहद पार करते वक्त पुलिसने मुझे पकडना छोड दिया था। इस जत्थेके कूचकी खवर किसीको नही दी गई थी। अखवारोको तो दे ही कैसे सकते थे? जत्थेके सदस्योको समझा दिया गया था कि वे पुलिसको भी नाम-धाम न वताए। पूछनेपर उससे कह दे कि हम अदालतमे नाम वतायेगे।

पुलिसके सामने ऐसे मामले अकसर आते। अपने आपको

गिरफ्तार करानेके आदी हो जानेके बाद हिंदुस्तानी अकसर मजेके लिए पुलिसको तग करनेकी नीयतसे भी उसको नाम नही बताते थे। अत इस जत्थेके नाम न बतानेमे उसे कोई विचित्रता नही जान पडी। पुलिसने इस जत्थेको गिरफ्तार किया। मुकदमा चला। सबको तीन-तीन महीनेकी कडी कैदकी सजा मिली।

जो बहने ट्रासवालमे अपने आपको गिरफ्तार करानेके प्रयत्नमे निराश हुई थी वे नेटालकी सरहदमे दाखिल हुई। पुलिसने उन्हे बिना परवानेके प्रवेश करनेके जुर्ममे गिरफ्तार नही किया। यह तै हुआ था कि पुलिस उन्हे न पकडे तो वे न्यूकैसेल जाकर पडाव करे और कोयलेकी खानोके हिंदुस्तानी मजदूरोसे अपना काम छोड देनेकी विनती करे। न्यूकैसेल नेटालमे कोयलेकी खानोका केन्द्र है। इन खानोमे मुख्यत हिंदुस्तानी मजदूर ही काम करते थे। बहनोने अपना काम शुरू किया। उसका असर बिजलीकी तरह फैल गया। तीन पौडके करकी कहानी उन्होने सुनी तो उनपर गहरा असर हुआ। उन्होने अपना काम छोड दिया। मुझे तार मिला। मै खुश हुआ, पर इतना ही घबराया भी। मुझे क्या करना है? इस अद्भुत जागरणके लिए मै तैयार नही था। मेरे पास पैसा नही था, न इतने आदमी थे जो इस कामको सभाल ले। अपना फर्ज मै समझता था। मुझे न्यूकैसेल जाना और जो कुछ हो सके वह करना था। मै उठा और चल दिया।

सरकार अब इन बहादुर बहनोको क्यो छोडने लगी? वे गिरफ्तार हुई। उन्हे भी वही सजा मिली जो फिनिक्सवाले जत्थेको मिली थी—तीन-तीन महीनेकी कडी कैद और उसी जेलमे रखी गई।

दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय अब जागे। उनकी नीद टूटी। उनमे नई चेतना आई जान पडी। पर बहनोके

वलिदानने हिंदुस्तानको भी जगाया। सर फीरोजशाह मेहता अवतक तटस्थ थे। १९०१ मे उन्होने मुझे कडे शब्दोमे चेतावनी देकर दक्षिण अफ्रीका न जानेको समझाया था। उनका मत मै पहले बता चुका हू। सत्याग्रहकी लडाईका भी उनपर थोडा ही असर हुआ था। पर स्त्रियोकी कैदने उनपर जादूका-सा असर डाला। बबईके टाउनहालमे भाषण देते हुए उन्होने खुद कहा कि स्त्रियोकी जेल-यात्राने मेरी शाति भग कर दी। हिंदुस्तानसे अव चुप बैठे नही रहा जा सकता।

वहनोकी बहादुरीके क्या कहने! सभी नेटालकी राजधानी मारित्सवर्गमे रखी गई। यहा उन्हे काफी कष्ट दिया गया। खूराकमे उनका जरा भी खयाल नही रखा गया। काम उन्हे कपडे धोनेका दिया गया। वाहरसे खाना भेजनेकी सख्त मनाही लगभग आखिरतक रही। एक बहनने एक विशेष प्रकारके भोजनका ही व्रत ले रखा था। वडी कठिनाईसे उसे वह भोजन देनेका निश्चय हुआ। पर वह ऐसा होता था कि गलेसे उतारा न जा सके। उसे जैतूनके तेलकी खास जरूरत थी। पहले तो वह मिला ही नही। फिर मिला भी तो बरसोका पुराना और वदबूदार। अपने खर्चसे मगानेकी प्रार्थना की गई तो जवाब मिला--"यह कोई होटल नही है! जो मिले वह खाना होगा।" यह वहन जब जेलसे निकली तो देहमे ठठरी भर रह गई थी। महाप्रयाससे जान बची।

एक दूसरी वहन भयकर ज्वर लेकर निकली। उस ज्वरने रिहाई (२२ फरवरी १९१४) के वाद कुछ ही दिनोमे उसे प्रभुके पास पहुचा दिया। उसको मै कैसे भूल सकता हू? वलिअम्मा सोलह सालकी लडकी थी। मै जव उसको देखने गया तो वह खाटपर पडी थी। लवे कदकी होनेसे उसकी लकडी-जैसी देह डरावनी लगती थी।

मैंने पूछा "वलिअम्मा, जेल जानेका पछतावा तो नही हो रहा है न ?"

"पछतावा क्यो होगा ? मुझे तो फिर गिरफ्तार करे तो इस वक्त भी जेल जानेको तैयार हू ।"

"पर उसका फल मृत्यु हो तो ?"

"हुआ करे । देशके लिए मरना किसे न भायेगा ?"

इस बातचीतके कुछ ही दिन बाद वलिअम्मा स्वर्ग सिधारी । उसकी देह गई, पर यह बाला अपना नाम अमर कर गई है । वलिअम्माकी मृत्युके बाद जगह-जगह शोक प्रकाश करनेवाली सभाए हुई और कौमने इस पवित्र बहनकी स्मृति-रक्षाके लिए 'वलिअम्मा हाल' के नामसे एक सभा-भवन बनाने-का निश्चय किया । यह हाल बनानेके धर्मका कौमने अबतक पालन नही किया । उसमे अनेक विघ्न आये । कौममे फूट पडी । मुख्य कार्यकर्ता एकके पीछे एक छोडकर चले गये । पर पत्थर-चूनेका हाल बने या न बने, वलिअम्माकी सेवाका नाश नही हो सकता । इस सेवाका हाल तो वह अपने हाथो ही निर्माण कर गई है । उसकी मूर्ति आज भी बहुतसे हृदय-मदिरोमे विराजती है और जबतक भारतवर्षका नाम है तबतक दक्षिण अफ्रीका-के इतिहासमे वलिअम्माका नाम भी अमर रहेगा ।

इन बहनोका बलिदान विशुद्ध था । ये बेचारी कानून-कायदेकी बारीकियोको नही जानती थी । उनमे बहुतोको देशकी कल्पना नही थी, उनका देशप्रेम केवल श्रद्धापर अवलबित था । उनमे अनेक निरक्षर थी, इसलिए अखबार पढना कहासे जानती ? पर वे इतना जानती थी कि कौमके मानरूपी वस्त्रका हरण हो रहा है । उनका जेल जाना उनका आर्त्त-नाद था । शुद्ध यज्ञ था । ऐसी हृदयकी प्रार्थनाको प्रभु सुनते है । यज्ञकी सफलता उसकी उसी शुद्धतापर आश्रित होती है । भगवान भावके भूखे है । भक्तिपूर्वक अर्थात् निस्स्वार्थ-

बुद्धिसे अर्पित पत्र, पुष्प या जलको वह सप्रेम स्वीकार करते है और उसका करोड गुना फल देते है। सुदामाके मुट्ठीभर चावलकी भेटसे उसकी बरसोकी भूख भाग गई। बहुतोके जेल जानेका चाहे कोई फल न हो, पर एक ही शुद्ध आत्माका भक्तिपूर्वक किया हुआ आत्मार्पण कभी निष्फल नही होता। दक्षिण अफ्रीकामे किस-किसका यज्ञ फला इसे कौन जानता है? पर इतना हम जानते है कि वलिअम्माका यज्ञ तो सफल हुआ ही। दूसरी बहनोका यज्ञ भी जरूर सफल हुआ।

स्वदेश-यज्ञमे, जगत-यज्ञमे असख्य आत्माओका होम हो चुका है, हो रहा है और होगा। यही यथार्थ है; क्योकि कोई नही जानता कि कौन शुद्ध है। पर सत्याग्रही इतना तो समझ ही रखे कि उनमे एक भी शुद्ध हो तो उनका यज्ञ फल उपजानेके लिए काफी है। पृथ्वी सत्यके बलपर टिकी हुई है। असत्—असत्य अर्थात् नही, सत्—सत्य अर्थात् है। जब असत्का अस्तित्व ही नही है तब उसकी सफलता क्या होगी? और जो है, उसका नाश कौन कर सकनेवाला है? इतनेहीमे सत्याग्रहका सम्पूर्ण शास्त्र समाया हुआ है।

: १७ :

मजदूरोंकी धारा

बहनोके इस त्यागका असर मजदूरोपर अद्भुत हुआ। न्यूकैसलके नजदीककी खानोके मजदूरोने अपने औजार फेंक दिये। उनकी धारा नगरकी ओर बह चली। खबर मिलते ही मैने फिनिक्स छोडा और न्यूकैसलके लिए रवाना हो गया।

इन मजदूरोका अपना घर नही होता। मालिक ही उनके लिए घर बनवाते है। उनकी सडको-गलियोमे लैम्प

लगवाते है। मालिक ही उनको पानी भी देते है। अर्थात् मजदूर हर तरह पराधीन होते है और जैसा कि गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है

"पराधीन सपनेहु सुख नाही"

ये हडताली मेरे पास अनेक प्रकारकी शिकायते लाने लगे। कोई कहता—"मालिक रास्तेपरकी रोशनी बद कर रहे है।" कोई कहता— 'पानी बद कर रहे है।" कोई कहता—"वे हडतालियोका सामान कोठरियोसे बाहर निकालकर फेके दे रहे है।" एक पठान सैयद इब्राहीमने अपनी पीठ दिखाकर कहा— "यह देखो, मुझे कैसा मारा है। मैने आपके लिए बदमाशको छोड दिया है। आपका यही हुक्म है। मै पठान हू और पठान कभी मार खाता नही, मार मारता है।"

मैने जवाब दिया—"भाई, तुमने बहुत ही अच्छा काम किया। इसीको मै सच्ची बहादुरी कहता हू। तुम जैसे लोगोसे ही हम जीतेगे।"

मैने यो मुबारकबादी तो दी, पर दिलमे सोचा कि बहुतोपर ऐसी बीती तो हडताल नही चलेगी। मारको छोड दे तो मालिकोकी शिकायत किस बातकी करे? हडताल करनेवालोकी रोशनी-पानी आदिकी सुविधाएँ मालिक बद कर दे तो इसमें शिकायतके लिए अधिक स्थान नही। पर हो या न हो, लोग ऐसी स्थितिमे कैसे निभा सकते है? मुझे कोई उपाय सोच लेना ही होगा। अथवा लोग थककर कामपर वापस जाय इससे तो यही अच्छा है कि वे अपनी हार कबूल कर लें और कामपर लौट जाए। पर लोग मेरे मुहसे ऐसी सलाह हरगिज न सुनेगे। तब एक ही रास्ता था मजदूर मालिकोकी कोठरिया खाली कर दे, यानी 'हिजरत' करे।

मजदूर दस-बीस नही थे, सकडो थे। हजारो होते भी देर न लगती। उनके लिए मकान कहासे पैदा करू? खाना

कहासे लाऊ ? हिंदुस्तानसे पैसा मगाना नही था। वहासे पैसेका जो मेह बरसा वह अभी आरभ नही हुआ था। भारतीय व्यापारी इतना डर गये थे कि वे मुझे खुले तौरपर कोई मदद देनेको तैयार नही थे। उनका व्यापार खान-मालिको और दूसरे गोरोके साथ था। इसलिए वे खुले तौरपर मेरा साथ कैसे देते ? जब कभी मै न्यूकैसेल जाता, उन्हीके यहा उतरता था। इस बार मैने खुद ही उनका रास्ता आसान कर दिया, दूसरी ही जगह उतरनेका निश्चय किया।

मै बता चुका हू कि जो बहने ट्रासवालसे आई थी वे द्राविड प्रदेशकी थी। वे एक द्राविड कुटुबके यहा, जो ईसाई था, ठहरी थी। यह कुटुब मध्यम स्थितिका था। उसके पास जमीनका एक छोटा-सा टुकडा और दो-तीन कमरोका मकान था। मैने यही उतरनेका निश्चय किया। घरके मालिकका नाम लाजरस था। गरीबको किसका डर हो सकता है ? ये लोग मूलत एक गिरमिटिया कुटुबके थे। इसलिए उन्हे और उनके स्वजनोको भी तीन पौडका कर देना होता। गिरमिटियोके कष्टोकी पूरी जानकारी उन्हे होनी ही चाहिए थी और उनके साथ हमदर्दी भी पूरी होनी चाहिए थी। इस कुटुबने मेरा सहर्ष स्वागत किया। मुझे मेहमान बनाना मित्रोके लिए कभी आसान तो रहा ही नही, पर इस वक्त मेरा स्वागत करना आर्थिक नाशका स्वागत करना था और शायद जेलका स्वागत करना भी होता। ऐसे धनिक व्यापारी थोडे ही हो सकते थे जो अपने आपको ऐसी स्थितिमे डालनेको तैयार हो। अत मैने अपनी और उनकी मर्यादा समझकर तै किया कि मुझे उनको कठिनाईमे नही डालना चाहिए। लाजरस बेचारेको थोडी-सी तनख्वाह खोनी पडती तो वह खो देता। उसे कोई जेल ले जाय तो वह चला जाता। पर अपनेसे भी ज्यादा गरीब गिरमिटियोका कष्ट वह कैसे

अनुद्विग्न चित्तसे सहन करता ? इसने देखा कि ट्रासवालकी वहने जो उसीके यहा टिकी हुई थी, गिरमिटियोकी मदद करने जाकर जेलखाने पहुच गई । भाई लाजरसने सोचा कि उनके प्रति उसका भी कुछ फर्ज है और मुझे आश्रय दे दिया । उसने मुझे आश्रय तो दिया ही, साथ ही अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया । मेरे उसके यहा जानेके वाद उसका घर धर्मशाला वन गया । सैकडो आदमी और हर तरहके आदमी चाहे जव आते और जाते । उसके घरके आसपासकी जमीन आदमियोसे खचाखच भर गई । उसका चूल्हा चौवीसो घटे जला करता । उसकी धर्मपत्नीको इसमे जी-तोड मेहनत करनी पडती । फिर भी पति-पत्नी दोनोके चेहरे हर वक्त हँसते रहते । उनकी मुखाकृतिमे मैने कभी अप्रसन्नता नही देखी ।

पर गरीव लाजरस क्या सैकडो मजदूरोको खिला सकता था ? मजदूरोको मैने सुना दिया कि उन्हे अपनी हडतालको स्थायी चीज समझकर मालिकोके दिये हुए झोपडे खाली कर देने चाहिए । जो चीजे विक सकती हो वेच डालो, वाकी सामानको कोठरीमे पडा रहने दो । मालिक उसको हाथ नही लगायगे । पर और वदला चुकानेके लिए वे उसे उठाकर फेक दे तो मजदूरोको यह जोखिम भी उठानी होगी । मेरे पास वे पहननेके कपडे और ओढनेके कवलके सिवा और कोई भी चीज न लाये । जवतक हडताल चलती रहेगी और जवतक वे जेलके वाहर रहेगे तवतक मै उन्हीके साथ रहूगा और खाऊगा-पिऊगा । इन शर्तोके साथ वे खानोसे वाहर निकल आये तभी वे टिक सकते है और कौमकी जीत हो सकती है । जिसमे इसकी हिम्मत न हो वह अपने कामपर लौट जाय । जो कामपर वापस जाय, उसका कोई तिरस्कार न करे, उसको तग न करे । इन शर्तोको माननेसे किसीने इन्कार किया हो

इसकी याद मुझे नही है। जिस दिन मैने कहा उसी दिनसे हिजरत करनेवालो——गृहत्यागियोका ताता लग गया। सव अपने वीवी-वच्चोको साथ लिए सिरपर कपडोकी गठरी रखे पहुचने लगे। मेरे पास घरके नामपर तो सिर्फ खली जमीन थी। सौभाग्यवश उस मौसममे न वर्पा हो रही थी और न ठड ही पड रही थी।

मेरा विश्वास था कि भोजनका भार उठानेमे व्यापारी-वर्ग पीछे न रहेगा। न्यूकैसेलके व्यापारियोने पकानेके लिए वरतन दिये और चावल-दालके वोरे भेजे। दूसरे स्थानोसे भी दाल, चावल, सब्जी, मसाले आदिकी वर्षा होने लगी। जितनेकी आशा मै रखता था उससे कही अधिक ये चीजे मेरे पास आने लगी। सव जेल जानेको तैयार न हो, पर सवकी हमदर्दी तो थी ही। सव इस यज्ञमे यथाशक्ति सहायताके रूपमे अपना भाग अर्पण करनेको तैयार थे। जो कुछ देने लायक न थे उन्होने अपनी सेवा देकर मदद की। इन अनजान अपढ आदमियोको सम्हालनेके लिए जाने-पहचाने हुए और समझदार स्वयसेवक तो दरकार थे ही। वे मिल गये और उन्होने अमूल्य सहायता की। उनमेसे वहुतेरे तो गिरफ्तार भी हुए। यो सवने यथाशक्ति सहायता की और हमारा रास्ता आसान हो गया।

आदमियोकी भीड वढने लगी। इतने वडे और लगातार वढते जानेवाले मजदूरोके मजमेको एक ही स्थानमे विना किसी काम-धधेके समेट रखना नामुमकिन नही तो खतरनाक जरूर था। उनकी शौच आदिकी आदते तो सुथरी होती ही नही थी। इस समुदायमे कितने ही ऐसे थे जो अपराध करके जेल भी हो आये थे। कोई हत्याका अपराधी था, कोई चोरीके जुर्ममे कैदकी सजा भुगतकर छूटा था, कोई व्यभिचारके अपराधमे जेल काटकर आया था। हडताली मजदूरोमे नीतिका भेद मेरे किये नही हो सकता था। भेद करू भी

तो अपना भेद मुझे कौन वतलाता ? मै काजी वन वैठू तो विवेकहीन वनू । मेरा काम केवल हडताल चलाना था । इसमेदूसरे सुधारोको मिलाना मुमकिन नही था । छावनी-मे नीतिका पालन करना मेरा काम था । आनेवाले पहले कैसे थे, इसकी जाच करना मेरा फर्ज नही था । यह शिवकी वरात एक जगह जमकर वैठ जाय तो अपराध होना निश्चित था । अचरजकी वात तो यह थी कि जितने दिन मैने यहा विताये वे शातिसे वीते । सव लोग ऐसी शातिसे रहे मानो उन्होने अपना आपद्धर्म समझ लिया हो ।

मुझे उपाय सूझा इस दस्तेको ट्रासवाल ले जाऊ और जैसे पहलेके १६ आदमी गिरफ्तार हो गये वैसे इन्हे भी जेलमे विठा दू । इन लोगोको छोटे-छोटे जत्थोमे वाटकर उनसे सरहद पार कराऊ । यह विचार ज्योही मनमे आया त्योही उसे रद कर दिया । इसमे वहुत वक्त जाता और सामुदायिक कार्यका जो असर होता वह छोटे-छोटे जत्थोके जेल जानेका न होता ।

मेरे पास कोई पाच हजार आदमी इकट्ठा हुए होगे । इन सवको ट्रेनसे नही ले जा सकता था । इतना पैसा कहासे लाऊ ? और इसमे लोगोकी परीक्षा भी नही हो सकती थी । न्यूकैसेलमे ट्रासवालकी सरहद ३६ मील थी । नेटालका सरहदी गाव चार्ल्सटाउन था, ट्रासवालका वाक्सरस्ट । अतमे मैने पैदल यात्रा करनेका ही निश्चय किया । मजदूरोके साथ मशविरा किया । उनके साथ स्त्रिया, वच्चे आदि थे । अत कुछने आनाकानी की । मेरे पास दिल कडा करनेके सिवा दूसरा उपाय ही नही था । मैने लोगोसे कह दिया कि जिसे खान-पर वापस जाना हो वह जा सकता है । पर कोई वापस जाने-को तैयार न था । जो लोग अपग थे उन्हे ट्रेनसे भेजनेका निश्चय किया । वाकीके सव लोगोने कहा कि हम पैदल चलकर

चार्ल्सटाउन जानेको तैयार है। यह मजिल दो दिनमे पूरी करनी थी। अतमे सभी इस निश्चयसे प्रसन्न हुए। लोगोने यह भी समझा कि इससे बेचारे लाजरस-परिवारको कुछ राहत मिलेगी। न्यूकैसेलके गोरोको प्लेग फैलनेका डर लग रहा था और उसके प्रतीकारके लिए अनेक उपाय करनेकी वात सोच रहे थे। वे भयमुक्त हुए और उनकी कार्रवाइयोके डरसे हम भी मुक्त हुए।

इस कूचकी तैयारी चल रही थी कि मुझे खानमालिकोसे मिलनेका बुलावा आया। मै डर्वन गया, पर इस कहानीका उल्लेख पृथक् प्रकरण मे करूगा।

: १८ :

खानमालिकोंके पास और उसके बाद

खानमालिकोके बुलावेपर मै उनसे मिलने डर्वन गया। मैने समझा कि मालिकोपर कुछ असर हुआ है। इस बातचीतसे कुछ मिलेगा यह आशा तो मै नही रखता था। पर सत्याग्रहीकी नम्रताकी कोई हद नही होती। वह समझौतेके एक भी अवसरको जाने नही देता। इससे कोई उसको डरपोक माने तो वह अपने आपको डरपोक मानने देता है। जिसके हृदयमे विश्वास और विश्वाससे उपजनेवाला बल है वह दूसरोकी अवगणनाकी परवा नही करता। वह अपने अन्तर्बलका भरोसा रखता है। इससे सवके सामने नम्र रहकर वह जगतके जनमतको जगाता और अपने कार्यकी ओर खीचता है।

इससे मुझे मालिकोका निमन्त्रण स्वागत करने योग्य जान पडा। मै उनके पास पहुचा। मैने देखा कि हवामे गर्मी है। मुझसे स्थिति समझनेके वदले उनके प्रतिनिधिने मुझसे

जिरह शुरु कर दी। मैने उसको मुनासिब जवाब दिये। मैने कहा—"यह हड़ताल बद कराना आपके हाथमे है।"

उनकी ओरसे जवाब मिला—"हम कोई अधिकारी नही है।"

मैने कहा—"आप अधिकारी नही है, फिर भी बहुत कुछ कर सकते हैं। आप मजदूरोका केस लड सकते है। आप सरकारसे तीन पौडका कर उठा देनेकी माग करे तो मै यह नही मानता कि वह उसे नामजूर करेगी। आप दूसरोका मत अपने अनुकूल बना सकते है।"

"पर सरकारके लगाये हुए करके साथ हडतालका क्या सबध? मालिक मजदूरोको कष्ट देते हो तो आप उनसे बाकायदा आवेदन करे।"

"मजदूरोके पास हडताल करनेके सिवा इसका रास्ता मुझे नही दिखाई देता। तीन पौडका कर भी मालिकोकी खातिर ही लगाया गया है। मालिक मजदूरोकी मेहनत चाहते है, पर उनकी आजादी नही चाहते। इससे इस करको दूर करानेके लिए मजदूरोके हडताल करनेमे मै कुछ भी अनीति या मालिकोके प्रति अन्याय नही देखता?"

"तो आप मजदूरोसे कामपर वापस जानेको नही कहेगे?"

"मै लाचार हू।"

"आप इसका नतीजा जानते है?"

"मै सावधान हू। अपनी जिम्मेदारीका मुझे पूरा खयाल है।"

"बेशक, इसमे आपका जाता ही क्या है? पर इन बहकाये हुए मजदूरोकी जो हानि होगी वह क्या आप भर देगे?"

"मजदूरोने सोच-समझकर और अपने नुकसानको जानते-समझते हुए यह हडताल की है। मनुष्यके लिए आत्म-सम्मानकी हानिसे बडी हानि मै सोच ही नही सकता। मज-दूरोने इस बातको समझ लिया है, इसका मुझे सतोष है।"

इस तरहकी बातचीत हुई। पूरी बातचीत मुझे इस वक्त याद नही आ सकती। जो बाते याद रह गई है उन्हे थोडेमे दे दिया है। मै इतना जान सका कि मालिकोको अपना पक्ष पगु जान पडा, क्योकि सरकारके साथ उनकी बात-चीत पहलेसे चल रही थी।

डर्बन जाते और वहासे लौटते हुए मैने देखा कि रेलवेके गार्डो आदिपर इस हडताल और हडतालियोकी शातिका बहुत अच्छा असर हुआ। मेरा सफर तो तीसरे ही दरजेमे चल रहा था। पर वहा भी गार्ड आदि रेलकर्मचारी मुझे घेर लेते, दिलचस्पीभरे आग्रहके साथ हमारी लडाईके समाचार पूछते और सब हमारी विजय मनाते। मुझे अनेक प्रकारके छोटे-मोटे सुभीते कर देते। उनके साथ अपना सबध मै निर्मल रखता। एक भी सुभीतेके लिए मै उन्हे लालच न देता। अपनी इच्छासे वे भलमनसी बरते तो मुझे उससे प्रसन्नता थी, पर भलमनसी खरीदनेकी कोशिश कभी नही की। गरीब, अपढ, नासमझ इतनी दृढता दिखाये यह उनके लिए अचभेकी बात थी, और दृढता तथा वीरता ऐसे गुण है जिनकी छाप विरोधीपर पडे बिना नही रहती।

मै न्यूकैसेल लौटा। मजदूरोकी धारा तो चली ही आ रही थी। उनको सारी बाते बारीकीके साथ समझा दी। यह भी कह दिया कि आप लोग कामपर वापस जाना चाहते हो तो जा सकते है। मालिकोकी धमकीकी बात भी बताई और भविष्यमे जो जोखिमे उठानी थी उनका वर्णन भी कर दिया। कह दिया कि लडाई कब खत्म होगी यह भी नही कहा जा सकता। जेलके कष्ट समझा दिया। फिर भी मजदूर अडिग रहे। "जबतक आप लडनेको तैयार होगे तबतक हम हिम्मत हारनेवाले नही। हमे कष्ट सहनेका अभ्यास है। आप हमारी चिता न करे।" यह निर्भय जवाब मुझे उनसे मिला।

मेरे लिए तो अब कूच करना ही बाकी रह गया था। एक दिन शामको लोगोंसे कह दिया कि उन्हें अगले दिन भोरमें कूच शुरु करनी होगी (२८ अक्तूबर १९१३)। रास्तेमें जिन नियमोंका पालन करना था वे सुना दिये गये। ५-६ हजारके मजमेको सम्हालना ऐसी-वैसी बात नहीं थी। उनकी गिनती तो मेरे पास थी ही नहीं, न था नाम-धाम। जो रह गये सो रह गये। उतनेहीको अपने लिए काफी मान लिया। रास्तेके लिए हरएकको तीन पाव रोटी (डेढ़ पौंड) और आधी छटाक शक्करके सिवा और कोई खूराक देनेकी गुंजाइश नहीं थी। इनके अतिरिक्त यह कह दिया था कि हिंदुस्तानी व्यापारी अगर रास्तेमें कुछ देंगे तो वह ले लूंगा। पर लोगोंको रोटी और शक्करसे ही संतोष करना था। बोअर-युद्ध और जुलू-बगावतमें मुझे जो अनुभव प्राप्त हुआ था वह इस वक्त बहुत काम आया। जरूरतसे ज्यादा कपड़े साथ न रखनेकी शर्त तो थी ही। रास्तेमें कोई किसीका माल न ले, कोई सरकारी कर्मचारी या यूरोपियन मिले और गाली दे या मारे भी तो बर्दाश्त कर ले, पुलिस गिरफ्तार करे तो गिरफ्तार हो जाय। मैं गिरफ्तार कर लिया जाऊं तो भी कूच जारी रहे आदि बातें समझा दी। मेरे स्थानपर एकके बाद दूसरे कौन लोग नियुक्त होंगे यह भी बता दिया।

लोगोंने सब बातें समझ ली। काफला सहीसलामत चार्ल्सटाउन पहुंचा। वहांके व्यापारियोंने हमारी खूब मदद की। अपने मकानोंको काममें लाने दिया। मस्जिदके सहनमें खाना पकानेकी इजाजत दे दी। कूचके वक्त जो खूराक दी जाती वह पड़ावपर पहुंचनेतक चुक जाती। इसलिए हमें खाना पकानेके बरतन भी चाहिए थे। व्यापारियोंने उन्हें भी खुशीसे हाजिर कर दिया। चावल आदि तो हमारे पास काफी हो गया था। व्यापारियोंने इसमें भी अपना हिस्सा दिया।

चार्ल्सटाउन छोटा-सा गाव कहा जा सकता है। इस वक्त उसमे मुश्किलसे एक हजारकी आवादी रही होगी। उसमे इतने आदमियोका समावेश कर लेना कठिन था। स्त्रियो और वच्चोको ही मकानोमे रखा। वाकी सवको मैदानमे ही ठहराया।

यहाकी मधुर स्मृतिया कितनी ही है। कुछ कडवी भी है। मधुर स्मरण मुख्यत. चार्ल्सटाउनके स्वास्थ्य-विभाग और उसके अधिकारी डाक्टर व्रिस्कोके है। गावकी आवादी इतनी वढ़ी हुई देखकर वह घवरा गये, पर कोई कडा उपाय करनेके वजाय मुझसे ही मिले। कुछ सुझाव पेश किये और मेरी मदद करनेकी भी वात कही। यूरोपके लोग तीन वातोका खास तौरसे खयाल रखते है—हम नही रखते—पानीकी सफाई, रास्तेकी सफाई और पाखानेकी सफाई। मुझे यह करना था कि रास्तेपर पानी न गिराने दू, जहां-तहा लोगोको पेशाव न करने दू और कही कूडा-करकट न फेकने दू। वह जहा वतायें वही लोगोको टिकाऊ और उस स्थानकी सफाईके लिए अपने आपको जिम्मेदार समझू। इन सारी सूचनाओको मैने धन्य-वाद-सहित स्वीकार किया। मुझे पूरी शाति हो गई।

अपने देशवासियोसे इन नियमोका पालन कराना वहुत ही कठिन काम है। पर मजदूर भाइयो और साथियोने उसे आसान कर दिया। मेरा सदा यह अनुभव रहा है कि सेवक सेवा करे और हुक्म न चलाये तो वहुत काम हो सकता है। सेवक खुद अपनी देहको काममे लगाये तो दूसरे भी लगायेगे। इसका पूरा अनुभव मुझे इस छावनीमे हुआ। मै और मेरे साथी झाड लगाना, मैला उठाना आदि काम करते तनिक भी नही हिचकते थे। इससे लोगोने ये काम उत्साहसे उठा लिये। यदि हम ऐसा न करते तो हुक्म किस पर चलाते? सव सरदार वनकर दूसरोपर हुक्म चलाये तो अंतमे काम पडा ही रह

जाता । पर जहा सरदार खुद ही सेवक बन जाय वहा दूसरे सरदारीका दावा कैसे कर सकते है ?

साथियोमे केलनबेक पहुच गये थे । मिस श्लेजिन भी उपस्थित हो गई थी । इस बहनकी श्रमशीलता, सजग चिता और सचाईकी जितनी भी सराहना करू कम होगी । हिदुस्तानियोमे स्वर्गीय पी के नायडू और अलबर्ट क्रिस्टोफरके नाम तो मुझे इस वक्त याद आ रहे है। दूसरे भी थे जिन्होने भरपूर मेहनत की और अच्छी सहायता की ।

भोजनमे चावल और दाल दी जाती। सब्जी हमारे पास काफी जमा हो गई थी, पर उसको अलग पकानेका सुभीता नही था। इसलिए दालमे ही डाल दी जाती । अलग पकानेको समय न मिलता, इतने बरतन भी नही थे । रसोईमे चौबीसो घटे चूल्हा जला रहता, क्योकि चाहे जिस वक्त भूखे-प्यासे लोग आ पहुचते । न्यूकैसेलमे किसीको रहना नही था । सबको रास्तेकी खबर थी । इसलिए खानसे निकलकर वे सीधे चार्ल्सटाउन पहुचते ।

मनुष्योके धीरज और सहनशीलताका विचार करता हू तो भावनाकी महिमा मेरे सामने मूर्तिमान् होकर खडी हो जाती है । भोजन पकानेवालोमे मखिया मै था । कभी दालमे पानी ज्यादा हो जाता तो कभी वह कच्ची रहती । कभी तरकारी पकी न होती तो कभी भात ही कच्चा रह जाता। ऐसा भोजन प्रसन्न चित्तसे ग्रहण कर लेनेवाले मैने दुनियामें अधिक नही देखे है । इसका उलटा दक्षिण अफ्रीकाकी जेलमें यह अनुभव भी हुआ कि खाना जरा कम, या कच्चा होने या जरा देरसे मिलनेपर सुशिक्षित माने जानेवालोका भी पारा चढ जाता था ।

परसनेका काम पकानेसे भी अधिक कठिन था और वह मेरे ही जिम्मे था । कच्चे-पक्केका हिसाब तो मुझे देना ही

होता। भोजन कम हो और खानेवाले ज्यादा हो जाय तो थोडा देकर सबका सतोष कराना भी मेरा ही कर्तव्य होता। बहनोके सामने मै थोडा खाना रखता तो क्षणभर मेरी ओर डाटनेकी निगाहसे देखती और फिर मेरी स्थिति समझकर हँसते हुए चल देती। वह दृश्य मुझे जिदगीभर भूलनेका नही। मै कह देता कि मै लाचार हू। मेरे पास पका हुआ भोजन थोडा है और खानेवाले बहुत है। इसलिए मुझको उतना ही देना होगा कि सभी को थोडा-थोडा मिल जाय। इसपर वे स्थितिको समझ जाती और 'सन्तोपम्' कहकर हँसते हुए चल देती।

ये सब तो मधुर स्मरण हुए। कड़वे स्मरण ये है कि लोगोको थोडी फुरसत मिली तो उसका उपयोग आपसके झगडे-टटेमे होने लगा। इससे भी बुरी बात यह हुई कि व्यभिचारकी घटनाए हुई। स्त्री पुरुपोको साथ तो रखना ही पडता। भीड भी वैसी ही थी, व्यभिचारीको शर्म क्यो आने लगी? ये घटनाए ज्योही घटित हुई मे मौकेपर जा पहुचा। अपराधी शर्माये। उनको अलग रखा। पर जो मेरे कानतक नही पहुची, ऐसी घटनाए कितनी हुई होगी, यह कौन कह सकता है? इस विपयका अधिक विस्तारसे वर्णन करना बेकार है। इतना यह जतानेके लिए लिख दिया कि सब कुछ आसान नही था और ऐसी घटनाए घटित हुई तब भी किसीने मेरे साथ उजड्डपन-का बरताव नही किया। नीति-अनीतिका भेद अधिक न जानने-वाले जगली जैसे लोग भी अच्छे वातावरणमे कैसे सीधे चलते है, इसे मैने अनेक अवसरोपर देख लिया है और इसे जान लेना अधिक आवश्यक और लाभदायक है।

: १९ :

ट्रांसवालमें प्रवेश—१

अब हम १९१३के नवबर महीनेके आरभमे है । कूच करनेके पहले दो घटनाओका उल्लेख कर देना उचित होगा । न्यूकैसेलमे द्राविड बहनोको जेलकी सजा मिली तो डर्बनकी बाई फातिमा महतावसे न रहा गया । इसलिए वह भी अपनी मा हनीफा बाई और ७वरसके लडके के साथ जेल जानेको निकल पडी । मा-बेटी तो पकड ली गई, पर बेटेको गिरफ्तार करनेसे सरकारने साफ इन्कार कर दिया । पुलिसने फातिमा बाईकी उगलियोकी निशानी लेनेकी कोशिश की, पर वह निडर रही और उगलियोकी निशानी नही दी ।

इस वक्त हडताल पूरे जोरमे चल रही थी । उसमे पुरुषोकी तरह स्त्रिया भी आकर शामिल हो रही थी । दो स्त्रियोकी गोदमे बच्चे थे । एक बच्चेको कूचमे सर्दी लग गई और वह मौतकी गोदमे चला गया । दूसरा बच्चा एक नालेको लाघते हुए माकी गोदसे गिर गया और प्रवाहमे बहकर डूब गया, पर वीर माताने दिल छोटा नही किया । दोनोने कूच जारी रखी । एकने कहा—"हम मरे हुओका शोक करके क्या करेगी ? वे नही लौटकर आ सकते है ? जीवितोकी सेवा करना हमारा धर्म है ।" ऐसी शात वीरता, ईश्वरमे ऐसी दृढ-आस्था, ऐसे ज्ञानकी मिसाले गरीबोमे मुझे अकसर मिली है ।

ऐसी ही दृढतासे चार्ल्सटाउनमे स्त्री-पुरुष अपने कठिन धर्मका पालन कर रहे थे । पर हम यहा कुछ शातिके लिए नही आये थे । शाति जिसे दरकार हो वह उसे अपने अतरमें प्राप्त करे । बाहर तो जहा देखो और देखना आता हो तो "यहा शाति नही मिलती" की ही तख्तिया लगी दिखाई देगी ।

पर इसी अशातिके बीच मीराबाई-सरीखी भक्त हाथमे जहरका प्याला लेकर हँसते हुए मुहको लगाती है। अपनी अधेरी कोठरीमे बैठा हुआ सुकरात अपने हाथमे जहरका प्याला थामे अपने मित्रको गूढज्ञानका उपदेश करता है और कहता है—जो शाति चाहता हो वह उसे अपने अतरमे तलाश करे।

इसी शातिके बीच सत्याग्रहियोका दस्ता पडाव डालकर, सवेरे क्या होगा इसकी चिता न करते हुए पडा था।

मैने सरकारको चिट्ठी लिखी थी कि हम ट्रासवालमे बसनेके इरादेसे प्रवेश करना नही चाहते। हमारा प्रवेश सरकारके वचनभगके विरुद्ध अमली फरियाद है और हमारे आत्मसम्मानके भगसे होनेवाले दु खका शुद्ध निदर्शन है। हमे तो सरकार यही चार्ल्सटाउनमे गिरफ्तार कर ले तो हम निश्चित हो जाय। वह ऐसा न करे और हममेसे कोई छिपकर ट्रांसवालमे दाखिल हो जाय तो हम उसके लिए जिम्मेदार नही होगे। हमारी लडाईमे गुप्त कुछ है ही नही। व्यक्तिगत स्वार्थ किसीको साधना नही है। किसीका छिपकर प्रवेश करना हमे पसद नही होगा, पर जहा हजारो अनजान आदमियोसे काम लेना हो और जहा प्रेमके सिवा दूसरा कोई बधन न हो वहा किसीके कामके लिए हम जिम्मेदार नही हो सकते। फिर सरकार यह भी जान ले कि अगर उसने तीन पौडका कर उठा दिया तो गिरमिटिए कामपर लौट जायगे और हडताल बद हो जायगी। अपने दूसरे कष्ट दूर करनेके लिए हम उन्हे सत्याग्रहमे शामिल नही करेगे।

अत. स्थिति ऐसी अनिश्चित थी कि सरकार कब गिरफ्तार करेगी यह कहा नही जा सकता था। पर ऐसी स्थितिमे सरकारके जवाबकी राह अधिक दिन नही देखी जा सकती थी। एक-दो डाककी ही राह देखी जा सकती थी। इसलिए हमने

निश्चय किया कि सरकार हमे गिरफ्तार न करे तो तुरत चार्ल्स-टाउन छोड दे और ट्रासवालमे दाखिल हो जाय। रास्तेमें पुलिस न पकडे तो काफिला रोज आठ दिनतक २० से २४ मील-तक कूच करता जाय। हमारा इरादा आठ दिनमे टाल्स्टाय फार्म पहुचनेका था। हमने सोचा था कि जबतक लडाई खतम नही होती तबतक सब वही रहे और फार्ममे काम करके आजीविका पदा करे। मि० केलनबेकने सारा प्रबध कर रखा था। काफिले-के रहनेके लिए कच्चे घर बनवाने और यह काम उससे ही लेनेकी बात सोची गई थी। इस बीच छोटे-छोटे खेमे खडे करके बूढे, कमजोर उनमे रखे जाय और सबल शरीरवाले खुले मैदानमे पडे रहे। इसमे कठिनाई यही थी कि बरसातका मौसम आ रहा था और इस मौसममे सबल-निर्बल सबको कोई आश्रय चाहिए ही। पर मि० केलनबेक इस कठिनाईका उपाय कर लेनेकी हिम्मत रखते थे।

काफिलेने कूचकी दूसरी तैयारिया भी कर ली। चार्ल्स-टाउनके भले अग्रेज डाक्टर ब्रिस्को (जिलेके हेल्थ अफसर)ने हमारे लिए दवाइयोका एक छोटा-सा बक्स तैयार कर दिया और अपने कुछ औजार भी दिये, जिन्हे मुझ-सा अनाडी आदमी भी इस्तेमाल कर सकता था। यह बक्स हमे खुद लादकर ले जाना था, क्योकि काफिलेके साथ कोई भी सवारी नही रखनी थी। इससे पाठक समझ सकते है कि इस बक्समे कम-से-कम दवाए रही होगी। वे इतनी भी नही थी कि एक वक्तमे सौ आदमियोके लिए काफी हो सके। इतनी कम दवाए साथ रखनेका खास कारण तो यह था कि हमे रोज किसी-न-किसी गावके पास पडाव करना था। इसलिए जो दवा चुकती, वह मिल सकती थी और हमे अपने साथ एक भी रोगी या अपग आदमी को नही रखना था। उन्हे तो रास्तेमे ही छोड देनेका निश्चय किया गया था।

खानेके लिए रोटी और शाकके सिवा और कुछ तो था ही नही। पर रोटिया आठ दिन बराबर मिलती रहे, इसका क्या उपाय हो ? रोज-की-रोज बाट देनी थी। इसका उपाय तो एक ही था कि हर मजिलपर हमारे लिए कोई उन्हे पहुचा दिया करे। यह कौन करे ? हिदुस्तानी बावर्ची तो थे ही नही। फिर हर गांवमे डबल रोटी बनाने-बेचनेवाले नही थे। गावोमे रोटी शहरोसे जाती। अत कोई बावर्ची तैयार करके दे और रेलवे उन्हे पहुचा दे तभी हमे रोटिया मिल सकती थी। वोक्सरस्ट (ट्रासवालके चार्ल्सटाउनके नजदीकका सरहदी स्टेशन) चार्ल्सटाउनसे बडा नगर था। वहा डबल रोटी बनाने वालेकी एक बडी (यूरोपियन) दूकान थी। उसने खुशीसे हर जगह रोटिया पहुचा देनेका इकरार किया। हमारी मजबूरी जानकर उसने हमसे बाजार-भावसे अधिक लेनेकी भी कोशिश नही की। बढ़िया आटेकी बनी रोटिया दी। उसने वक्तसे रोटिया रेलवेके पास पहुचाई और रेलवे कर्मचारियोने--ये भी यूरोपियन ही थे--उन्हे ईमानदारीके साथ हमारे पास पहुचा दिया। पहुचानेमे पूरी सावधानी रखी और हमारे लिए कुछ सुभीते भी कर दिये। वे जानते थे कि हमारी किसीसे शत्रुता नही। हमे किसीको नुकसान नही पहुचाना था। हमे तो कष्ट सहन कर न्याय प्राप्त करना था। इससे हमारे आसपासका वातावरण शुद्ध हो गया और बना रहा। मानव-जातिका प्रेमभाव प्रकट हुआ। सबने अनुभव किया कि हम ईसाई, यहूदी, हिंदू, मुसलमान कोई भी हो, सब भाई-भाई ही है।

यो कूचकी सारी तैयारी कर लेनेके बाद मैने फिर समझौतेकी कोशिश की। चिट्ठिया, तार आदि तो भेज ही चुका था। मैने तय किया कि मेरा अपमान तो होगा ही, पर उसका खतरा उठाकर भी मुझे टेलीफोन भी कर ही लेना

चाहिए । चार्ल्सटाउनसे प्रिटोरियाको टेलीफोन था । मैंने जनरल स्मट्सको टेलीफोन किया । उनके मत्रीसे मैंने कहा—"जनरल स्मट्ससे कहिये कि मेरी कूचकी पूरी तैयारी हो चुकी है । वोक्सरस्टके लोग उत्तेजित है । वे शायद हमारी जानका भी नुकसान करे । ऐसी धमकी तो दे ही चुके है । यह परिणाम वह (जनरल स्मट्स) भी नही चाहेगे । वह तीन पौडका कर उठानेका वचन दे दे तो मुझे कूच नही करना है । मुझे कानून तोडनेके लिए ही कानून नही तोडना है । मै इसके लिए लाचार हो गया हू । वह मेरी इतनी प्रार्थना न सुनेगे ?" आधे मिनटमे जवाब मिला—"जनरल स्मट्स आपसे कभी कोई सरोकार नही रखना चाहते । आपकी मर्जीमे जो आये वह करे ।" टेलीफोन बद !

यह फल मैने सोच ही रखा था । हा, ऐसी रुखाईकी आशा नही रखता था । जनरल स्मट्सके साथ सत्याग्रहके बादका मेरा राजनैतिक सबध छ सालसे माना जा सकता था । अत मे उनसे शिष्ट, विनययुक्त उत्तरकी आशा रखता था, पर उनकी विनयसे मुझे फूल नही जाना था । वैसे ही इस अविनयसे ढीला भी नही पडा । अपने कर्तव्यकी सीधी रेखा मुझे साफ दिखाई दे रही थी । अगले दिन (६ नवबर १९१३) नियतकालका (६॥ बजे सवेरे) घटा बजनेपर हमने प्रार्थना की और ईश्वरका नाम लेकर कूच कर दिया । काफिलेमे २०३७ पुरुष, १२७ स्त्रिया और ५७ बच्चे थे ।

: २० :

ट्रांसवालमें प्रवेश—२

इस प्रकार मजमा कहिये, कफिला कहिये, यात्रीसमुदाय

कहिये नियत समयपर रवाना हो गया। चार्ल्सटाउनसे एक मीलके फासलेपर वोक्सरस्टका नाला पडता है। उसको लांघा और वोक्सरस्ट या ट्रांसवालमे दाखिल हुए। इस नालेके सिरे-पर घुडसवार पुलिस खड़ी थी। मै पहले उसके पास गया और लोगोसे कह दिया था कि जब मै इशारा करूं तब वे प्रवेश करे। पर मै पुलिससे बात कर ही रहा था कि शाति-सेनाने हमला बोल दिया और लोग नालेको लांघ आये। घुड-सवारोने उन्हे घेर लिया, पर यह काफिला ऐसा न था कि यो रोके रोका जा सके। पुलिसका इरादा हमे गिरफ्तार करनेका तो था ही नही। मैने लोगोको शात किया और पक्तिवद्ध होकर चलनेको समझाया। पांच-सात मिनटमे सारी गडवड दूर हो गई और ट्रासवालमे हमारा दाखिल होना शुरू हो गया।

वोक्सरस्टके लोगोने दो दिन पहले ही सभा की थी। उसमे हमे अनेक प्रकारकी धमकियां दी गई थी। कुछने कहा था कि हिदुस्तानी ट्रासवालमे दाखिल हुए तो हम गोलियोसे उनका स्वागत करेगे। मि० केलनवेक इस सभामे गोरोको समझानेके लिए गये थे। कोई उनकी बात सुननेको तैयार नही था। कुछ लोग तो उन्हे मारनेके लिए खडे हो गये। मि० केलनवेक पहलवान है। उन्होने सैडोसे कसरतकी तालीम ली है। उन्हे डराना कठिन था। एक गोरेने उन्हे द्वन्द्वयुद्ध-के लिए ललकारा। मि० केलनवेकने जवाव दिया—"मैने शाति-धर्मको स्वीकार किया है, इसलिए यह (द्वन्द्वयुद्ध) तो मुझसे नही हो सकेगा। पर मुझपर जिसको प्रहार करना हो वह खुशीसे कर ले। मगर इस सभामे तो मै वोलकर ही रहूगा। आपने सभी यूरोपियनोको इसमे आनेका सार्व-जनिक निमत्रण दिया है। सभी यूरोपियन आपकी तरह निर्दोष मनुष्योको मारनेको तैयार नही। यही सुनानेके लिए

में यहा आया हू । एक यूरोपियन ऐसा भी है जो आपको बता देना चाहता है कि आपने हिंदुस्तानियोपर जो इलजाम लगाये है वे गलत है । आप जो सोचते है वह हिंदुस्तानी नही चाहते । उन्हे न आपका राज्य चाहिए, न वे आपसे लडना चाहते है । उनकी माग तो शुद्ध न्यायकी है । जो लोग ट्रासवालमे दाखिल होना चाहते हैं वे वहा वसनेके लिए नही जाना चाहते । उनपर अन्यायकारी कर लगाया गया है । उसके खिलाफ असली फरियाद करनेके लिए उन्हे दाखिल होना है । वे वहादुर है । वे लडाई-झगडा नही करेगे । आपसे लडेगे नही, पर आपकी गोलिया खाकर भी ट्रासवालमे दाखिल तो होगेही । वे आपकी गोलियो या भालोसे डरकर पीछे कदम हटानेवाले नही । उन्हे स्वय कष्ट सहनकर आपका दिल पिघलाना है । वह पिघलेगा ही । इतना ही कहनेके लिए मै यहा आया हू । यह कहकर मैने तो आपकी सेवा ही की है । आप चेते, अन्यायसे वचे ।" इतना कहकर मि० केलनवेक अपनी जगहपर बैठ गये । लोग कुछ लज्जित हुए । लडनेको ललकारनेवाला पहलवान तो उनका दोस्त हो गया ।

पर इस सभाकी हमे खवर थी, इसलिए वोक्सरस्टके गोरोकी ओरसे कोई उपद्रव हो तो हम उसके लिए तैयार थे । सरहदपर जो इतनी वडी पुलिस इकट्ठी कर रखी गई थी उसका अर्थ यह भी हो सकता है कि गोरोको मर्यादाका उल्लघन न करनेसे रोका जाय । जो हो, हमारा जलूस वहासे शाति-पूर्वक गुजर गया । किसी गोरेके कोई शरारत करनेकी याद मुझे नही है । सव यह नया कौतुक देखनेको निकल पडे । उनमेसे कितनोकी आखोमे मित्रताकी झलक भी थी ।

हमारा मुकाम पहले दिन वोकसरस्टसे कोई आठ मीलपर पडनेवाला पामफोर्ड नामका स्टेशन था और हम शामके ५-६ वजेतक वहा पहुच गये । लोगोने रोटी और शक्करका

आहार किया और मदानमे लेट गये । कोई भजन गाता था, कोई बाते करता था । कुछ स्त्रिया रास्तेमे थक गईं । अपने बच्चोको गोदमे लेकर चलनेकी हिम्मत तो उन्होने की थी । पर और आगे जाना उनकी शक्तिके बाहर था । इसलिए अपनी चेतावनीके अनुसार मैने उन्हे एक भले हिंदुस्तानीकी दुकानमे छोड दिया और कह दिया कि हम टाल्स्टाय फार्म पहुच जाए तो उनको वहा भेज दे । हम गिरफ्तार कर लिये जाए तो उनको घर भेज दे । उस व्यापारी भाईने यह प्रार्थना स्वीकार कर ली ।

ज्यो-ज्यो अधिक रात होती गई त्यो-त्यो सब शोरगुल शात होता गया । मै भी सोनेकी तैयारीमे था । इतनेमे खड-खडाहट सुनी । मैने एक यूरोपियनको लालटेन लिए आते देखा । मै समझ गया । मुझे कोई तैयारी तो करनी ही नही थी । पुलिस-अफसरने मुझसे कहा—"आपके लिए मेरे पास वारट है । मुझे आपको गिरफ्तार करना है ।"

मैने पूछा—"कब ?"

जवाब मिला—"अभी ।"

"मुझे कहा ले जाइयेगा ?"

"अभी तो पासके स्टेशन पर और जब ट्रेन आयेगी तब वोक्सरस्ट ले जाऊगा ।"

मैने कहा—"तो मै किसीको जगाये बिना तुम्हारे साथ चलता हू, पर अपने साथीको कुछ हिदायते दे दू ।"

"शौकसे दीजिए ।"

मैने बगलमे सोये हुए पी० के० नायडूको जगाया । उनसे अपनी गिरफ्तारीकी खबर देकर कहा कि काफिलेवालोको सवेरा होनेके पहले न जाना और सवेरा होनेपर नियमानुसार कूच कर देना । कूच तो सूर्योदयसे पहले ही करनी थी । जहा विश्राम करने और रोटी बाटनेका समय आये वहा लोगोको

मेरी गिरफ्तारीकी वात वता देना। इस वीच जो पूछे उसको वताते जाओ। काफिलेको पुलिस गिरफ्तार करे तो वह गिरफ्तार हो जाये। न गिरफ्तार करे तो निर्द्धारित रीतिसे कूच जारी रखे। नायडूको कोई डर तो था ही नही। उनको यह भी वता दिया कि वह पकड लिये जाए तो क्या करना होगा।

वोक्सरस्ट मे मि० केलनवेक तो मौजूद ही थे।

मै उस पुलिस-अफसरके साथ गया। सवेरा हुआ। वोक्सरस्ट जानवाली ट्रेनमे वैठा। वोक्सरस्ट मे मुझपर मुकदमा चलाया गया। सरकारी वकीलने खुद ही १४ तारीखतक मामला मुलतवी रखनेकी प्रार्थना की, क्योकि उनके पास शहादत तैयार नही थी। मुकदमा मुलतवी हो गया। मैने जमानतपर छोडे जानेकी दरख्वास्त दी। कारण यह वताया कि मेरे साथ दो हजार मर्द, १२२ औरते और ५० वच्चे है। मुकदमेकी तारीखतक मै उनको ठिकाने पहुचाकर लौट आ सकता हू। सरकारी वकीलने जमानतकी दरख्वास्त-का विरोध तो किया, पर मजिस्ट्रेट लाचार था। मुझपर जो आरोप था वह ऐसा नही था जिसमे अभियुक्तको जमानतपर छोडना भी मजिस्ट्रेटकी मर्जीकी वात हो। अत उन्होने मुझे ५० पौडकी जमानतपर रिहा कर दिया। मेरे लिए मोटर तो मि० केलनवेकने तैयार ही रखी थी। उसमे वैठाकर तुरत मुझको मेरे काफिलेके पास पहुचा दिया। ट्रासवालके अखवार 'दी ट्रासवाल लीडर' का प्रतिनिधि हमारे साथ आना चाहता था। उसे अपनी मोटरमे वैठा लिया। उसने इस यात्रा, मुकदमे और यात्रीदलसे मिलनेका विशद वर्णन अपने पत्रमे प्रकाशित किया। लोगोने हर्षपूर्वक मेरा स्वागत किया। उनके उत्साहकी सीमा नही रही। मि० केलनवेक तुरत वोक्सरस्ट लौट गये। उन्हे चार्ल्सटाउनमे ठहरे हुए और नये आनेवाले भारतीयोकी सम्हाल करनी थी।

हम आगे बढ़े, पर मुझे आजाद छोड़ना सरकारको अनुकूल नही पड़ सकता था। इसलिए अगले दिन मै फिर स्टेडरटनमें गिरफ्तार कर लिया गया। स्टेडरटन औरोकी तुलनामे कुछ बड़ा गाव है। यहां मै विचित्र रीतिसे गिरफ्तार किया गया। मै लोगोको रोटी बाट रहा था। यहाके हिंदुस्तानी दुकानदारोने मुरब्बेके कुछ डब्बे भेट किये थे। इससे वितरणमे कुछ अधिक समय लग रहा था। इस बीच मजिस्ट्रेट मेरे पास आकर खडे हो गये। उन्होंने वितरणका काम पूरा हो जाने दिया। इसके बाद मुझे एक किनारे बुलाया। उनको मै पहचानता था। इसलिए मैंने सोचा कि वह मुझसे कुछ बाते करना चाहते होगे। उन्होंने हँसकर मुझसे कहा—

"आप मेरे कैदी है।"

मैंने कहा—"तो मेरा दर्जा बढा, क्योकि पुलिसके बदले खुद मजिस्ट्रेट मुझे गिरफ्तार करने आये है। पर मुझपर अभी मुकदमा चलाइयेगा न ?"

उन्होंने जवाब दिया—"मेरे साथ ही चलिए। अदालत तो बैठी ही है।"

लोगोको कूच जारी रखनेकी सलाह देकर मैंने विदा ली। अदालतमे पहुचते ही देखा कि मेरे कुछ साथी भी पकड लिए गये है। वे थे पी० के० नायडू, बिहारीलाल महाराज, रामनारायणसिह, रघुनारसू और रहीम खा—ये पाच जने।

मै तुरन्त अदालतके सामने पेश किया गया। मैंने वही कारण देकर जो वोक्सरस्टमे दिये थे, मुहलत और जमानतकी दरख्वास्त दी। यहा भी सरकारी वकीलने विरोध किया। पर मजिस्ट्रेटने २१ नवम्बरतक मुकदमा मुलतवी कर दिया और मुझे ५० पौंडके जाती मुचलकेपर रिहा कर दिया। भारतीय व्यापारियोने मेरे लिए इक्का तैयार रखा ही था। काफिला अभी तीन मील भी आगे नही पहुचा था कि मै फिर

उससे जा मिला। अब तो लोगोने और मैंने भी सोचा कि शायद हम टाल्स्टाय फार्म पहुच जायगे। पर यह खयाल सही नही था। लोग मेरी गिरफ्तारीके आदी हो गये, यह कोई छोटी-मोटी वात नही थी। मेरे पाचो साथी जेलमे ही रहे।

: २१ :

सभी कैद

अब हम जोहान्सबर्गके काफी नजदीक पहुच गये थे। पाठक याद रखे कि सारा रास्ता हमने आठ दिनमे तै करनेका निश्चय किया था। अवतक हम योजित मजिले पूरी करते आये थे, इसलिए अब पूरी चार मजिले बाकी रह गई थी। पर जैसे-जैसे हमारा उत्साह बढ रहा था वैसे-वैसे सरकार-की जागृति भी बढनी ही चाहिए थी। हमे अपनी मजिलपर पहुच जाने दे और इसके बाद गिरफ्तार करे तो यह उसकी कमजोरी और अकुशलता समझी जाती। इसलिए अगर हमे गिरफ्तार करना हो तो मजिल पूरी होनेके पहले ही गिरफ्तार करना चाहिए।

सरकारने देखा कि मुझको गिरफ्तार कर लेनेपर भी काफिला न निराश हुआ, न डरा, न उसने उपद्रव किया। उपद्रव करे तो सरकारको तोप-बदूकसे काम लेनेको पूरा मौका मिल जाय। जनरल स्मट्सके लिए तो हमारी दृढता और उसके साथ-साथ शाति, यही दु खकी बात हो गई। उन्होने तो यहा तक कह डाला—"शात मनुष्यको कोई कबतक सताये?" मरे हुएको मारना कैसे हो? मरेको मारनेमे कोई मजा ही नही आता। इसीसे दुश्मनको जिदा पकडनेमे गौरव माना जाता है। चूहा बिल्लीको देखकर भागना छोड दे तो बिल्लीको दूसरा

शिकार ढूढना ही होगा । सभी मेमने सिहकी वगलमे जाकर वैठ जाए तो सिहको मेमनोका आहार छोड ही देना पडे । सिह सामना न करता हो तो पुरुषसिह क्या सिहका शिकार करे ?

हमारी शाति और हमारे निश्चयमे हमारी विजय छिपी हुई थी ।

गोखलेकी इच्छा थी कि पोलक हिदुस्तान जाकर भारत-सरकार और साम्राज्य-सरकारके सामने दक्षिण अफ्रीकाकी परिस्थिति रखनेमे उनकी सहायता करे । मि० पोलकका स्वभाव ऐसा था कि जहां हो वही उपयोगी हो जाए । वह जो काम हाथमे लेते उसीमे तन्मय हो जाते । इससे उन्हे हिदुस्तान भेजनेकी तैयारी चल रही थी । मैने तो उन्हे लिख दिया था कि आप जा सकते है । पर मुझसे मिले और जवानी पूरी हिदायते लिये विना जाना वह पसद नही करते थे । इसलिए उन्होने कूचके ही दरमियान आकर मिल जानेकी इजाजत मागी । मैने तारसे जवाव दिया कि पकड लिये जानेकी जोखिम उठाकर आना चाहे तो आ सकते है । लडनेवाले जरूरी खतरे सदा उठा ही लेते है । सरकार सवको गिरफ्तार कर ले तो गिरफ्तार हो जानेकी तो यह लडाई ही थी । जवतक न पकडे तवतक पकडे जानेके लिए सव सरल और नीतिमय यत्न करते जाना था । अत. मि० पोलकने पकडे जानेकी जोखिम लेकर आना पसद किया ।

हम हेडलवर्गके पासतक पहुचे थे । मि० पोलक पासके स्टेशनपर उतरकर और पैदल ही आकर हमसे मिले । हमारी वाते चल रही थी । लगभग पूरी भी हो चली थी । इस वक्त दिनके कोई तीन वजे होगे । हम दोनो काफिलेके आगे-आगे चल रहे थे । दूसरे साथी भी हमारी वाते सुन रहे थे । मि० पोलकको शामको डर्वन जानेवाली ट्रेन पकडनी थी । पर जव राम-

ट्रांसवालकी कूच
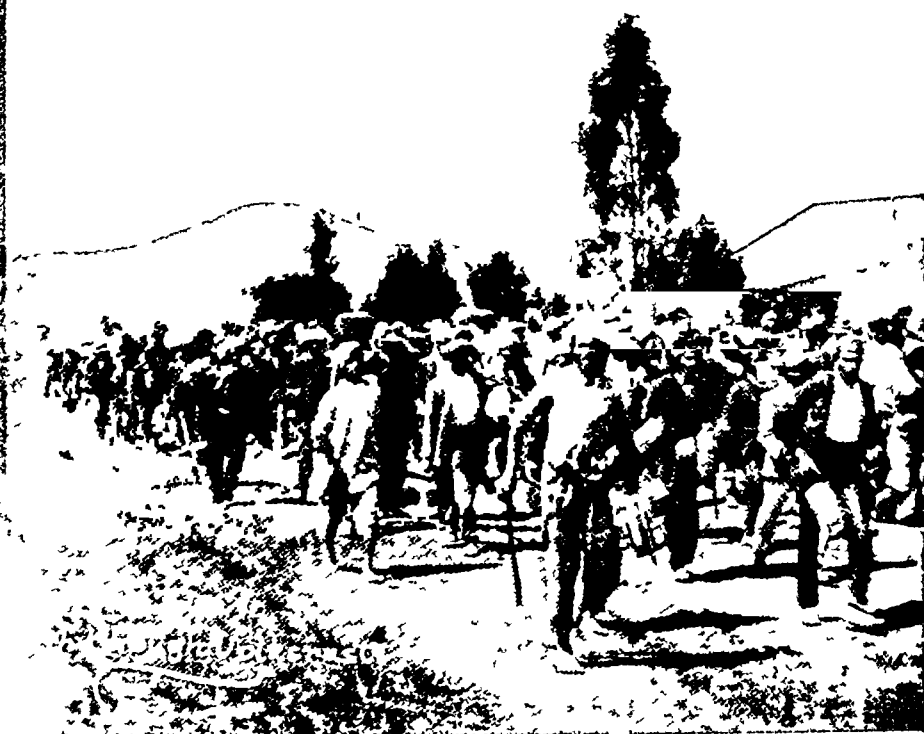
चद्रजी-सरीखे पुरुषको राजतिलकके ही समय वनवास मिला तो पोलककी क्या हकीकत थी ? हम बाते कर रहे थे कि एक घोडागाडी सामने आकर खडी हो गई । उसमे एशियाई महकमेके प्रधान (ट्रासवालके प्रधान इमिग्रेशन आफिसर) मि० चमनी और एक पुलिस-अफसर थे । दोनो नीचे उतरे । मुझको थोडी दूर ले जाकर एकने कहा, "मै आपको गिरफ्तार करता हू ।"

इस तरह चार दिनके अदर मै तीन बार गिरफ्तार किया गया । मैने पूछा, "और काफिलेको ?"

"वह होता रहेगा ।"

मै कुछ नही बोला । पोलकसे कहा कि आप काफिलेके साथ जाये । पुलिस-अफसरने मुझे सिर्फ अपनी गिरफ्तारीकी खबर लोगोको दे देनेकी इजाजत दी । ज्योही लोगोसे शाति रखने आदिके लिए कहना आरभ किया, उक्त अफसर साहब बोल उठे—"अब आप कैदी है, भाषण नही दे सकते ।"

मैने अपनी मर्यादा समझ ली । समझनेकी जरूरत तो नही थी, क्योकि मुझसे बोलना बद करनेके साथ ही उक्त अफसरने गाडीवानको जोरसे गाडी हाकनेका हुक्म दिया । क्षणभरमे काफिला अदृश्य हो गया ।

उक्त अधिकारी जानता था कि घडीभर तो मेरा ही राज्य है, क्योकि वह तो हमारे अहिसा व्रतपर विश्वास रखकर ही इस वीरान मैदानमे दो हजारके मजमेके सामने अकेला आया हुआ था । वह यह भी जानता था कि उसने मुझे चिट्ठीसे कैद किया होता तो भी मै अपने आपको उसके हवाले कर देता । ऐसी हालतमे मै कैदी हू, इसकी याद मुझे दिलाना अनावश्यक था । मै लोगोसे जो कहता वह अधिकारियोके लिए भी उपयोगी ही होता । पर उन्हे तो अपना रूप दिखाना ही चाहिए । इसके साथ ही मुझे यह भी कह देना चाहिए कि

अनेक अधिकारी हमारी कैदको समझते थे। वे जानते थे कि कैद हमारे लिए अंकुश या दु:खरूप नही है, हमारे लिए तो वह मुक्तिका द्वार है। इससे हमे हर तरहकी जायज आजादी देते। इतना ही नही, गिरफ्तार करनेमे उनको आसानी हो और उनका वक्त बचे इससे हमारी मदद लेते और मिलनेसे उपकार मानते। दोनो तरहके नमूने इन प्रकरणोमे पाठकोको मिलेगे।

मुझे एकसे दूसरी जगह घुमाते हुए अतमे हेडलवर्गके थानेमे ले जाकर रखा। रात वही विताई।

पोलक काफिलेको लेकर आगे बढे और ग्रेलिग्सटैड पहुचे। वहा भारतीय व्यापारियोका अच्छा जमाव था। रास्तेमे सेठ अहमद मुहम्मद काछलिया और सेठ आमद मुहम्मद भायात मिले। क्या होनेवाला है, इसकी खबर उन्हे मिल गई थी। मेरे ही साथ पूरे काफिलेको भी गिरफ्तार कर लेनेका प्रबध कर लिया गया था। इसलिए मि० पोलकने सोचा कि काफिलेको ठिकाने पहुचा दिया तो एक दिन देरसे भी डर्बन पहुचकर हिंदुस्तान जानेवाले जहाजको पकड सकते है। पर ईश्वरने कुछ और ही सोच रखा था।

१० तारीखको लगभग ९ बजे सवेरे काफिला बालफोर पहुचा जहा काफिलेको गिरफ्तार कर नेटाल पहुचा देनेके लिए तीन स्पेशल ट्रेने खडी थी। यहा लोगोने कुछ हठ पकडी। कहा—"गाधीको बुलाओ। वह कहे तो हम गिरफ्तार होगे और ट्रेनमे सवार होगे।" यह हठ अनुचित थी। उसको न छोडनेसे हमारी बाजी बिगडती, सत्याग्रहीका तेज घटता। जेल जानेमे गाधीको क्या काम? सिपाही कही सेनानायकका चुनाव करता है या उनमेसे किसी एकका ही हुक्म माननेका आग्रह कर सकता है? मि० चमनीने इन लोगोको समझानेमे मि० पोलक और सेठ काछलियाकी मदद ली। वे कठि-

नाईसे उन्हे समझा सके कि उनकी तो मुराद ही जेल जाना है और जब सरकार गिरफ्तार करनेको तैयार है तो हमे उसके न्यौतेका स्वागत करना चाहिए। इसीमे हमारी सज्जनता और विजय है। उन्हे समझ लेना चाहिए कि मेरी इच्छा दूसरी हो ही नही सकती। लोग समझ गये और ट्रेनमे सवार हो गये।

इधर मै फिर मजिस्ट्रेटके सामने पेश किया गया। उस वक्त ऊपरकी घटनाकी मुझे कुछ भी खबर नही थी। मैंने फिर अदालतसे मुहलतकी प्रार्थना की। बताया कि दो अदालते मुहलत मजूर कर चुकी है। यह भी कहा कि हमारी मजिल अब थोडी ही बाकी है और प्रार्थना की कि सरकार या तो काफिलेको गिरफ्तार कर ले या मुझे उनको उनके स्थान टाल्स्टाय फार्ममे छोड आने दे। अदालतने मेरी प्रार्थना तो स्वीकार नही की, पर मेरी दरख्वास्त तुरत सरकारके पास भेज देना मजूर किया। इस वक्त मुझे डडी ले जाना था। मुझपर असल मुकदमा गिरमिटिया मजदूरोको नेटाल छोड-कर चले जानेका बहकानेका तो वही चलाया जानेवाला था। अत मुझे उसी दिनकी ट्रेनसे डडी ले गये।

उधर मि० पोलक बालफोरमे गिरफ्तार नही किये गये, बल्कि काफिलेकी गिरफ्तारीमे अधिकारियोको उनसे जो मदद मिली उसके लिए उन्हे धन्यवाद भी दिया गया। मि० चमनीने तो यह भी कहा कि आपको गिरफ्तार करनेका सरकारका इरादा ही नही है। पर यह तो था मि० चमनीका, और जहातक उन्हे मालूम था, सरकारका विचार था, किन्तु सरकारका विचार तो घडी-घडी बदला करता है। सर-कारने अतमे तै किया कि मि० पोलकको हिदुस्तान नही जाने देना चाहिए और उनको तथा मि० केलनबेकको, जो खूब काम कर रहे थे, गिरफ्तार कर लेना चाहिए। फलत.

मि० पोलक चार्ल्सटाउनमे गिरफ्तार कर लिए गये। मि० केलनवेक भी पकड लिए गये। दोनो वोक्सरस्ट जेलमे बंद किए गये।

मुझपर डंडीमे मुकदमा चलाया गया और नौ महीनेकी कडी कैदकी सजा मिली (११ नवंबर)। अभी वोक्सरस्टमे दूसरा मुकदमा वर्जित व्यक्तियोको ट्रांसवालमे दाखिल होनेकी प्रेरणा और इसमे सहायता करनेका बाकी था। मुझे वोक्सरस्ट ले गये। वहा मैने मि०केलनवेक और मि० पोलकको देखा। यो हम तीनो वोक्सरस्ट जेलमे मिले। इससे हमारे हर्षका पार न रहा।

वोक्सरस्टमे मुझपर जो मुकदमा चलाया गया उसमे अपने खिलाफ मुझको ही शहादत देनी थी। पुलिसको मिल सकती थी, पर कठिनाईसे। इसलिए उसने मेरी मदद ली। यहाकी अदालते केवल अभियुक्तके अपराधी होना स्वीकार कर लेनेपर सजा नही करती थी।

मेरा काम तो हुआ; पर मि० केलनवेक और मि० पोलकके खिलाफ कौन शहादत दे? शहादत न मिले तो उनको सजा देना नामुमकिन था। उनके खिलाफ झट शहादत हासिल कर लेना भी कठिन था। मि० केलनवेकको तो अपना अपराध स्वीकार कर लेना था, क्योकि उनका इरादा काफिलेके साथ रहनेका था। पर मि० पोलकका विचार तो हिंदुस्तान जानेका था। इससे हम तीनोने मिलकर यह तै किया कि मि० पोलकने अपराध किया है या नही, इस सवालके जवाबमे हम 'हा' या 'ना' कुछ भी न कहे।

इन दोनो साथियोके विरुद्ध मै गवाह बना। हम यह नही चाहते थे कि मुकदमे ज्यादा वक्त ले, इसलिए तीनो मुकदमे एक-एक दिनमे ही खतम हो जाय, इसमे अपनी ओरसे पूरी मदद दी। ऐसा हुआ भी। हम तीनोको तीन-तीन महीनेकी

कैदकी सजा मिली। हमने सोचा कि ये तीन महीने तो हम साथ रह सकेंगे, पर सरकारका सुभीता इसकी इजाजत नही देता था।

इस बीच थोडे दिन हम वोक्सरस्ट जेलमे सुखसे रहे। यहा रोज नये कैदी आते और बाहरकी खबर लाते। इन सत्याग्रही कैदियोमे एक हरवतसिह नामका बूढा था। उसकी उम्र ७५ से ऊपर थी। वह किसी खानमे काम नही करता था। अपना गिरमिट तो वह बरसो पहले पूरा कर चुका था। इसलिए वह हडतालमे शामिल नही था। मेरी गिरफ्तारीके बाद लोगोमे उत्साह बहुत ही बढ गया था और बहुतेरे नेटालसे ट्रासवालमे दाखिल होकर गिरफ्तार हो रहे थे। हरवतसिह भी उन्होमे था। मैने उससे पूछा—"आप जेलमे क्यो आये ? आप जैसे बूढोको मैने जेलमे आनेका निमत्रण नही दिया है ?"

हरवतसिहने जवाब दिया—"मै कैसे रह सकता था, जब आप, आपकी धर्मपत्नी और आपके लडके तक हम लोगोके लिए जेल चले गये ?"

"लेकिन आपसे जेलके दु ख बर्दाश्त नही हो सकेंगे। आपके छूटनेके लिए मै कोशिश करू ?"

"मै हरगिज जेल नही छोडूगा। मुझे एक दिन तो मरना है ही। फिर ऐसा दिन कहा, जो मेरी मौत यहा हो जाय।"

इस दृढताको मै कैसे डिगाता ? वह डिगाए डिगती भी नही। मेरा सिर इस निरक्षर ज्ञानीके सामने झुक गया। जैसी हरवतसिहकी भावना थी वैसा ही हुआ। हरवतसिहकी मृत्यु जेलमे हुई। उसका शव वोक्सरस्टसे डर्बन मगाया गया और सैकडो भारतीयोकी उपस्थितिमे उसका सम्मानपूर्वक अग्निसस्कार किया गया। ऐसे हरवतसिह इस लडाईमे एक ही नही, अनेक थे। पर जेलमे मरनेका सौभाग्य

केवल अकेले उसीको मिला। इससे दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहके इतिहासमे वह उल्लेखका अधिकारी हो गया।

इस प्रकार लोग आकृष्ट होकर जेल आये यह सरकारको पसद नही हो सकता था। फिर जेलसे छूटनेवाले मेरा सदेसा ले जाय यह भी उसको गवारा नही हो सकता था। अत हम तीनोको अलग कर देने, एकको भी वोक्सरस्टमे न रहने देने और मुझे ऐसी जेलमे ले जानेका निश्चय किया गया जहा कोई हिदुस्तानी जा ही न सके। फलत मैं आरेजियाकी राजधानी ब्लूम फोनटीनकी जेलमे भेजा गया। आरेजियामे कुल मिलाकर ५० से अधिक हिदुस्तानी नही थे। वे सभी होटलोमे नौकरी करते थे। ऐसे प्रदेशकी जेलमे हिदुस्तानी कैदी हो ही नही सकते थे। उस जेलमे मै अकेला ही हिदुस्तानी था। वाकीके सभी कैदी गोरे या हवशी थे। मुझे इसका दुख नही था, वल्कि मैने इसको सुख माना। मुझे न कुछ सुनना था, न देखना। नया अनुभव मिले यह मेरे मनको भानेवाली वात थी। फिर मुझे पढनेका समय तो वरसोसे, कहिये १८९३ के वादसे, मिला ही नही था। अव एक वरस मिलेगा यह जानकर मुझे तो खुशी हुई।

मै ब्लूम फोनटीन पहुचाया गया। वहा एकात तो यथेच्छ मिला। कठिनाइया भी वहुत थी, पर सभी सह्य थी। उनका वर्णन करके पाठकोका समय नही लूंगा। फिर भी इतना वता देना जरूरी है कि वहाका डाक्टर मेरा मित्र हो गया। जेलर तो केवल अपने अधिकारको ही समझता था, पर डाक्टर कैदियोके हककी रक्षाका ध्यान रखता था। मेरा यह काल शुद्ध फलाहारका था। न दूध लेता, न घी। अन्न भी न खाता। केले, टमाटर, कच्ची मूगफली, नीवू और जैतूनका तेल, वस यही मेरी खूराक थी। इनमे एक भी चीज सडी आये तो भूखो मरना पडता। इसलिए डाक्टर खास

तौरसे ध्यान रखते और उन्होंने मेरी खूराकमे बादाम, अखरोट और ब्रेजीलनट बढा दिया। खुद सारे फलोको देखते और उनके अच्छे होनेका इतमीनान करते। मुझे जो कोठरी दी गई थी उसमे हवा बहुत ही कम आती थी। उसका दरवाजा खुला रखवानेकी उन्होने पूरी कोशिश की, पर उनकी चली नही। जेलरने धमकी दी कि दरवाजा खुला रखा गया तो मै इस्तीफा दे दूगा। जेलर बुरा आदमी नही था, पर उसका स्वभाव एक ही साचेमे ढला हुआ था, वह कैसे बदला जाय? उसे उपद्रवी कैदियोसे काम पडता था। इसलिए मुझ जैसे भले कैदीके साथ भेदभाव करता तो दूसरे कैदियोके उसपर हावी हो जानेका सच्चा डर था। मै जेलरका दृष्टिबिंदु ठीक तौरसे समझ सकता था और इससे डाक्टर और जेलरके बीच मेरे बारेमे जो झगडा होता उसमे मेरी हमदर्दी जेलरकी ओर होती। जेलर अनुभवी और सीधे रास्तेपर जानेवाला था और अपने रास्तेको साफ देख सकता था।

मि० केलनबेक प्रिटोरियाकी जेलमे भेजे गये और मि० पोलक जरमिस्टनकी जेलमे।

पर सरकारकी सारी योजना बेकार थी। आसमान टूटे तो पैबद क्या काम देगा? नेटालके गिरमिटिए हिंदुस्तानी पूरे तौरसे जग गये थे। दुनियाकी कोई भी ताकत उनको रोक नही सकती थी।

: २२ :

कसौटी

सोनेकी परख करनेवाला सदा उसको कसौटीपर घिसता है। फिर और परीक्षा करनी हो तो उसे भट्टीमे डालता है, उसे

पीटता है, मैल हो तो उसे निकाल डालता है और अतमे उसका कुदन बनाता है। ऐसी ही कसौटी हिंदुस्तानियोकी हुई। वे हथौडेसे पीटे गये, भट्टीमे डाले गये, तपाये गये और जब वे परीक्षामे सच्चे उतरे तभी उनकी कीमत आकी गई।

यात्रियोको जो स्पेशल ट्रेनमे सवार कराके ले गये तो वन-भोजके लिए नही, बल्कि उनको निहाई पर चढानेके लिए ले गये। रास्तेमें उनको खाना देनेका भी प्रबध नही था। नेटाल पहुचे कि तुरत उनपर मुकदमा चलाया गया। उनको कैदकी सजा मिली। यह तो समझी हुई बात थी, पर हजारो आद-मियोको जेलमे रखना तो खर्च बढाना और हिंदुस्तानियोकी मनचाही करना होता। कोयलेकी खाने बद रहती। ऐसी स्थिति अधिक दिन चले तो तीन पौडका कर रद करना ही पडता। इस-लिए यूनियन सरकारने एक नयी युक्ति सोची। गिरमिटिये जहा-जहासे आये थे उन्ही स्थानोको, एक नया कानून बनाकर, उसने जेल बना दिया और इन जेलोका दारोगा खानोके गोरे कर्मचारियोको बना दिया। इस प्रकार जो काम मजदूरोने छोड दिया था वही सरकारने उनसे जबर्दस्ती कराया। गुलामी और नौकरीमे यह फर्क है कि नौकर काम छोड दे तो उसपर दीवानी अदालतमे नालिश ही की जा सकती है और गुलाम काम छोडे तो जबर्दस्ती कामपर वापस लाया जा सकता है, यानी अब मजदूर पूरे तौरपर गुलाम हो गये।

पर इतना ही काफी नही था। मजदूर बहादुर थे। उन्होने खानोमे काम करनेसे साफ इन्कार कर दिया। इसके फल-स्वरूप उन्हे कोडोकी मार सहनी पडी। अक्खड आदमियोने जो क्षणभरमे अधिकारी बन बैठे थे उन्हे लाते मारी, गालिया दी और दूसरे अत्याचार किये। उसका तो कही उल्लेखतक नही हुआ है। गरीब मजदूरोने इन सबको धीरजके साथ सह लिया। इन अत्याचारोके तार हिंदुस्तान पहुचे। तब तार गोखलेके

नाम भेजे जाते। उन्हे एक दिन भी व्योरेवार तार न मिलता तो सीधे पूछते। इन तारोका प्रचार वह अपनी रोगशय्यासे करते, क्योकि इन दिनो वह सख्त बीमार थे। पर दक्षिण अफ्रीकाका काम इस दशामे भी खुद देखनेका आग्रह रखते थे और इस काममे न रात देखते, न दिन। फल यह हुआ कि सारा हिंदुस्तान भडक उठा और दक्षिण अफ्रीकाका सवाल वहा प्रधान प्रश्न बन गया।

यही वक्त था जब लार्ड हार्डिजने मद्रासमे (दिसबर १९१३) वह प्रसिद्ध भाषण दिया जिसने दक्षिण अफ्रीका और विलायतमे खलबली मचा दी। वाइसराय दूसरे उपनिवेशो या साम्राज्यके अंगभूत देशोकी आलोचना नही कर सकता। पर लार्ड हार्डिजने यूनियन सरकारकी कडी टीका ही नही की, सत्याग्रहियोके कामका पूरा बचाव भी किया, यहातक कि सविनय कानून भग-का भी समर्थन किया। विलायतमे उनके साहसकी कुछ कडवी आलोचना अवश्य हुई, फिर भी उन्होने अपने कार्यपर पश्चात्ताप न कर उसका औचित्य प्रकट किया। उनकी इस दृढताका असर बहुत अच्छा हुआ।

इन अपनी खानोमे कैद दुखी और हिम्मतवाले मजदूरो-को छोडकर हम क्षणभर खानोके बाहरकी स्थितिपर निगाह डाले।

खाने नेटालके उत्तरी भागमे अवस्थित थी, पर हिंदुस्तानी मजदूरोकी बडी-से-बडी तादाद नेटालके नैऋत्य और वायव्य कोणोमे थी। वायव्य कोणमे फिनिक्स, वेरू-लम, टोगाट इत्यादि स्थान पडते है, नैऋत्यमे इसीपिगो और अमजिन्टो इत्यादि। वायव्य कोणके मजदूरोके साथ मेरा खास परिचय था। उनमेसे बहुतेरे बोअर-युद्धमे भी मेरे साथ रह चुके थे। नैऋत्य दिशाके मजदूरोके साथ मेरा इतना नजदीकका साबका नही पडा था। उस ओर

मेरे साथी भी बहुत थोडे थे। फिर भी हडताल और जेलकी बात विद्युत् गतिसे फैल गई। दोनो कोणोसे हजारो मजदूर यकायक निकल पडे। कितनोने यह सोचकर अपना सामान बेच डाला कि लडाई लबी होगी और हमे खाना कोई देगा नही। मैने तो जेल जाते समय साथियोको चेता दिया था कि ज्यादा मजदूरोको हडताल करनेसे रोके। मुझे आशा थी कि खानोके मजदूरोकी मददसे ही लडाईकी सब मजिल पार कर लूगा। अगर सारे मजदूर यानी लगभग दस हजार लोग हडताल कर दे तो उनके भरण-पोषणका भार उठाना कठिन होगा। इतनी बडी सेनासे कूच कराने जितनी सामग्री भी अपने पास नही थी। न इतने मुखिया थे, न इतना पैसा। फिर इतने आदमियोको इकट्ठा कर शाति-भग बचाना भी नामुमकिन होता।

पर बाट आये तो किसीके रोके रुक सकती है ? मजदूर हर जगह अपने आप काम छोडकर निकल पडे। स्वयसेवक भी उन स्थानोमे स्वेच्छासे सघटित हो गये।

सरकारने अब बदूकसे काम लेनेकी नीति अपनाई। लोगोको हडताल करनेसे जबर्दस्ती रोका। उनके पीछे घुडसवार दौडाये और वे अपने स्थानपर पहुचा दिये गये। वे तनिक भी उपद्रव करे तो फैर कर देनेका हुक्म था। हडतालियोके एक समूहने उन्हे कामपर वापस ले जानेकी कोशिशका विरोध किया। किसी-किसीने पुलिसपर ईंट-पत्थर भी फेके। उनपर गोलियोकी बौछार कर दी गई। बहुतेरे घायल हुए, दो-चार मरे भी। पर मजदूरोका जोश इससे ठडा नही हुआ। स्वयसेवकोने बडी कठिनाईसे वेरुलमके पास हडताल करनेसे लोगोको रोका। पर सब मजदूर कामपर वापस नही गये। कुछ तो डरसे छिप गये और फिर कामपर वापस नही गये।

एक घटना उल्लेखनीय है। वेरुलममे बहुतसे मज-

दूर काम छोडकर निकल पडे थे। वे किसी उपायसे कामपर वापस नही जाते थे। जनरल ल्यूकिन अपने सिपाहियोके साथ वहा मौजूद थे और हडतालियोपर गोली चलानेका हुक्म देनेको तैयार थे। स्वर्गीय पारसी रुस्तमजीका छोटा लडका बहादुर सोराबजी जो उस वक्त मुश्किलसे १८ बरसका रहा होगा, डर्बनसे यहा पहुच गया था। जनरलके घोडेकी लगाम थामकर वह बोल उठा, "आप फैर करनेका हुक्म नही दे सकते। मै अपने आदमियोको शातिसे कामपर लौटा देनेकी जिम्मेदारी लेता हू।" जनरल ल्यूकिन उस नौजवानकी बहादुरीपर मुग्ध हो गये और उसे अपना प्रेम-बल आजमा लेने-की मुहलत दे दी। सोराबजीने लोगोको समझाया। वे समझ गये और अपने कामपर लौट गये। इसतरह एक नवयुवक-की मौकेकी सूझ, निर्भयता और प्रेमसे खूनखराबी होते-होते बची।

पाठकोको जान लेना चाहिए कि ये गोलियोकी बौछार आदि काम गैरकानूनी ही माने जा सकते है। खानोके मजदूरो-के साथ व्यवहार करनेमे सरकारकी कार्रवाईकी जाहिरा शक्ल बाकायदा थी। वे हडताल करनेके लिए नही, बल्कि ट्रासवालकी सरहदमे बिना परवानोके प्रवेश करनेके जुर्ममे गिरफ्तार किये गये थे। नैऋत्य और वायव्य कोणोमे हडताल करना ही अगर अपराध मान लिया गया था तो वह किसी कानूनके रूसे नही, बल्कि अधिकारके बलसे। अतमे तो शक्ति ही कानून बन जाती है। अगरेजीमे एक कहावत है जिसके माने यह है कि बादशाह कभी कोई गलती करता ही नही।[1] हुकूमतका सुभीता ही आखिरी कानून है। यह दोष सार्वभौम है। सच पूछिये तो इस तरह कानूनको भूल जाना सदा दोष ही नही होता। कुछ

---

[1] दी किंग कैन डू नो रोग।

मौकोपर कानूनसे चिपके रहना ही दोष बन जाता है। जब राजशक्ति लोकसग्रह करती हो और जब उसका नियन्त्रित करने वाला वधन उस शक्तिका नाश करनेवाला बन रहा हो तब उस वधनका अनादर धर्म-सगत और विवेकका अनुसरण है। ऐसे अवसर कभी-कभी ही उपस्थित होते है। जहा राज्य अकसर निरकुश होकर व्यवहार करता है वहा वह लोकोपकारी नही हो सकता। यहा राज्यके निरकुश होनेका कोई कारण नही था, हडताल करनेका हक अनादि है। यह जान लेनेके लिए सरकारके पास काफी मसाला था कि हडताल करनेवालोको उपद्रव कदापि नही करना था। हडतालका बडे-से-बडा परिणाम इतना ही हो सकता था कि तीन पौडका कर रद हो जाता। शातिप्रिय लोगोके विरुद्ध शातिमय उपाय ही उचित माने जा सकते है। फिर यहा राजशक्ति लोकोपकारी नही थी। उसका अस्तित्व केवल गोरोके भलेके लिए था। आमतौरसे वह हिदुस्तानियोकी विरोधिनी थी। इसलिए ऐसी एक-पक्षीय राजशक्तिकी निरकुशता किसी तरह उचित और क्षन्तव्य नही मानी जा सकती।

अत मेरी समझसे यहा शक्तिका शुद्ध दुरुपयोग हुआ। जिस कार्यकी सिद्धिके लिए शक्ति या अधिकारका यो दुरुपयोग किया जाता है वह कभी सिद्ध नही होता। कभी-कभी क्षणिक सिद्धि मिलती दिखाई देती है, पर स्थायी सफलता कभी नही मिलती। दक्षिण अफ्रीकामे गोलिया बरसानेके ६ महीनेके अदर ही जिस तीन पौडके करको कायम रखनेके लिए यह अत्याचार किया गया वही रद हो गया। यो अकसर दुख सुखके लिए होता है। इन क्लेशोकी पुकार हर जगह सुनी गई। मै तो यह मानता हू कि जैसे एक रेलमे उसके हर पुरजे-का अपना स्थान होता है वैसे ही हर-एक सघर्ष-सग्राममे हर चीजकी अपनी जगह होती है और जैसे कीट, मैल आदि

कलकी गति रोक देते है वैसे ही कितनी चीजे युद्धकी गति भी रुद्ध कर देती है। हम तो निमित्तमात्र होते है, इसलिए हम सदा यह नही जानते कि क्या हमारे प्रतिकूल है और क्या अनुकूल। अत हमे केवल साधनको जाननेका अधिकार है और साधन पवित्र हो तो फलके विषयमे हम निर्भय और निश्चित रह सकते है।

इस लडाईमे मैने यह देखा कि ज्यो-ज्यो लडनेवालोका कष्ट बढा त्यो-त्यो उसका अत निकट आता गया। कष्ट उठानेवालोकी निर्दोषिता ज्यो-ज्यो अधिक स्पष्ट होती गई त्यो-त्यो भी युद्धका अत निकट आता गया। फिर इस युद्धमे मैने यह भी देखा कि ऐसे निर्दोष, नि शस्त्र और अहिसक युद्धमे आडे वक्तपर आवश्यक साधन अनायास जुट जाते है। बहुतसे स्वयसेवकोने, जिन्हे मै आजतक नही जानता, अपने आप आकर हमारी मदद की। ऐसे सेवक बहुत करके निस्स्वार्थ होते है। इच्छा न होते हुए भी अदृश्य रीतिसे सेवा कर देते है। न कोई उनकी सेवा कही लिखता है और न कोई उन्हे प्रमाणपत्र देता है। कितने ही तो इतना भी नही जानते कि उनके ये अमूल्य कार्य भगवानकी वहीमे दर्ज किये जाते है।

दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय परीक्षामे पास हुए। उन्होने अग्निमे प्रवेश किया और उससे विना बाल बाका हुए बाहर निकले। युद्धका अत किस तरह आरभ हुआ यह अलग प्रकरणमे देखेगे।

: २३ :

अंतका आरंभ

पाठकोने देखा होगा कि जितना बल लगाया जा सकता था उतना और जितनेकी उससे आशा रखी जा सकती थी, उससे अधिक शात बल कौमने लगा दिया। उन्होने यह भी देखा होगा कि बल लगानेवालोका बहुत बड़ा भाग ऐसे गरीब और दलित जनोका था जिससे कुछ भी आशा नही रखी जा सकती थी। उन्हे यह भी याद होगा कि दो या तीनको छोड़-कर फिनिक्स-आश्रमके सभी जिम्मेदार कार्यकर्ता इस वक्त जेल-मे थे। फिनिक्ससे बाहर रहनेवालोमे स्वर्गीय सेठ अहमद मुहमद काछलिया बचे थे। फिनिक्समे मि० वेस्ट, मिस वेस्ट और मगनलाल गाधी थे। सेठ काछलिया साधारण देखभाल करते थे। मिस श्लेजिन ट्रासवालका सारा हिसाब-किताब और सरहद लाघनेवालोकी देख-रेख रखती थी। मि० वेस्टपर 'इडियन ओपीनियन' के अग्रेजी भागका काम सम्हालने और गोखलेके साथ तारद्वारा पत्रव्यवहार रखनेकी जिम्मेदारी थी। जब परिस्थिति क्षण-क्षणमे नया रग बदला करती हो उस वक्त डाकसे होनेवाले पत्रव्यवहारकी जरूरत ही क्यो होती? तार पत्रके जैसे लबे भेजने पडते थे।

अब फिनिक्स न्यूकैसेलकी तरह वायव्यकोणके हडता-लियोका केन्द्र हो गया। सैकडो वहा आकर सलाह और आश्रय लेने लगे। इस दशामे सरकारकी निगाह फिनिक्सकी ओर गये बिना कैसे रहती? आसपास रहनेवाले गोरोकी त्यौरी भी चढने लगी। फिनिक्समे रहना कुछ अशोमे खतर-नाक हो गया। फिर भी छोटे-छोटे लडके-लडकिया भी जोखिमभरे काम कर रहे थे। इतनेमे वेस्ट पकडे गये। सच

पूछिये तो वेस्टको गिरफ्तार करनेका कोई कारण नही था। हमने यह तै कर रखा था कि वेस्ट और मगनलाल गाधी अपने आपको गिरफ्तार करानेका एक भी प्रयत्न न करे। इतना ही नही, जहातक हो सके गिरफ्तारीके मौकोसे दूर भी रहे। इसलिए वेस्टने गिरफ्तार करनेके लिए सरकारको कोई कारण दिया ही नही था, पर सरकार कुछ सत्याग्रहियोका सुभीता थोडे ही देखनेवाली थी या उसे गिरफ्तार करनेका मौका थोडे ही ढूढना था। अधिकारवालेको कोई काम करनेकी इच्छा होना ही उसका अवसर है। अत वेस्टकी गिरफ्तारीका तार ज्योही गोखलेके पास पहुचा, उन्होने हिदुस्तानके कुछ योग्य आदमियोको दक्षिण अफ्रीका भेजनेका यत्न आरभ कर दिया। लाहौरमे जब दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहियोकी सहायताके लिए सभा हुई थी तो सी० एफ० एड्रूजने, जितना पैसा उनके पास था, सब दे दिया था। तभीसे गोखलेकी नजर उनपर पड रही थी। अत वेस्टकीगिरफ्तारीकी खबर मिलते ही उन्होने एड्रूजसे तारसे पूछा कि आप तुरत दक्षिण अफ्रीका जानेको तैयार है? एड्रूजने जवाबमे तुरत 'हा' कह दिया। इसी क्षण उनके परम प्रिय मित्र पियर्सन भी तैयार हो गये और वे दोनो पहले स्टीमरसे दक्षिण अफ्रीका जानेको रवाना हो गये।

पर अब तो युद्ध समाप्तिके पास पहुच गया था। हजारो निरपराध लोगोको जेलमे बद रखनेकी शक्ति दक्षिण अफ्रीकाके सरकारके पास नही थी। वाइसराय भी इसे सहन नही कर सकते थे। सारी दुनिया यह देख रही थी कि जनरल स्मट्स क्या करते है। ऐसे मौकेपर राज्य आमतौरसे जो किया करते है, दक्षिण अफ्रीकाकी सरकारने भी वही किया। जाच-पडताल तो कुछ करनी नही थी। जो अन्याय हुआ था वह जाहिर था। उसे दूर करनेकी आवश्यकता हर आदमी देख रहा था। जनरल

स्मट्स भी देख सकते थे कि अन्याय हुआ है और वह दूर होना चाहिए, पर उनकी दशा साप-छछूदरकी-सी हो रही थी। उन्हे न्याय करना था, पर न्याय करनेकी शक्ति वह खो बैठे थे, क्योकि दक्षिण अफ्रीकाके गोरोको उन्होने यह इतमीनान दिला दिया था कि वह खुद तीन पौडका कर रद नही करेगे और न दूसरे सुधार ही। पर अबतो उक्त करको उठाकर और दूसरे सुधार करके ही छुटकारा था। ऐसी विकट स्थितिसे निकलनेके लिए लोकमतसे डरकर चलनेवाले राज्य सदा कमीशन नियुक्त किया करते है। उसके जरिये महज नामकी जाच कराई जाती है, क्योकि वह क्या सलाह देगा यह पहलेसे जाना-समझा हुआ होता है। यह आम रवाज है कि कमीशन जो सिफारिश करे उसपर अमल होना ही चाहिए। इसलिए कमीशनकी सिफारिशकी आड लेकर राज्य पीछे वही न्याय किया करते है जिसे करनेसे पहले इन्कार कर चुके होते है। जनरल स्मट्सने कमीशनमे तीन सदस्य नियुक्त किये। भारतीय जनताने कमीशनके बारेमे कुछ शर्ते पेश की और जबतक वे पूरी न कर दी जाए तबतक कमीशनका बहिष्कार करनेकी प्रतिज्ञा की। इन शर्तोमेसे एक यह थी कि सब सत्याग्रही कैदी छोड दिये जाए और दूसरी यह कि कमीशनमे कम-से-कम एक सदस्य तो हिदुस्तानी कौमकी ओरसे होना ही चाहिए। पहली शर्त तो अशत कमीशनने ही मजूर कर ली थी। उसने सरकारसे सिफारिश की थी कि कमीशनके कामको आसान बनानेके लिए मि० केलनबेक, मि० पोलक और गाधी बिना किसी शर्तके छोड दिये जाय। सरकारने इस सिफारिशको मजूर किया और हम तीनोको एक साथ (१८ दिसबर १९१३) छोड दिया। हम मुश्किलसे दो महीने जेलमे रहे होगे। दूसरी ओर मि० वेस्टको सरकारने गिरफ्तार तो कर लिया, पर उनपर मुकदमा

गाधीजी और कस्तूरबा

(द० अफ्रीकासे विलायत जाते समय १४-७-१४)

बचानेके लिए कोई सबूत नहीं था। इसलिए उन्हें भी छोड़ना पड़ा।

ये घटनाएं एंड्रूज और पियर्सनके पहुंचनेके पहले ही हो चुकी थीं। इसलिए इन दोनों मित्रोंको मैंने ही डर्बन जाकर जहाजसे उतारा। उन दोनोंको इन घटनाओंकी कुछ भी खबर नहीं थी। इसलिए सुनकर उन्हें सुखद आश्चर्य हुआ। इन दोनों मित्रोंके साथ मेरी यह पहली ही मुलाकात थी।

छोड़े जानेसे हम तीनोंको मायूसी ही हुई। बाहरकी हमें कुछ भी खबर नहीं थी। कमीशनकी खबरसे हमें अचरज हुआ। पर हमने देखा कि हम कमीशनकी कोई सहायता करनेमें असमर्थ हैं। इतना जरूर समझा कि उसमें हिंदुस्तानियोंकी ओरसे कोई एक आदमी तो होना ही चाहिए। इसपर हम तीनों डर्बन पहुंचे और वहांसे जनरल स्मट्सको इस आशयका पत्र लिखा :

"हम कमीशनका स्वागत करते हैं। पर उसके दो सदस्यों—मि० एसेलेन और मि० वाइलीकी नियुक्ति जिस रीतिसे हुई है उसपर हमें सख्त एतराज है। उनके व्यक्तित्वसे हमारा कुछ भी विरोध नहीं। वे प्रसिद्ध और सुयोग्य नागरिक हैं। पर दोनों अनेक बार भारतीयोंको नापसंद करनेका भाव प्रगट कर चुके हैं। इसलिए उनसे बिना जाने अन्याय हो जाना संभव है। मनुष्य अपना स्वभाव यकायक बदल नहीं सकता। ये दोनों सज्जन अपना स्वभाव बदल लेंगे यह मानना प्रकृतिके नियमके विरुद्ध है। फिर भी हमारी माग यह नहीं है कि वे कमीशनसे अलग कर दिये जाए। हमारा सुझाव इतना ही है कि एक-दो तटस्थ पुरुष उसमें बढा दिये जाए और इसके लिए हम सर जेम्स रोज इनिस और ऑनरेबल डब्ल्यू०पी० श्राइनरके नाम पेश करते हैं। दोनों नामी व्यक्ति अपनी न्यायवृत्तिके लिए सुविख्यात हैं। हमारी

दूसरी प्रार्थना यह है कि सभी सत्याग्रही कैदी छोड दिये जाएं। यह न होनेसे हमारा अपना जेलके वाहर रहना कठिन हो जायगा। अव उन्हे जेलमे वद रखनेका कोई कारण नही है। तीसरे, अगर हमे कमीशनके सामने गवाही देनी है तो हमे खानोमे और जहा-जहा गिरमिटिए काम करते है वहा-वहा जानेकी आजादी होनी चाहिए। हमारी ये प्रार्थनाए स्वीकार न की गई तो हमे खेदके साथ फिर जेल जानेके उपाय ढूढने होगे।"

जनरल महोदयने कमीशनमे और किसीको लेनेसे इन्कार किया और कहा कि कमीशन किसी पक्षके लिए नही नियुक्त हुआ है। वह केवल सरकारके सतोपके लिए वनाया गया है। यह जवाव मिलनेपर हमारे पास एक ही इलाज रह गया और हमने जेलकी तैयारी करके यह विज्ञप्ति निकाली कि १९१४ की पहली जनवरीको जेल जानेवालोकी डर्वनसे कूच शुरू होगी। १८ दिसवर (१९१३)को हम छोडे गये थे, २१ को हमने उपर्युक्त पत्र लिखा और २४ को जनरल स्मट्सका जवाव मिला।

पर इस उत्तरमे एक वात ऐसी थी जिससे मैने जनरल स्मट्सको फिर पत्र लिखा। उनके जवावमे इस आशयका वाक्य था—"कमीशन निष्पक्ष और अदालती वनाया गया है, और उसकी नियुक्ति करते समय अगर भारतीयोसे मशविरा नही किया गया तो खानवालो और शक्करवालोसे भी नही किया गया।" इस वाक्यको देखकर मैने जनरल महोदयको निजी पत्रमे लिखा कि अगर सरकार न्याय ही करना चाहती हो तो मुझे आपसे मिलना है और कुछ तथ्य आपके सामने रखने है।" इसके जवाबमे जनरल स्मट्सने मुलाकातका अनुरोध स्वीकार किया। इससे कूच कुछ दिनके लिए तो मुलतवी हो ही गई।

उधर गोखलेने जब सुना कि हम नई कूच करनेवाले है तब उन्होने लबा तार भेजा। उसमे लिखा कि ऐसा करनेसे लार्ड हार्डिजकी और मेरी स्थिति भी कठिन हो जायगी और दूसरी कूच मुलतवी रखने और कमीशनके सामने इजहार देनेकी जोरदार सलाह दी।

हमारे ऊपर धर्मसकट आ पडा। कमीशनके सदस्योमे और आदमी नही लिए गये तो भारतीय जनता उसका बहिष्कार करनेकी प्रतिज्ञा कर चुकी थी। लार्ड हार्डिज नाराज हो, गोखले दुखी हो तो भी प्रतिज्ञा कैसे तोडी जाय ? मि० एड्रूजने गोखलेकी भावना, उनके नाजुक स्वास्थ्य और हमारे निश्चयसे उनके दिलको लगनेवाले धक्केपर विचार करनेकी सलाह दी। मै तो जानता ही था। नेताओने इकट्ठे होकर स्थितिपर विचार किया और अतमे निश्चय किया कि चाहे जो जोखिम उठानी पडे, पर बहिष्कार तो कायम रहना ही चाहिए। इसलिए हमने गोखलेको लगभग सौ पौड खर्च करके लबा तार भेजा। उससे श्रीएड्रूज भी सहमत हुए। उसका आशय यह था .

"आपका दुख समझता हू। मै सदा ही चाहूगा कि बडी-से-बडी वस्तुका त्याग करके भी आपकी सलाहका अनुसरण करु। लार्ड हार्डिजने हमारी जो सहायता की है वह अमूल्य है। मै यह भी चाहता हू कि यह मदद हमे अततक मिलती रहे। पर मै चाहता हू कि आप हमारी स्थितिको समझे। इसमे हजारो आदमियोकी प्रतिज्ञाका प्रश्न आता है। प्रतिज्ञा शुद्ध है। हमारी सारी लडाईकी इमारत प्रतिज्ञाओकी नीवपर खडी की गई है। प्रतिज्ञाओका बधन नही होता तो हममेसे बहुतेरे आज गिर गये होते। हजारोकी प्रतिज्ञापर एक बार पानी फिर जाय तो नैतिकबधन-जैसी कोई चीज रहेगी ही नही। प्रतिज्ञा करते समय लोगोने पूरी तरह

विचार कर लिया था। उसमे कोई अनीति तो है ही नही। बहिष्कारकी प्रतिज्ञा करनेका कौमको अधिकार है। मै चाहता हू कि आप भी हमे यह सलाह दे कि ऐसी प्रतिज्ञा किसीकी खातिर भी नही तोडी जानी चाहिए और हर हानि-जोखिम उठाकर भी उसका पालन होना चाहिए। यह तार आप लार्ड हार्डिजको दिखाइयेगा। मै चाहता हू कि आपकी स्थिति कठिन न हो जाय। हमने अपनी लडाई ईश्वरको साक्षी और उसकी सहायताका भरोसा रखकर शुरू की। बडोकी और बडे आदमियोकी सहायता हम चाहते और मागते है। वह मिल जाय तो प्रसन्न होते है। पर मेरी नम्र राय है कि वह मिले या न मिले, प्रतिज्ञाका वधन कदापि न टूटना चाहिए। उसके पालनमे आपका समर्थन और आशीर्वाद चाहता हू।"

यह तार गोखलेको मिला। इसका असर उनके स्वास्थ्य-पर तो हुआ; पर उनकी सहायतापर नही हुआ या हुआ तो यही कि उसका जोर और बढ गया। लार्ड हार्डिजको उन्होने तार भेजा; पर हमारा त्याग नही किया। उलटे हमारी दृष्टिका वचाव किया। लार्ड हार्डिज भी दृढ रहे।

मै एड्रूजको साथ लेकर प्रिटोरिया गया। इसी वक्त यूनियन रेलवेमे गोरे कर्मचारियोकी जवर्दस्त हडताल हुई। इस हडतालसे सरकारकी स्थिति नाजुक हो गई। मुझसे कहलाया गया कि हिदुस्तानियोकी कूच बोल दो। मैने जाहिर किया कि मुझसे हडतालियोकी इस रीतिसे मदद नही होने की। हमारा उद्देश्य सरकारको हैरान करना नही है। हमारी लडाई जुदी और दूसरे तरीकेकी है। हमे कूच करना ही होगा तो भी हम जब रेलवेकी गडबड शांत हो जायगी तब करेगे। इस निश्चयका गहरा असर हुआ। रायटरने उसका तार विलायत भेजा। लार्ड अम्पटहिलने वहासे

धन्यवादका तार भेजा। दक्षिण अफ्रीकाके अग्रेज मित्रोने भी धन्यवाद दिया। जनरल स्मट्सके एक मत्रीने मजाकमे कहा—"मुझे तो आपके लोग तनिक भी नही भाते। मै उनकी जरा भी मदद करना नही चाहता। पर उनका हम करे क्या? आप लोग हमारे सकटकालमे हमारी सहायता करते है। हम आपको कैसे मारे? मै तो बहुत बार चाहता हू कि आप लोग भी अग्रेज हडतालियोकी तरह दगा-फसाद करे। तब हम तुरत सीधा कर दे। आप तो दुश्मनको भी दुःख देना नही चाहते। आप तो स्वय दुःख सहकर विजय प्राप्त करना चाहते है। भलमनसी और शिष्टताकी मर्यादाका कभी उल्लघन नही करते। यहा हम लाचार हो जाते है।"

इसी तरहके भाव जनरल स्मट्सने भी प्रकट किये।

पाठकोको मालूम होना चाहिए कि सत्याग्रहीके सौजन्य और विनयका यह पहला उदाहरण नही था। जब वायव्य कोणके हिंदुस्तानी मजदूरोने हडताल की तो बहुत-सी ईख जो काटी जा चुकी थी, ठिकाने—कारखानेमे—नही पहुच जाती तो मालिकोको भारी नुकसान उठाना पडता। इसलिए १२०० भारतीय मजदूर उस कामको पूरा करनेके लिए कामपर वापस गये और उसके पूरा हो जानेपर ही अपने साथियोके साथ शामिल हुए। फिर जब डर्बन म्युनिसिपैलिटीके गिरमिटियोने हडताल की तो उसमे भी जो लोग भगीका और अस्पतालका काम करते थे वे वापस भेजे गये और वे खुशीसे अपने कामोपर लौट गये। भगी और अस्पतालके काम करनेवाले अपना काम छोड दे तो शहरमे बीमारी फैलती और रोगियोकी सेवा-शुश्रूषा न हो पाती। सत्याग्रही ऐसे परिणामकी इच्छा नही कर सकता। इसलिए ऐसे कर्मचारी हडतालसे अलग रखे गये। सत्याग्रही जो भी कदम उठाये उसमे उसे विरोधीकी हिम्मतका विचार कर ही लेना चाहिए।

ऐसी भलमनसीके अनेक दृष्टातोका अदृश्य प्रभाव चारो ओर पडता हुआ मै देख सकता था और उससे भारतीयोकी प्रतिष्ठा बढती और समझौतेके लिए हवा अनुकूल होती जा रही थी।

: २४ :

प्राथमिक समझौता

इस प्रकार समझौतेके लिए वातावरण अनुकूल होता जा रहा था। मै और मि० एड्रूज जब प्रिटोरिया पहुचे उसी वक्त सर बेजामिन राबर्टसन, जिन्हे लार्ड हार्डिजने स्पेशल स्टीमर-मे भेजा था, पहुचनेवाले थे। पर हमे तो जनरल स्मट्सने जो दिन नियत किया था उसी दिन पहुंचना था। इससे सर बेजामिनकी राह देखे बिना ही हम रवाना हो गये थे। राह देखनेका कारण भी नही था। लडाईका अतिम परिणाम तो हमारी शक्तिके अनुसार ही होनेवाला था।

हम दोनो प्रिटोरिया पहुचे, पर जनरल स्मट्ससे मुझे अकेले ही मिलना था। वह रेलवेके गोरे कर्मचारियोकी हडतालमे उलझ रहे थे। यह हडताल ऐसी भयानक थी कि यूनियन सरकारने फौजी कानून जारी किया था। इन कर्मचारियोंका उद्देश्य मजदूरी बढवाना मात्र नही था; बल्कि राज्यकी लगाम अपने हाथमे कर लेना था। मेरी पहली मुलाकात बहुत ही छोटी हुई। पर मैने देखा कि जनरल स्मट्सकी जो स्थिति पहले यानी कूच शुरू कर देनेके समय थी वह आज नही थी। पाठकोको याद होगा कि उस वक्त उन्होने मुझसे बात करनेसे भी इन्कार कर दिया था। सत्या-ग्रहकी धमकी तो जैसे उस वक्त थी वैसे ही आज थी। फिर

भी उस वक्त उन्होंने समझौतेकी बातचीत करनेसे इन्कार कर दिया था। इस वक्त वह मुझसे मशविरा करनेको तैयार थे।

भारतीय जनताकी माग तो यह थी कि कमीशनमे हिंदुस्तानियोका कोई प्रतिनिधि होना चाहिए। पर इस बातपर जनरल स्मट्स अटल थे। उन्होने कहा—"यह वृद्धि किसी तरह नही हो सकती। उसमे सरकारकी प्रतिष्ठा घटेगी और मै जो सुधार करना चाहता हू उन्हे नही कर सकूगा। आपको मालूम होना चाहिए कि मि० एसेलेन हमारे आदमी है। सुधार करनेके बारेमे वह सरकारके खिलाफ नही जायेगे, बल्कि उसके अनुकूल ही रहेगे। कर्नल वाइली नेटालके प्रतिष्ठित पुरुष है और आप लोगोके विरोधी भी माने जा सकते है। अत वह भी तीन पौंडका कर उठा देनेमे सहमत हो जाय तो हमारा काम आसान हो जायगा। हमारे अपने झगडे-झझट इतने है कि हमे क्षणभरकी फुरसत नही है। अत हम चाहते है कि आपका सवाल ठिकाने लग जाय। आप जो मागते है उसे देनेका हमने निश्चय कर लिया है, पर कमीशनकी सम्मतिके बिना वह दिया नही जा सकता। आपकी स्थिति भी मै समझ सकता हू। आपने कसम खा ली है कि जबतक हम आपकी ओरसे किसीको कमीशनमे नही ले ले तबतक आप उसके सामने शहादत न देगे। आप शहादत भले ही पेश न करे, पर जो लोग देने आये उन्हे रोकनेका आदोलन न करे और सत्याग्रहको मुलतवी रखे। मै मानता हू कि इससे आपका लाभ ही होगा और मुझे शाति मिलेगी। आप लोग हडतालियोपर जुल्म होनेकी बात कहते है। इस बातको आप साबित नही कर सकेगे, क्योकि आप शहादत नही दे रहे है। इस बारेमे आपको खुद सोच-विचार लेना है।"

इस प्रकारके भाव जनरल स्मट्सने प्रकट किये। मुझे तो ये सारे भाव कुल मिलाकर अनुकूल मालूम हुए। सिपाहियों

और जेलके दारोगाओके दुर्व्यवहारके बारेमे हमने बहुत शिकायते की थी, पर कमीशनका बहिष्कार करनेके कारण उन्हे साबित करनेका सुयोग हमारे पास नही था। यह धर्मसकट था। हममे इस विषयमे मतभेद था। एक पक्षका विचार था कि भारतीयोने सिपाहियोपर जो इलजाम लगाया है वे साबित किये ही जाने चाहिए। इसलिए उसकी सलाह थी कि अगर हम कमीशनके सामने शहादत न दे सके तो कौम जिन्हे अपराधी मानती है उनके खिलाफ अपनी शिकायते इस रूपमे प्रकाशित कर दे कि अभियुक्तकी मरजी हो तो मानहानि-की नालिश दायर कर सके। मै इस पक्षका विरोधी था। कमीशनके सरकारके विरुद्ध निर्णय करनेकी सभावना बहुत कम थी। मानहानिका दावा दायर करने लायक तथ्य प्रकाशित करनेमे कौमको भारी झमेलेमे पडना पडता और इसका नतीजा इतना ही होता कि हमे अपनी शिकायते साबित कर देनेका सतोष मिल जाता। वकीलकी हैसियतसे मै जानता था कि मानहानिवाली बातोको साबित करनेमे कैसी कठिनाइयां होती है, पर मेरी सबसे वजनदार दलील तो यह थी कि सत्याग्रहीको कष्ट सहन करना था। सत्याग्रह आरभ करनेके पहले सत्याग्रही जानते थे कि हमे मरणान्त कष्ट सहना होगा और उसे सहनेको वे तैयार भी थे। ऐसी दशामे यह साबित करनेमे कोई विशेषता नही थी कि हमे कष्ट सहने पडे। बदला लेनेकी वृत्ति तो सत्याग्रहीमे होनी ही नही चाहिए। इसलिए जहा अपने कष्ट साबित करनेमे असाधारण कठि-नाइया सामने आ जायें वहा शात रहे, यही सही रास्ता माना जायगा। सत्याग्रहीको तो मूलवस्तुके लिए ही लडना होता है। मूलवस्तु तो थी उक्त कानून। जब उनके रद कर दिए जाने या उनमे यथोचित सुधार हो जानेकी पूरी सभवना हो तो वह दूसरे झझटोमे क्यो पडेगा? दूसरे सत्याग्रहीका मौन

अन्यायकारी कानूनोके विरुद्ध उसकी लडाईमे समझौता होते समय तो सहायक ही होगा। इस तरहकी दलीलोसे विरोधी पक्षके बडे भागको मै समझा सका और अतमें हमने कष्टो-की शिकायते बाकायदा साबित करनेका विचार त्याग दिया।

: २५ :

पत्र-व्यवहार

प्राथमिक समझौतेके लिए जनरल स्मट्सके और मेरे बीच पत्रव्यवहार हुआ। मेरे पत्रका आशय यह था :

"अपनी प्रतिज्ञाके कारण हम आपके सूचनानुसार कमीशनके काममे मदद नही कर सकते। इस प्रतिज्ञाको आप समझ सकते है और उसकी कद्र भी करते है, पर आपने हिंदुस्तानी कौमके साथ मशविरा करनेका सिद्धान्त स्वीकार कर लिया है। इसलिए मै अपने देशवासियोको यह सलाह दे सकता हू कि कमीशनके सामने शहादते पेश करना छोडकर दूसरी तरहसे उसकी सहायता करे और कम-से-कम उसके काममे रुकावट तो नही ही डाले। इसके सिवा जबतक कमीशनका काम चलता रहे और नया कानून नही बने तबतक सरकारकी स्थिति कठिन न हो जाय इस खयालसे सत्याग्रह मुलतवी रखनेकी सलाह भी मै उन्हे दे सकता हू। सर बेंजामिन राबर्टसनकी, जिन्हे वाइसरायने यहा भेजा है, सहायता करनेकी सलाह भी मै अपने देशवासियोको दूगा। जेलमे और हडतालके दौरानमे हमारे ऊपर जो जुल्म-ज्याद-तिया हुई उनके बारेमे मुझे कहना होगा कि अपनी प्रतिज्ञाके कारण हम इन शिकायतोको साबित भी नही कर सकते। सत्याग्रहीकी हैसियतसे हमसे जहातक हो सकता है, अपने

कष्टोकी शिकायत नही करते और न उनका मुआवजा मागते है। पर इस समयके हमारे मौनका अर्थ यह न किया जाय कि हमारे पास सावित करनेका कोई मसाला तो है ही नही। मै चाहता हू कि आप मेरी स्थिति समझ सके। इसके अतिरिक्त चूकि हम सत्याग्रह मुलतवी रख रहे है इसलिए लडाईके सिलसिलेमे जो लोग इस वक्त जेलमे है उन्हे रिहाई मिलनी ही चाहिए।

हमारी माग क्या है, यह भी यहा जता देना आवश्यक जान पडता है

१ तीन पौडका कर उठा दिया जाय।

२ विवाह हिंदू-धर्म, इस्लाम इत्यादिकी रीतिसे हुआ हो तो जायज माना जाय।

३ पढे-लिखे भारतीय इस देशमे दाखिल हो सके।

४ ऑरेजिया (आरेज फ्री स्टेट)के वारेमे जो कौल-करार हुआ है उसमे सुधार किया जाय।

५. यह आश्वासन दिया जाय कि मौजूदा कानूनोका व्यवहार इस तरह किया जायगा कि जो हक आज भोगे जा रहे है उनको नुकसान न पहुचे।

इन बातोके विषयमे आपसे संतोपजनक उत्तर मिले तो मै कौमको सत्याग्रह मुलतवी रखनेकी सलाह दू।"

यह पत्र मैने १९१४की २१वी जनवरीको लिखा। उसी दिन उसका जो जवाब मिला उसका आशय यह था

"आप कमीशनके सामने इजहार नही दे सकते इसका सरकारको खेद है, पर वह आपकी स्थिति समझ सकती है। आप जो कष्टोकी वात न उठानेका विचार प्रकट कर रहे है उसको भी सरकार समझती है। इन कष्टोसे सरकार तो इन्कार ही करती है, पर जव आप उसका सबूत नही पेश कर रहे है तो सरकारको इस विषयमे कुछ करना नही रह जाता। सत्याग्रही कैदियोकी रिहाईके बारेमे तो सरकार आपका पत्र मिलनेसे

पहले ही हुक्म दे चुकी है । हिंदुस्तानी कौमके कष्ट जो आपने गिनाये है उनके बारेमे सरकार कमीशनकी रिपोर्ट मिलनेतक कोई कदम नही उठायेगी ।"

यह पत्रव्यवहार होनेसे पहले हम दोनो—मै और मि० एड्रूज—अनेक बार जनरल स्मट्ससे मिल चुके थे, पर इस बीच सर बेंजामिन राबर्टसन भी प्रिटोरिया पहुच गये थे । सर बेंजामिन यद्यपि लोकप्रिय अधिकारी माने जाते थे, गोखलेकी सिफारिशी चिट्ठी भी अपने साथ लाये थे, फिर भी मैने देखा कि आम अग्रेज अफसरोकी कमजोरियोसे वह सर्वथा मुक्त नही थे । पहुचनेके साथ ही उन्होने कौममे फूट डालना और सत्याग्रहियो-को डरवाना शुरू कर दिया । प्रिटोरियामे हुई मेरी पहली मुलाकातमे उनकी अच्छी छाप नही पडी । डरानेके बारेमे मुझे जो तार मिले थे उनका जिक्र भी मैने उनसे कर दिया । मुझे तो सबके साथ एक ही रीतिसे यानी सफाई और सचाईका व्यवहार करना था । अत हम मित्र हो गये, पर मैने अनेक बार देखा है कि डरनेवालेको तो अधिकारी डराते है और सीधे तथा न डरनेवालेके साथ वह सीधे रहते है ।

इस प्रकार प्राथमिक-अस्थायी समझौता हुआ और सत्या-ग्रह आखिरी बार सदाके लिए मुलतवी किया गया । बहुतेरे अग्रेज मित्रोको प्रसन्नता हुई और उन्होने अतिम समझौतेमे मदद करनेका मुझे भरोसा भी दिलाया । कौमसे इस समझौते-को मजूर करा लेना जरा टेढी खीर थी । जगा हुआ जोश ठडा पड जाय, यह किसीको भी रुचनेवाली बात नही थी । फिर जन-रल स्मट्सका विश्वास कोई क्यो करने लगा ? कुछ भाइयोने १९०८के समझौतेकी याद दिलाई और कहा—"एक बार जनरल स्मट्सने कौमको धोखा दिया, अनेक बार आपपर अपनी मागोमे नई बाते शामिल कर लेनेका दोष लगाया, कौमपर भारी मुसीबते गुजारी, फिर भी आपने नही समझा,

यह कैसे दु खकी बात है ? यह आदमी फिर धोखा देगा और आप फिर सत्याग्रह करनेकी बात कहेगे । उस वक्त कौन आपका विश्वास करेगा ? लोग बार-बार जेल जाये और बार-बार धोखा खाये, यह कैसे हो सकता है ? जनरल स्मट्स-जैसे आदमीके साथ तो एक ही समझौता हो सकता है जो मागना वह ले लेना। उनसे वचन नही लेने चाहिए। जो वादा करके मुकर जाय उसे उधार कोई कैसे दे सकता है ?"

मै जानता ही था कि इस तरहकी दलीले कितनी ही जगह पेश की जायेगी इससे मुझे अचरज नही हुआ। सत्याग्रही कितनी ही बार धोखा क्यो न खाये जबतक वचनपर विश्वास न करनेका स्पष्ट कारण नही हो तबतक विपक्षीके वचनका विश्वास करेगा ही। जिसने दु खको सुख मान लिया हो वह जहा अविश्वास करनेका कारण न हो वहा केवल दु खके नामसे डरकर अविश्वास नही करेगा, बल्कि अपनी शक्तिपर भरोसा रखकर विपक्षके विश्वासघातकी ओरसे निश्चित रहकर कितनी ही बार विश्वासघात क्यो न किया जाय फिर भी विश्वास करता ही जायगा और यह मानेगा कि ऐसा करनेसे सत्यका बल बढेगा और विजय निकट आयेगी। अत जगह-जगह सभाए करके मै अतमे लोगोको समझौता स्वीकार करानेके लिए समझा सका और वे भी सत्याग्रहका रहस्य अब अधिक समझने लगे। इस वक्तके समझौतेमे मि० ऐंड्रूज मध्यस्थ और साक्षी थे। वैसे ही वाइसरायके राजदूतके रूपमे सर बेंजामिन राबर्टसन भी थे। इसलिए इस समझौतेके मिथ्या होनेका डर कम-से-कम था। मैंने हठकरके समझौता करनेसे इन्कार कर दिया होता तो यह उलटा कौमका दोष समझा जाता और जो विजय छ महीने बाद हमे मिली उसकी प्राप्तिमे अनेक प्रकारके विघ्न आते। सत्याग्रही किसी भी कालमे इसका कारण नही प्रस्तुत करता कि कोई उसकी ओर उगलीतक

उठा सके। 'क्षमा वीरस्य भूषणम्' वाक्य ऐसे ही अनुभवके आधारपर लिखा गया है। सत्याग्रहमे निर्भयता रहनी ही चाहिए। फिर निर्भयको भय क्या ? और जहा विरोधीका विरोध जीतना है, उसका नाश नही करना है, वहा अविश्वास कैसा ?

इस तरह कौमके समझौता स्वीकार कर लेनेके बाद हमे महज यूनियन पार्लमेटके बैठनेकी राहभर देखनी बाकी रही। इस बीच पूर्वोक्त कमीशनका काम जारी था। हिंदुस्तानियोकी ओरसे बहुत ही कम गवाह उसके सामने गये। उस वक्त कौमपर सत्याग्रहियोका कितना ज्यादा असर था इसका अकाट्य प्रमाण इससे मिल गया। सर बेंजामिन राबर्टसनने भी हिंदुस्तानियोको गवाही देनेके लिए समझाया, पर लडाईके कट्टर विरोधी थोडेसे भारतीयोके सिवा और सब लोग अविचल रहे। इस बहिष्कारका असर तनिक भी बुरा नही हुआ। कमीशनका काम मुख्तसर हो गया और रिपोर्ट झटपट प्रकाशित हो गई। रिपोर्टमे कमीशनके सदस्योने भारतीय जनताके कमीशनके काममे सहायता न करनेकी अवश्य कडी आलोचना की थी। सैनिकोके दुर्व्यवहारके आरोपको उडा दिया, पर कौमको जो-जो चीज चाहिए थी उस सबको देनेकी सिफारिश कमीशनने की। यानी उसने तीन पौडका कर उठा देने, ब्याहके विषयमे हिंदुस्तानियोकी माग मजूर करने और दूसरी अनेक छोटी-मोटी रियायते देने और सारा काम बिना ढिलाई किये करनेकी सिफारिश की। इस तरह कमीशनकी रिपोर्ट जैसा कि जनरल स्मट्सने कहा भारतीयोके अनुकूल निकली। मि० एड्रूजने विलायत जानेके लिए बिदा ली। सर बेंजामिन राबर्टसन भी रवाना हो गये। हमे यह आश्वासन दिया गया था कि कमीशनकी रिपोर्टके अनुसार कानून बनाया जायगा। यह कानून क्या था, इसपर अगले प्रकरणमें विचार करूगा।

: २६ :

युद्धका अंत

कमीशनकी रिपोर्ट निकलनेके थोडे ही दिन बाद जिस कानूनके जरिये समझौता होनेवाला था उसका मसविदा यूनियन गजटमे प्रकाशित हुआ। इस मसविदेके प्रकाशित होते ही मुझे केप टाउन जाना पडा। यूनियनकी विधान-सभा (यूनियन पार्लमेट) की बैठके वही हो रही थी, अब भी वही होती है। इस बिलमे ९ धाराए है और पूरा बिल 'नवजीवन'के दो कालमोमे आजायगा। उसका एक भाग भारतीयोके बीच हुए ब्याहके विषयमे है, जिसका आशय यह है कि जो ब्याह हिंदुस्तानमे वैध माना जाता है वह दक्षिण अफ्रीकामे भी जायज समझा जायगा; पर एक ही वक्तमे किसीके एकसे अधिक पत्निया हो तो उनमेसे एक ही दक्षिण अफ्रीकामे कानूनन जायज पत्नी मानी जायगी। दूसरे भागके द्वारा उस तीन पौडके करको रद करना है जो हरएक गिरमिटिएको, अगर वह स्वतत्र भारतीयके रूपमे दक्षिण अफ्रीकामे रहना चाहता हो तो हर साल देना पडता था। तीसरे भागमे जिन लोगोको दक्षिण अफ्रीकामे रहनेके प्रमाणपत्र मिले हुए थे उन प्रमाण-पत्रोका महत्व बताया गया है। यानी यह बताया गया है कि जिसके पास यह प्रमाणपत्र हो उसका दक्षिण अफ्रीकामे रहनेका हक किस दरजेतक साबित होता है। इस बिलपर यूनियन पार्लमेटमे खासी और मीठी बहस हुई।

दूसरी बातोका, जिनके लिए कानूनकी जरूरत नही थी, स्पष्टीकरण जनरल स्मट्सके और मेरे बीच हुए पत्रव्यवहारमे किया गया। उसमे इन विषयोका खुलासा किया गया था। पढे-लिखे भारतीयोके केप कालोनीमे प्रवेशके अधिकारकी रक्षा,

जिन्हे दक्षिण अफ्रीकामे दाखिल होनेकी खास परवानगी प्राप्त थी उनका अधिकार, जो हिंदुस्तानी १९१४के पहले दक्षिण अफ्रीकामे दाखिल हो चुके हो उनकी हैसियते और जिन्होने एकाधिक स्त्रियोसे व्याह कर लिया हो उन्हे कृपारूपमे अपनी दूसरी पत्नीको भी लाने देना। जनरल स्मट्सके पत्रमे इस आशयका वाक्य भी है

"प्रचलित कानूनोके बारेमे यूनियन सरकारकी सदा यह इच्छा रही है और आज भी है कि उनपर न्यायपूर्वक और जो अधिकार आज भोगे जा रहे है उनकी रक्षा करते हुए ही अमल किया जाय।" यह पत्र ३० जून १९१४ को लिखा गया था। उसके जवाबमे उसी दिन मैने जनरल स्मट्सको जो पत्र लिखा उसका आशय यह है

"आपका आजकी तारीखका पत्र मुझे मिला। आपने धीरज और सौजन्यके साथ मेरी बाते सुन ली इसके लिए अह-सानमद हू।

"हिंदुस्तानियोको राहत देनेवाले कानून (इडियन रिलीफ बिल्स) के पास हो जाने और हमारे बीच हुए पत्रव्यवहारसे सत्याग्रह-सग्रामकी समाप्ति हो रही है। यह लडाई १९०९ ई० के सितबर महीनेमे शुरू हुई। हिंदुस्तानी कौमको इसमे बहुत कष्ट और पैसेका नुकसान उठाना पडा। सरकारको भी चिता-ग्रस्त रहना पडा।

"आप जानते है कि मेरे कुछ भाइयोकी माग बहुत ज्यादा थी। अलग-अलग प्रातोमे व्यापारके परवानेके कानूनोमे जैसे ट्रासवालका 'गोल्ड लॉ', ट्रासवाल टाउन शिक्षा ऐक्ट और १८८५का ट्रासवालका न० ३ कानून, इनमे कुछ भी अदल-बदल नही हुआ, जिससे भारतीयोको निवास, व्यापार और जमीन-की मालिकीका पूरा-पूरा हक मिले। इससे उनको असतोष हुआ है। कुछ लोगोको तो इस कारण असतोष है कि एकसे

दूसरे सूबेमे जानेकी पूरी आजादी नही दी गई। कुछ लोगोंको इस बातसे असतोष है कि हिंदुस्तानियोको राहत देनेवाले कानून-मे विवाहके प्रश्नके विषयमे जितना किया गया है उससे अधिक होना चाहिए था। उनकी मुझसे यह माग है कि ये सभी बाते सत्याग्रहकी लडाईमे शामिल कर ली जायं। पर मैंने उनकी माग मंजूर नही की। अत यद्यपि ये बातें सत्याग्रहके विपयके रूपमे शामिल नही की गईं तो भी इस बातसे तो हर्गिज इन्कार नही किया जा सकता कि किसी दिन सरकारको इन प्रश्नोपर और विचार करके राहत देना मुनासिब होगा। जबतक यहां बसनेवाली हिंदुस्तानी कौमको नागरिकके पूरे-पूरे हक नही दे दिये जाय तबतक पूरे सतोषकी आशा नही रखी जा सकती।

"अपने भाइयोसे मैंने कहा है कि आप लोगोको धीरज रखना है और हरएक योग्य साधनके द्वारा लोकमतको ऐसा बनाना है जिससे इस पत्रव्यवहारमे दरसायी हुई शर्तोंसे भी भविष्यकी सरकार आगे जा सके। मै आशा रखता हू कि दक्षिण अफ्रीकाके गोरे जब यह समझेगे कि हिदुस्तानसे गिरमिटिए मजदूरोका आना अब बंद हो चुका है और दक्षिण अफ्रीकामे नये आनेवालोसे सबध रखनेवाले कानून (इमिग्रेशन रेगुलेशन ऐक्ट) से स्वतत्र भारतीयोका इस देशमे आना भी लगभग बद हो गया है और यह भी समझेगे कि भारतीयोकी महत्वाकांक्षा यहाके राजकाजमे कोई अधिकार स्थापित करनेकी नही है तब वे देखेगे कि मैंने जो बताये है वे हक हिदुस्तानियोको मिलने ही चाहिए और उसीमे न्याय भी है। इस बीच इस मसलेको हल करनेमे पिछले कुछ महीनोसे सरकारने जो उदार नीति ग्रहण कर रखी है वही उदार नीति, जैसा कि आपके पत्रमे बताया गया है, वर्तमान कानूनोपर अमल करनेमे बरती गई तो मेरा विश्वास है कि सपूर्ण यूनियनमे
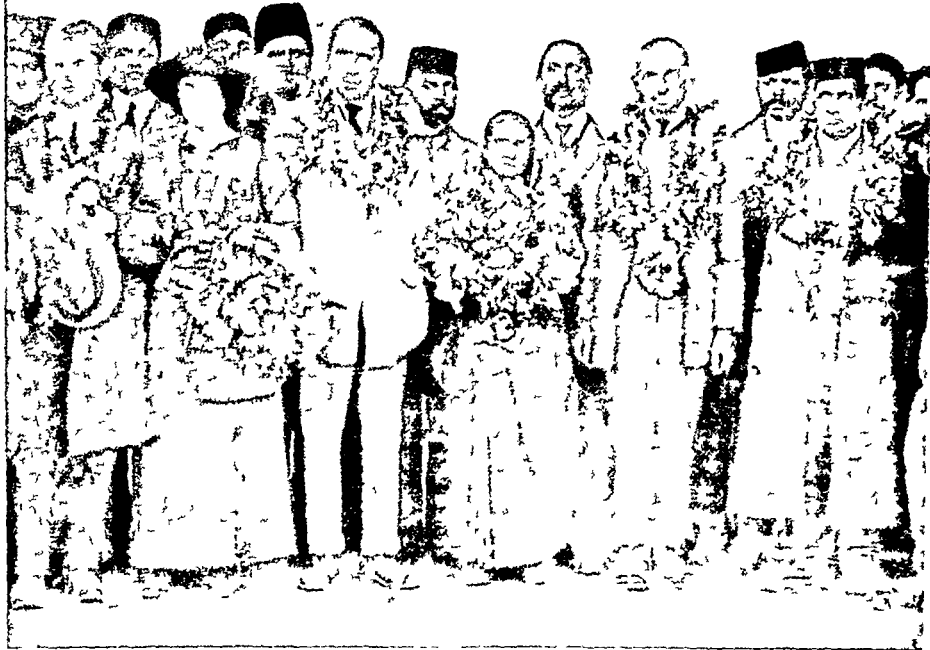
दक्षिण अफ्रीकासे बिदाई

हिदुस्तानी कौम कुछ शाति भोगते हुए रह सकेगी और सरकारके लिए हैरानीका कारण नही होगा ।

उपसंहार

इस प्रकार आठ वरसके वाद सत्याग्रहका यह महान सग्राम समाप्त हुआ और ऐसा जान पडा कि सारे दक्षिण अफ्रीकामे वसनेवाले भारतीयोको शाति मिली। मै खेद और हर्ष दोनोके साथ इगलैण्डमे गोखलेसे मिलकर हिदुस्तान जानेके लिए दक्षिण अफ्रीकासे रवाना हुआ । जिस देशमे मै पूरे २१ वरस रहा, अगणित कडवे-मीठे अनुभव प्राप्त किये, जिस देशमे मै अपने जीवनके कार्य, उद्देश्यके दर्शन कर सका उस देशको छोडनेमे मुझे वहुत दु ख हुआ और मै खिन्न हुआ। हर्ष यह सोचकर हुआ कि इतने वरसोके वाद हिंदुस्तान वापस जाकर मुझे गोखलेकी मातहती और रहनुमाईमे सेवा करनेका सौभाग्य प्राप्त होगा ।

इस युद्धका जो ऐसा सुदर अत हुआ उसके साथ दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोकी आजकी स्थितिकी तुलना करते हुए क्षणभरके लिए दिलमे यह सवाल उठता है कि भारतीयोने इतने सारे दु ख किस लिए उठाये ? अथवा सत्याग्रहके शस्त्रकी श्रेष्ठता ही कहा सिद्ध हुई ? इसके उत्तरपर यहा विचार कर लेना चाहिए। सृष्टिका एक नियम है कि जो वस्तु जिस साधनसे मिलती है उसकी रक्षा उस साधनसे ही होती है । अर्थात् दडसे मिली हुई वस्तुकी रक्षा दड ही कर सकता है, सत्यसे प्राप्त वस्तुका सग्रह सत्यके द्वारा ही हो सकता है । इसलिए दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय आज भी सत्याग्रहके हथियारसे काम ले सके तो अपने आपको सुरक्षित वना सकते है। सत्या-

ग्रहमे ऐसी विशेपता तो है ही नही कि सत्यसे मिली हुई वस्तु सत्यका त्याग कर देनेपर भी वनाये रखी जा सके। ऐसा परिणाम हो सकता हो तो वह इप्ट भी नही समझा जायगा। अत अगर दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोकी स्थिति आज दुर्वल है तो हमे समझ लेना चाहिए कि इसका कारण सत्याग्रहियोका अभाव है। यह कथन दक्षिण अफ्रीकाके आजके भारतीयोके दोपका सूचक नही है, वल्कि वहाकी वस्तुस्थिति वताता है। व्यक्ति या समुदाय, जो चीज अपने आपमे नही है, वह कहासे लायेगा ? सत्याग्रही सेवक एकके वाद एक इस दुनियासे कूच कर गये। सोरावजी काछलिया, नायडू, पारसी रुस्तमजी, इत्यादिके स्वर्गवाससे सत्याग्रहके अनुभवियोमेसे थोडे ही वच रहे है। जो रह गये है वे आज भी जूझ रहे है।

अतमे इन प्रकरणोको पढ जानेवाले इतना तो समझ ही गये होगे कि अगर यह सग्राम नही किया होता और वहुतेरे भारतीयोने जो कप्ट सहे वे न सहे गये होते तो आज दक्षिण अफ्रीकामे हिदुस्तानियोके कदम ही न रह गये होते। इतना ही नही, दक्षिण अफ्रीकामे भारतीयोकी विजयसे दूसरे ब्रिटिश उपनिवेशोके हिदुस्तानी भी कमोबेश वच गये। कुछ न वच सके तो यह दोष सत्याग्रहका नही है, वल्कि इससे सावित हो गया कि उन उपनिवेशोमे सत्याग्रहका अभाव है और हिदुस्तानमे उनकी रक्षा करनेकी शक्ति ही नही है। सत्याग्रह अमूल्य शस्त्र है, उसमे नैराश्य या हारके लिए अवकाश नही, यह वात अगर इस इतिहासमे थोडे-वहुत अशमे भी सिद्ध हो सकी हो तो मै अपने आपको कृतार्थ समझूगा।

समाप्त

परिशिष्ट

सत्याग्रह-संग्रामका तारीखवार इतिहास

गाधीजी १८९३के अप्रेल महीनेमे हिंदुस्तानसे रवाना होकर मई मासमे डर्बन पहुँचे थे ।

१९०६

४ अगस्त—मि० डन्कनने ट्रासवाल लेजिस्लेटिव कौंसिलमे एशियाटिक एमेडमेट ऐक्ट पेश करनेकी दरख्वास्त दी ।

११ सितबर—जोहान्सवर्गके एपायर थियेटरमे भारतीयोकी आम सभा हुई । सभामे उपस्थित लोगोने इस बातकी शपथ ली कि अगर कानून पास हो तो उसे न मानकर जेल जायगे ।

१२ सितबर—ट्रासवालकी धारासभामे खूनी कानून पास हुआ ।

१ अक्तूबर—जोहान्सवर्गसे भारतीय शिष्ट-मडल इग्लैण्ड गया ।

८ नवबर—उपनिवेश मत्री लार्ड एलिगनसे शिष्ट-मडलकी भेट ।

२९ नवबर—दक्षिण अफ्रीका ब्रिटिश इडियन कमेटीकी लदनमें स्थापना । सर लेपल ग्रिफिन उसके पहले अध्यक्ष और मि० रीच मत्री नियुक्त हुए ।

१ दिसबर—विलायतसे भारतीय शिष्ट-मडल लौटा ।

३ दिसबर—खूनी कानूनको बादशाहने नामजूर कर दिया ।

१९०७

२२ मार्च—ट्रासवालकी नई पार्लमेंटने सम्राट् सरकार द्वारा नामजूर खूनी कानून २४ घटेमे पास कर दिया ।

२ मई—बादशाहने इस कानूनको स्वीकृति दी ।

१ जुलाई—खूनी कानूनका अमल शुरु, उसके अनुसार पहले-पहल प्रिटो-

रियामे रजिस्ट्री करनेके लिए रजिस्ट्रेशन आफिस खुला। वह आफिस चार महीनेतक ट्रासवालके गावोमे घूमा, पर लगभग सभी जगह उसका बहिष्कार किया गया। आठ हजारकी आबादीमेसे कोई चार सौसे भी कम लोगोने रजिस्ट्री कराई। इस मियादके बाद पकड़-धकड़ शुरू हुई।

१८ सितबर—माननीय गोखलेकी ओरसे असोसियेशनको नीचे लिखे अनुसार तार मिला—

"आपकी लडाई मै बराबर देखता रहता हू। चितातुर होकर मन उसीमे लगा रहता है। मेरी पूरी सहानुभूति है। लडाईकी तारीफ करता हूँ। ईश्वरेच्छापर दृढतासे आधार रखियेगा।"

२५ अक्तूबर—असोसियेशनकी ओरसे खूनी कानूनके विरुद्ध ट्रासवालके ७-८ हजार भारतीयोमेसे ४,५२२ लोगोकी सहीसे एक बडी अर्जी सरकारको भेजी गई।

३ नवबर—रजिस्ट्रेशनके लिए दरख्वास्ते लेना बद हुआ।

११ नवबर—सत्याग्रहियोकी पहली बार पकड-धकड़ शुरू हुई।

२७ दिसबर—गाधीजीको कोर्टमे हाजिर होनेकी चेतावनी दी गई।

२८ दिसंबर—जोहान्सवर्गमे मि० जोर्डनने गाधीजीको ४८ घटेके अदर ट्रासवाल छोड़नेका हुक्म दिया।

१९०८

१० जनवरी—जोहान्सवर्गमे मि० जोर्डनने गाधीजीको दो मास की सादी कैद की सजा दी।

३० जनवरी—सत्याग्रही क़ैदी छोडे गये। ट्रासवाल सरकारने भारतीयोकी अपने आप रजिस्ट्री करा लेनेकी माग स्वीकार की और खूनी कानून रद करनेका वचन दिया।

१० फरवरी—श्री थवी नायडू और दूसरे कुछ लोगोके साथ गाधीजीके रजिस्ट्री करानेके लिए रजिस्ट्री दफ्तर जाते हुए रास्तेमे गाधीजी पर हमला।

२४ जून—सरकारने खूनी कानून रद करनेसे इन्कार कर दिया। इस कारण सत्याग्रहकी लड़ाई फिर शुरू हुई। श्री सोरावजी नेटालमेसे ट्रासवालमे दाखिल हुए और २० जुलाईको वोकरेस्टके मजिस्ट्रेटने उन्हे एक मासकी सजा दी।

१२ जुलाई—जोहान्सवर्गकी आमसभामे कोई २ हजार परवानोकी होली की गई।

२२ जुलाई—सम्राट् सरकारका लार्ड सेलवर्नको तार मिला कि रोडेशिया-मे जो कड़ा एशियाटिक कानून वना है उसे वादशाहकी मजूरी नही दी जा सकती।

२२ अगस्त—अपने आप रजिस्ट्री करा लेनेवालोको नियमित करार देने तथा दूसरे भारतीयोकी रजिस्ट्री करनेके सवधमे ट्रास-वालकी दोनो धारासभाओमे कानून पास हुआ।

३० अगस्त—प्रिटोरियाकी आमसभामे अपने आप लिये गये २०० के करीव दूसरे परवानोकी होली की गई।

७ सितवर—गाधीजी वोकरस्टमे पकडे गये और एक हफ्ते वाद उनका मुकदमा शुरू हुआ। उसमे उन्हे दो मासकी कडी कैदकी सजा दी गई।

९ से १४ नववर—इस वीच २२७ भारतीय जेल गये। इनमे कई प्रमुख हिंदू और मुसलमान व्यापारी थे। इनमे ६४ जोहान्स-वर्गके, ९७ जर्मिस्टनके, और ६० प्रिटोरियाके ६ दूसरी जगहके थे।

१७ नववर—५३ तामिल फेरी करते हुए पकडे गये। उनको ७ दिनकी सजा मिली।

२२ नववर—कलकत्तामे मि० अब्दुल जबरके सभापतित्वमे सत्याग्रहियोके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करनेके लिए सभा हुई।

१३ दिसवर—गाधीजी अपनी दो मासकी दूसरी कैदकी सजा पूरी करके छूटे।

१६०६

६ जनवरी—डर्वनमे मर्क्युरी-पत्रके प्रतिनिधिने गाधीजीसे भेट की उसमे उन्होने वताया कि ट्रासवालमे लगभग २ हजार भारतीय जेल गये।

१५ जनवरी—गाधीजी नेटालसे वोकरस्ट जाते हुए तीसरी वार पकडे गये। कुछ हफ्ते वाद मुकदमा चला। उसमे तीन मासकी सजा मिली। उसी दिन हमीदिया सोसाइटीके उप-प्रधान मि० उमरजी साले, जिनकी उम्र ६५ वर्षकी थी तथा मि० डेविड अर्नेस्ट वगैरह प्रसिद्ध भारतीयोको ३-३ मासकी सजा हुई।

२६ जनवरी—क्रूगर्सडोरपमे कान्फरेस हुई। उसमे किसी भी प्रकारके परवाने न लेकर और दुकाने समेटकर फिरसे जेल जानेका प्रस्ताव पास किया।

६ फरवरी—ट्रासवालके मि० हास्केनकी कमिटीने भारतीयोको राहत देनेके वारेमे 'लदन टाइम्स'को पत्र लिखा।

१० फरवरी—रोडेशियाका एशियाटिक कानून सम्राट सरकारने नामजूर किया।

१२ फरवरी—पारसी रुस्तमजी और दूसरे कई लोगोको ६ मासकी सजा मिली।

६ मार्च—वॉक्सवर्ग, नौरवुड, बराम फोटीन, वार्वरटन, क्रूगर्सडोरपमे बस्ती वनानेका गोरोने आदोलन शुरू किया।

१० मार्च—डेलागोआ वेके रास्ते सत्याग्रहियोको देशनिकाला देकर हिदुस्तान भेज देना शुरू हुआ।

१२ मार्च—प्रिटोरियामे श्रीमती पिल्लेके केसमे गाधीजीको हाथमें हथकडी डालकर कोर्टमे ले जाया गया।

५ अप्रैल—ता० १४ सितवरसे १७ मार्चतकके लेख-वक्तव्य आदि सम्राट सरकारने 'व्ल्यू वुक'के नामसे प्रकाशित किये।

३० अप्रैल—श्री० काछलिया और दूसरे अठारह सत्याग्रही सजा पूरी करके छूटे।

४ मई—भारतीय सत्याग्रही कैदियोको जेलमे घी दिया जाने लगा।

२४ मई—गाधीजीको चौथी वार तीन मासकी सजा हुई।

७ जून—जर्मिस्टनगे गोरोकी 'लिटरेरी और डिबेटिग सोसाइटी'मे गाधीजीने 'सत्याग्रहकी नीति' विषयपर भाषण दिया।

१६ जून—जोहान्सवर्गकी आमसभामे श्री० ए० एम० काछलिया, श्री० हाजी हवीव, श्री० वी० ए० चेट्टियार और गाधीजीको विलायत तथा श्री० एम० ए० कामा, श्री० एन० जी० नायडू, श्री० ई० ए० कुवाडिया और एच० एस० पोलकको हिंदुस्तान भेजनेका प्रस्ताव हुआ। इस शिष्ट-मण्डल के रवाना होनेसे पहले ही श्री० काछलिया, श्री० कुवाडिया, श्री० कामा तथा श्री चेट्टियारको गिरफ्तार कर लिया गया।

४ जुलाई—जोहान्सवर्ग-जेलमे छूटनेके वाद, जेलमे पाये कष्टोसे, नागप्पनकी मृत्यु।

१६ जुलाई—मुजफरी स्टीमरसे १४ भारतीयोको देशनिकाला देकर वाहर भेजा गया।

१ सितवर—ववईके शेरिफने दक्षिण अफ्रिकाके युद्धके वारेमे चर्चा करनेको सभा बुलाई। उसे ववई-सरकारने रोक दिया। फिर यह सभा तेरह दिन वाद हुई।

१६ सितवर—विलायतमे शिष्ट-मडलने लार्ड क्रूसे भेट की।

१३ नववर--विलायत गया हुआ शिष्ट-मडल किलडोजन कैसल जहाजसे वापस रवाना हुआ।

१ दिसवर--हिंदुस्तानमे श्री० रतन ताताने २५ हजार रुपया दिया, इसकी घोषणा हुई।

१९१०

२५ फरवरी--भारतकी लेजिस्लेटिव असेबलीमे गोखलेका गिरमिट बद करनेका प्रस्ताव पास हुआ।

१ जून--दक्षिण अफ्रीकाका यूनियन बना। उसी दिन सोरावजी शापुरजी अडाजनिया सातवी वार पकडे गये।

४ जून--मि० केलनबेकने सत्याग्रहियोको रहनेके लिए लोलीका अपना फार्म दे दिया।

१३ जून--२६ सत्याग्रही प्रेसिडेट नामक स्टीमरसे हिंदुस्तानसे वापस आये।

२६ जुलाई--पोर्चुगीज सरकारकी मददसे भारतीयोको देश-बाहर किये जानेकी लार्ड एम्पृहिलने लार्डसभामे विशद चर्चा की।

३० जुलाई--भारतीय वालक जो आजतक वयस्क होनेपर रजिस्टर हो सकते थे, उनको १९०८के कानून पास हो जानेके बाद वयस्क होनेपर, रजिस्टर करनेसे इन्कार किया गया।

२२ अगस्त--छोटाभाईके लडकेका मुकदमा जोहान्सवर्गकी कोर्टमे शुरू हुआ। अतमे छोटाभाई जीते।

२८ सितवर--पोर्चुगीज सरकारकी सहायतासे देशनिकाला पाये हुए ८५ सत्याग्रहियोके साथ पोलक डर्बन पहुचे।

१६ अक्तूवर--श्री० नारायणस्वामीका गर्टरुडवूर्मन स्टीमरमे देशसे वापस आते हुए डेलागोआ वेमे देहावसान हो गया।

२५ फरवरी--इमिग्रेशन रिस्ट्रिक्शन बिल यूनियन गजटमे प्रकाशित हुआ।

२५ अप्रैल--वह बिल चालू पार्लमेटमे स्थगित होगया।

२० मई—कुछ शर्तोपर समझौता हुआ और सत्याग्रहकी लडाई स्थगित हुई ।

(इसके बाद लगभग दो वर्षतक कुछ शाति रही और फिर १९१३मे चौका देनेवाली घटनाये हुईं ।)

१९१३

२२ मार्च—भारतीय धर्मपर हमला । जस्टिस सर्लने फैसला दिया जिसके मुताबिक इस्लामकी शरहसे मरियमबाईका उनके पतिके साथ हुआ विवाह गैरकानूनी करार दिया गया ।

३ अप्रैल—यूनियन गजटमे नया इमिग्रेशन बिल प्रकाशित हुआ ।

३ मई—जोहान्सबर्गकी आमसभामे सत्याग्रह शुरू करनेका प्रस्ताव पास हुआ । इसी हफ्ते स्त्रियोकी तरफसे भी ऐसा ही प्रस्ताव डोमीनियन सेक्रेटरीको भेजा गया ।

२४ मई—गाधीजी और मि० फिशर (डोमीनियन सेक्रेटरी)के बीच-का पत्र-व्यवहार प्रकाशित हुआ ।

७ जून—उपरोक्त पत्र-व्यवहारका आगेका भाग प्रकाशित हुआ ।

२१ जून—इमीग्रेशन कानूनको बादशाहकी स्वीकृति मिली ।

१५ जुलाई—नये कानूनकी धाराये यूनियन गजटमे प्रकाशित हुईं ।

१ अगस्त—नये कानूनकी रूसे तीनो कालोनीमे अपील बोर्ड नियुक्त हुए । इस बोर्डके इमिग्रेशन अधिकारी भी एक-एक सदस्य थे ।

१३ सितबर—सत्याग्रहका प्रारभ । सरकार और गाधीजीके बीचका महत्त्वपूर्ण पत्र-व्यवहार प्रकाशित हुआ ।

२२सितबरसे १५ अक्तूबर—नेटाल और ट्रासवालमेसे सैकडो सत्याग्रही स्त्री-पुरुष फेरी करके या सरहद पार करके पकडे गये और जेल गये ।

१६ अक्तूबर—न्यू कैसलमे तीन पौडके करके विरुद्ध हडताल शुरू हुई और वह चारो ओर फैल गई ।

६ नवबर---गाधीजी हडतालियोके साथ ट्रासवालमे दाखिल हुए।

११ नवबर---गाधीजीको डडीमे नौ मासकी सजा हुई।

२८ नवबर---भारतके वाइसराय लार्ड हार्डिंजका भाषण।

११ दिसबर---कमीशनकी नियुक्ति।

१९ दिसबर---गाधीजी, मि० केलनबेक तथा मि० पोलककी रिहाई।

१९१४

१६ फरवरी---समझौतेके अनुसार यूनियनकी जेलोमेसे सारे सत्याग्रही कैदी छोड़े गये।

१८ मार्च---कमीशनकी रिपोर्ट प्रकाशित हुई।

३ जून---रिलीफ बिल प्रकाशित हुआ।

३० जून---अतिम समझौता।

२० जुलाई---गाधीजीकी कस्तूरवा और मि० केलनबैकके साथ विलायत जानेके लिए दक्षिण अफ्रीकासे विदाई।